श्री राम उवाच-36

चलतां वर:

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

चलतां वरः

संस्करण प्रथम, अक्टूबर, 2023
4000 प्रतियाँ

मूल्य ₹ 125/-

प्रकाशक **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अंतर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
e-mail : sahitya@sadhumargi.com

ISBN 978-93-91137-94-6

मुद्रक **उपकार प्रिंट हाऊस** प्रा. लिमिटेड, आगरा

गति से प्रगति...

दुनिया में चलने वाले बहुत हैं। सुबह से रात तक चल रहे हैं। चले ही जा रहे हैं, पर किधर चलना, कैसे चलना, कितना चलना, किसके साथ चलना और किनके पीछे चलना, सबको नहीं पता। पता नहीं होने से उन्हें अपनी गति का सकारात्मक और सुखद परिणाम नहीं प्राप्त हो रहा। उनकी ऊर्जा अनुपयोगी हो रही है। जिसे यह ज्ञात हो जाता है कि किधर चलना, कैसे चलना, कितना चलना, किसके साथ चलना और किनके पीछे चलना, वह सामान्य नहीं रह जाता। उसमें विशिष्टता आ जाती है। विशिष्टता उसे प्रगति की ओर ले जाती है। ऐसे विशिष्ट व्यक्ति को 'चलतां वर:' कहा जाता है। चलतां वर: अर्थात् गतिशीलों में सर्वश्रेष्ठ। ऐसे व्यक्ति का हर कदम लोगों का मार्गदर्शन करता है। लक्ष्य प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है। उसके पदचिह्नों पर चलने वाले अनायास ही उत्तम लक्ष्य का वरण कर लेते हैं।

आचार्य प्रवर श्री रामलाल जी म. सा. की वाणी के माध्यम से साधुमार्गी पब्लिकेशन अपने पाठकों को सहज ही यह अवसर उपलब्ध कराता रहता है कि वे अपने उत्तम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। एक बार पुन: वह अवसर प्राप्त हो रहा है आचार्यश्री द्वारा ब्यावर में सन् 2021 में फरमाए गए प्रवचनों के संकलन के माध्यम से। **'चलतां वर:'** नाम का यह संकलन ब्यावर में उस वर्ष फरमाए गए प्रवचनों की चौथी पुस्तक है। आचार्य प्रवर, विद्वानों में श्रेष्ठ (विदां वर:), वक्ताओं में श्रेष्ठ (वदतां वर:) एवं दाताओं में श्रेष्ठ (ददतां वर:) होने के साथ ही गतिशीलों में भी श्रेष्ठ (चलतां वर:) हैं।

गतिशीलों में श्रेष्ठ आचार्यश्री के प्रवचनों की यह पुस्तक आपकी गति में सहयोग करके प्रगति की ओर ले जाएगी। सबको ज्ञात ही है कि योजनाएं कितनी भी उत्तम हों, बिना गति के मूर्त रूप नहीं ले पातीं। बिना गति के कोई योजना सफल नहीं होती। किसी भी योजना के क्रियान्वयन की दिशा में गति करने से ही वह पूरी होती है। गति से ही प्रगति होती है। चलतां वर: का अनुगामी बनकर सामान्य व्यक्ति भी महान् लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। आप भी चलतां

वर: यानी आचार्य प्रवर श्री रामलाल जी म. सा. के अनुगामी बनकर सुख और शांति के महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इस पुस्तक का पारायण करें।

इसके प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्यश्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किए थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्यश्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बताएं, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत कराएंगे।

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**चलतां वर:**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

कुशलराज गौतमचन्द कोठारी
ब्यावर/चेन्नई

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	श्रम-स्वाध्याय-साधना	07
2.	परख वाली दृष्टि जगे	19
3.	हिमालय आपका चरण चूमे	31
4.	सिद्धत्व का शिलान्यास	47
5.	चैतन्य बोध दुर्लभ	57
6.	निर्णायक क्षण	69
7.	रहे सदा सुख छाँह	77
8.	समता सर्व मंगल	89
9.	तज दे निंदा, झूठ, बुराई	101
10.	जैनत्व की यात्रा जीतने की	115
11.	जैनत्व की महत्ता	128
12.	यह जन्म हारें नहीं, जीतें	142
13.	दृष्टि वह सार्थक, जो द्रष्टा बना दे	154
14.	परमात्म भाव की झलक	169
15.	यहाँ पर तुम्हारा अपना कौन?	183

1

श्रम-स्वाध्याय-साधना

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

श्रेयांसनाथ भगवान ने अध्यात्म की पूर्णता प्राप्त की। अध्यात्म किसको कहते हैं? आत्मन् शब्द की सातवीं विभक्ति के स्थान पर अधि अव्यय का प्रयोग होने पर अध्यात्म शब्द बनता है। इसका अर्थ होता है आत्मा में। आत्मा में क्रोध, मान-माया, लोभ, मोह, ममत्व, राग-द्वेष आदि ने भी अपना स्थान बना रखा है। तो क्या उन्हें अध्यात्म समझना चाहिए?

इसका समाधान यह है कि ये सब आत्मा में हैं जरूर, किंतु आत्मा के नहीं हैं। इन्होंने अवैध कब्जा कर रखा है।

दो प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। पहली स्वाभाविक और दूसरी आवर्जित। जो बाहर से संगृहीत होती है, उस पर मालिकाना हक नहीं होता। वह आज है, कल लौटाना होता है, छोड़ना होता है। जैसे शादी-विवाह आदि के प्रसंगों पर आभूषण, कपड़े आदि किराए पर लाए जाते हैं। किराए पर लाने वाला जानता है कि मुझे वापस लौटाना है। देने वाला भी जानता है कि मेरी चीज वापस आएगी। क्रोध, मान, लोभ आदि भी संसार से संगृहीत किए गए हैं। ये आत्मा के निज गुण नहीं हैं। ज्ञाता-द्रष्टा भाव आत्मा का मौलिक गुण है। आत्मा में अनंतानंत गुण मौजूद हैं इसलिए उसको अनंत धर्मात्मक कहा गया है, किंतु सोचने की बात यह है कि जब उसकी पहचान कराने का प्रसंग सामने खड़ा होता है कि आत्मा की पहचान कैसे की जाए तो कैसे की जाए?

आत्मा की पहचान उपयोग से की जाती है। उपयोग के दो प्रकार हैं। एक, साकार और दूसरा, अनाकार अर्थात् जानना और देखना। यह आत्मा का मौलिक रूप है। जानना मतलब ज्ञान और देखना मतलब दर्शन। जानना और

देखना उसका मौलिक रूप है। बाकी अन्य-अन्य रूप होंगे, किंतु ये गुण कभी भी आत्मा से अलग नहीं होते। ये गुण सदा आत्मा में रहते हैं। कम या ज्यादा हो सकते हैं किंतु रहते जरूर हैं। ये न्यूनतम भी हो सकते हैं और अधिकतम भी हो सकते हैं। बीच की अवस्था में भी रह सकते हैं। यह उपयोग गुण केवल और केवल जीव द्रव्य में ही होता है।

हम भी जीव हैं, आत्मा हैं। हममें भी ज्ञाता-द्रष्टा भाव है, किंतु हम उसमें कुछ मिला देते हैं। यदि दूध फीका होता है तो उसमें शक्कर मिला दी जाती है। नीबू की शिकंजी बनाने पर वह बहुत खट्टी हो जाए तो उसमें शक्कर मिला देते हैं।

क्यों मिला देते हैं शक्कर?

जीभ के स्वाद के लिए मिला देते हैं। शक्कर मिलाना जरूरी नहीं है, किंतु स्वाद के लिए मिला देते हैं। आप सब्जी में नमक-मिर्च, मसाले डालकर खाते हो, किंतु गाय-भैंस को कैसे खिलाते हो? उसमें कितना नमक-मिर्च, मसाला डालते हो? अपने भोजन में यह सारी चीजें इसलिए मिलाई जाती हैं, क्योंकि स्वाद चाहिए। स्वाद के लिए वे सारी चीजें मिला देते हैं। इसी प्रकार जब सामने विभिन्न परिस्थितियाँ आती हैं, तब ज्ञाता-द्रष्टा भाव में राग-द्वेष का मिश्रण कर देते हैं। क्रिया की प्रतिक्रिया कर देते हैं। उससे ज्ञाता-द्रष्टा भाव पूर्णतया शुद्ध नहीं रह पाता। किंतु वीतराग अवस्था में जो जैसा है, वैसा ही देखा जाता है। न कुछ घटाकर और न कुछ बढ़ाकर। जो जैसा है उसे वैसा ही देखते हैं। वीतरागी के भीतर कोई प्रतिक्रिया पैदा नहीं होती है, परंतु हमारे भीतर प्रतिक्रिया पैदा हो जाती है। यही हमारे दुःख का कारण है।

एक माँ-बेटा या बाप-बेटा एक दूसरे पर हाथ उठाते हैं तो देखने वाले में भाव पैदा होगा कि कैसा कलयुग आ गया है! बेटा, बाप पर हाथ उठा रहा है। ऐसी प्रतिक्रिया आ जाती है, जबकि सर्वज्ञ में इस तरह की प्रतिक्रिया नहीं होती। वे देख रहे हैं, जान रहे हैं कि हाथ उठ रहा है, किंतु प्रतिक्रिया नहीं करते। प्रतिक्रया नहीं करना बहुत बड़ी बात है। हमारे भीतर प्रतिक्रिया होगी या नहीं? हमारे भीतर प्रतिक्रिया होती है। हमारे भीतर रिएक्शन होता है। यह रिएक्शन जैसे ही ज्ञाता-द्रष्टा भाव में मिलता है वैसे ही वस्तु के सही स्वरूप के बोध से आत्मा वंचित रह जाती है।

एक प्रसंग है। ऐसे प्रसंग बार-बार आते हैं जिंदगी में। एक बहन अपनी सहेली के घर गई तो देखा कि उसकी सहेली आँखें पोछ रही थी और उसके श्रीमान जी पास में बैठे भोजन कर रहे थे। उसने सोचा कि आज बहुत बड़ा सूत्र हाथ में आया है। कहा जाता है कि अमूमन औरत की ऐसी आदत होती है कि कोई बात दूसरे को बताए नहीं तो खाना नहीं पचता। बताए नहीं तो पेट में अफारा आ जाता है। वह बहन भी अपने घर गई और दूसरी सहेली को फोन कर कहा कि सरला मैं आज तुम्हें बहुत आश्चर्य की बात बताती हूँ। ऐसी बात बताती हूँ जो तुमने आजतक नहीं सुनी होगी।

उसने बताया कि कमला और उसके पति के बीच झगड़ा हो गया। आज मैंने अपनी आँखों से देखा। सरला बोली, क्या कहती है तू? उसकी सहेली ने कहा कि हाँ, ये बात एकदम सही है। ऐसा हुआ है। मैंने अपनी आँखों से देखा है। उसने कहा कि मैं एकदम सही बोल रही हूँ, मैंने देखा है कमला को रोते हुए।

अब ये बात आगे बढ़ेगी या नहीं बढ़ेगी?

यह बात आगे बढ़ेगी। क्यों बढ़ेगी? हमें क्या लाभ होगा, क्या मुनाफा होगा, कितने रुपये मिलेंगे, कितनी फीस मिलेगी वकील साहब बताओ? हमें इससे कुछ नहीं मिलने वाला है। मोबाइल से बात की तो अपने ही घर का पैसा खर्च होने वाला है। उससे कुछ और मिलने वाला नहीं है, किंतु बात आगे बढ़ाए बिना नहीं रहा जाता। हमने सुना और समझ लिया कि बात सही है। हम ऐसा नहीं करते कि जो बात सरला ने सुनी उसे कमला से पूछ लें, बल्कि उस बात को पूरे गाँव में घुमाते हैं। वैसे ही यह बात सरला से विमला, विमला से शिमला होते-होते कुछ ही क्षणों में पूरे गाँव में फैल गई।

एक बहन ने विचार किया कि कहीं आगे फोन करने की बजाय मैं कमला से ही क्यों न पूछ लूँ। उस बहन ने कमला को फोन लगाया। उसका मोबाइल नंबर मिलाया और कहा कि बहन कैसी हो तो वह बोलती है, मैं अच्छी हूँ। बहन कहने लगी कि तू मेरे से कुछ छुपा रही है, बात नहीं बता रही है। कमला ने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं है, जो मैं तुमसे छुपाऊँ। मैं तुमसे कुछ नहीं छुपा रही हूँ। बहन कहने लगी कि तू मेरे को बना रही है। उसने पूछा कि अच्छा यह बताओ, आज तुम्हारे और जीजाजी के बीच में क्या हुआ? कमला ने कहा कि कुछ भी नहीं। उस बहन ने कहा कि हमने तो सुना कि आप दोनों के

बीच जमकर लड़ाई-झगड़ा हुआ। कमला ने कहा कि नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। हमारे बीच कोई भी झगड़ा नहीं हुआ। बहन ने कहा कि सच्ची-सच्ची बता दे। मैंने तो सुना कि तुम दोनों के बीच झगड़ा हुआ है। मैंने कई लोगों से सुना कि झगड़ा हुआ है। कमला ने कहा कि तुमने कई लोगों से सुना होगा, तुमसे कई लोगों ने कहा होगा, किंतु हमारे बीच कोई झगड़ा नहीं हुआ। शिमला से विमला आदि होते-होते उस बहन ने वापस फोन घुमाया, फोन सरला के पास पहुँचा। सरला कहाँ रुकने वाली थी। उसने मूल सूत्रकार को पकड़ा, जिसने यह बताया था कि उसने अपनी आँखों से उनके बीच झगड़ा होता हुआ देखा था। सरला ने पूछा तो वह बोली कि मैंने तो देखा था कि कमला रो रही है। कमला से सरला ने जब यह बात पूछी तो कमला ने उसे सच्चाई बताई कि मैं रो नहीं रही थी। अपितु तुम्हारे जीजाजी को प्याज काटकर दे रही थी। उनको प्याज बहुत पसंद है।

अब आप समझ गए होंगे। ऐसी बातें आप जल्दी समझते हैं। एक इशारे से समझ जाते हैं। ऐसी बात तो समझ जाते हैं, किंतु जो बात समझने की होती है उसको नहीं समझ पाते। वह बात आपकी समझ में नहीं आती। आप उसको समझ में नहीं लेते। जो नहीं समझनी चाहिए, उसको पहले समझते हैं।

यह मतिभ्रम है कि क्या-क्या नहीं समझ लेते। आपने इससे क्या शिक्षा ली? क्या यह प्रतिज्ञा करेंगे कि बिना तहकीकात के कोई भी बात आगे नहीं बढ़ाएंगे?

वाट्सएप पर कुछ भी चलता रहता है। अता-पता कुछ भी नहीं फिर भी बात को आगे फैला देते हैं। एक बात जारी हुई और प्रतिक्रिया चालू हो जाती है। यह नहीं देखते कि बात सही है या नहीं! कोई विरला ही होगा जो बिना तहकीकात के बात को आगे नहीं फैलाता होगा। बाकी बहुत-से लोग मजा लेने वाले होते हैं। आज मैं आपको प्रतिज्ञा करा दूं कि जब तक बात पक्की न हो, तब तक आगे नहीं फैलाएंगे!

महेश जी करा दूं क्या प्रतिज्ञा?

महेश जी का नाम लेते ही कितने लोगों को हँसी आ गई। केवल महेश जी को ही नहीं, आप सबको प्रतिज्ञा करा दूं कि जब तक कोई बात पक्की नहीं होगी, तब तक कोई भी संवाद वाट्सएप पर नहीं फैलाएंगे! सोच-समझकर बोलना, क्योंकि प्रतिज्ञा लेना आसान है, किंतु उसकी पालना बहुत कठिन है।

प्रतिज्ञा कर लें कि पक्की जानकारी के बिना मैं कोई भी बात आगे नहीं फैलाऊँगा। यह बात बहनों के लिए भी है कि बिना पक्की जानकारी के किसी भी बात को आगे नहीं फैलाएंगी। बात को आगे प्रसारित नहीं करेंगी।

बात स्पष्ट हो गई। कमला ने कहा कि तुमने जो देखा वह सही देखा। मैंने आँखें पोंछी थी, किंतु प्याज काटने के कारण आँखों में आँसू आ गये थे। सहेली ने अनुमान क्या लगाया? उसने अनुमान लगा लिया कि वह रो रही है इसलिए आँखें पोंछ रही है। उसने अनुमान लगाया कि आपस में दोनों का झगड़ा हुआ है इसलिए रो रही है।

ऐसा हमारे साथ होता रहता है। हम भी ऐसी बातें करते रहते हैं। ऐसा बहुत बार होता है। किसी एक व्यक्ति के साथ ऐसा नहीं होता। घटना के पीछे हमारी गंभीरता की कमी होती है। चाहत होती है कि मैं सबसे पहले समाचार दूँ। सबसे पहले प्रतिक्रिया करूँ। लोगों को मालूम पड़े कि किसने पहले समाचार दिया।

मुझे याद आ रही है सन् 1987 की एक बात। उस समय तमिलनाडु में विचरण करती हुई एक साध्वी जी के विचार समाचार-पत्र में प्रकाशित हुए कि हमने साबूदाना बनते हुए देखा है कि किस प्रकार जीवों की घात होती है। जैसे पानी पड़ता है तो मेढक टर्र-टर्र करते हैं, खूब सारे मेढक पैदा हो जाते हैं, वैसे ही इस संबंध में लिखने वाले लेखकों की बाढ़ आ गई। बहुत सारे लेखक पेपरों में छा गए। महासती के समाचार का अनुमोदन करते हुए कई समाचार आ गए। बस कुछ शब्दावली बदली और खबर छप गई। लेखकों ने नीचे अपना नाम लिख दिया।

उस समय वह खबर छा गई कि साबुदाना बनने में त्रस जीवों की हिंसा होती है। उसकी हकीकत यह थी कि साबुदाना बनने के बाद फेंके गये वेस्टेज में बहुत सारे जीव पैदा हो गए थे। उसका साबुदाने से क्या संबंध हुआ। गड़बड़ी होने पर तो कहीं पर भी जीवोत्पत्ति हो जाएगी। आपके घर में भी अनाज वगैरह में जीव पड़ जाते हैं या नहीं?

(लोग कहते हैं- पड़ जाते हैं बावजी)

सावधानी हटी, दुर्घटना घटी।

चातुर्मास के समय में सम्मूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति बहुत जल्दी से हो

जाती है। एक जमाना था, जब आठ दिन अनाज नहीं पीसते थे, आठ दिन हरी सब्जी नहीं बनाते थे। आठ दिन पहले आटा-दलिया पीसकर रख लेते थे। उस समय चक्की नहीं होती थी। हाथ से अनाज पीसा करते थे। 15 दिन पहले से आटा पीसना चालू करते थे, ताकि आठ दिन तक घट्टी नहीं चलानी पड़े।

पूज्य जवाहराचार्य जी ने इसकी यतना बताई। एक तरफ जीव हिंसा से बचने के लिए पहले ही अनाज पीसकर आटा इकट्ठा करते हो, दूसरी तरफ उस आटे में जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, उसमें जीवों की घात होती है, किंतु उससे क्या लेना-देना। हमने तो वैसी चाल पकड़ ली। सोचा नहीं कि हिंसा किसमें ज्यादा है, दोष किसमें अधिक हैं। बात पकड़ ली, किंतु अपनी बुद्धि नहीं लगाई। स्वयं की बुद्धि काम करनी चाहिए। दूसरों की देखा-देखी आठ दिन अनाज नहीं पीसना, घट्टी नहीं चलाना, किंतु पहले से इकट्ठा करके आटा रखा गया तो उसमें जीवों की उत्पत्ति हो गई और सावधानी नहीं रखी गई तो क्या हाल होगा?

इस जवाहर भवन के पीछे कमरा बना हुआ है। पहले यहाँ क्या था? यहाँ इल्लीखाना था। ब्यावर अनाज की दुकानों में रहे हुए धान में जो इल्लियाँ पड़ती थीं वे इल्लियाँ यहाँ लाकर डाली जाती थीं, साथ में कुछ अनाज भी डालते थे, ताकि इल्लियाँ जिंदा रह सकें। हर जगह धान डालने से वहाँ इल्लियाँ जिंदा नहीं रहेंगी, इल्लियाँ मर जाएंगी। आपके घरों में इल्लियाँ निकल गईं तो क्या करोगे? कहीं-न-कहीं डालनी पड़ेंगी। जहाँ आपने डालीं वहाँ उन जीवों की विराधना तो नहीं होगी? पर आखिर करेंगे क्या! कहीं-न-कहीं डालना तो पड़ेगा।

ऐसे प्रसंग पर ऐसा सोचने-समझने वाले कम मिलेंगे कि जहाँ धूप न हो। जहाँ से वाहन न निकलते हों, उन जीवों की विराधना न हो। ऐसा करने वाले बहुत कम लोग होंगे, किंतु मिलेंगे।

स्थावर जीवों से त्रस जीवों की हिंसा में पाप ज्यादा होता है। जब तक बुद्धि, प्रज्ञा काम नहीं करेगी, तब तक देखा-देखी बात पकड़ लेंगे। अपने विचार, अपनी सोच होना बहुत जरूरी है। अपनी सोच नहीं होने के कारण इतना सुनने के बावजूद एक कदम आगे नहीं बढ़ा पाते। यदि सोच होती तो कदम आगे बढ़ते। जरूर कुछ-न-कुछ कदम आगे बढ़ाते। आज क्रोध, मान-माया, लोभ को छोड़ने के बारे में सुन रहे हैं, किंतु छोड़ नहीं पा रहे हैं।

क्यों नहीं छोड़ पा रहे हैं?

क्योंकि हमने कभी प्रयत्न भी नहीं किया। आटे में जीव पड़ गए तो उसे छान लेंगे, किंतु अपनी आत्मा के आटे में जीव पड़ गये तो क्या करेंगे? अपनी आत्मा के आटे में पड़े जीवों को निकालने की तैयारी किसकी है? और कैसे निकालेंगे? यह पता नहीं।

15-20 दिन पहले लगभग 24 या 25 अगस्त को मैंने बात कही थी कि पाँच साल का प्रोजेक्ट बने कि साधना कैसे करनी है। उसके तीन विकल्प दिए थे। क्या विकल्प दिए थे बताओ? किसी को याद है क्या, बताओ?

(कोई नहीं बोलता)

वह तीन बातें याद नहीं हैं आपको? नींव और पिलर नहीं है तो मकान कैसे तैयार होगा?

वे तीन बातें थीं- श्रम, स्वाध्याय और साधना।[1]

कौन-सी तीन बातें थीं, बताओ?

श्रम का तात्पर्य था संघ और समाज के विकास हेतु अपना कितना समय नियोजित कर सकते हैं? साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ की सेवा-भक्ति से जीव सुलभ बोधि बनता है। स्वयं को मोक्षमार्गी बना लेता है। दूसरा था स्वाध्याय अर्थात् आगम, ग्रन्थों का या प्रवचन-साहित्य का पठन या श्रवण के लिए समय नियोजित करना, ताकि ज्ञान बढ़े। जानकारी बढ़े। जितना पढ़ेंगे बुद्धि उतनी विकसित होगी। यह मत सोचो कि याद रहता है या नहीं। कभी भी कुछ याद रह सकता है। इसलिए कुछ-न-कुछ पढ़ते रहना चाहिए। पढ़ेंगे तो एक-न-एक दिन याद आ सकता है। पढ़ा हुआ आज उपयोग में नहीं आया, किंतु हो सकता है जिंदगी में किसी क्षण वह उपयोग में आ जाए। रोहिणेय चोर की बात सुनी आपने। इंद्रजीत जी सुनी क्या आपने?

(इंद्रजीत जी कहते हैं- हाँ भगवन्)

महावीर भगवान के चार वाक्य उसके कान में पड़े। वह नहीं चाहता था कि मैं महावीर की वाणी को सुनूँ, इसलिए वह कान में अंगुली डालकर दौड़ा जा रहा था। आपको यह बात पता है। कहानी सुन रखी हो तो ठीक है। उस समय उसने उन चार वाक्यों पर गौर नहीं किया। कोई विचार नहीं किया। जबरदस्ती बातें कानों में पड़ गई थीं। एक समय ऐसा आया कि वे चार बातें उसके जीवन

को प्राण दान देने वाली बन गईं। अभय कुमार ने स्वांग रचा था या कहूँ कि षड्यंत्र रचा। जिसको फँसाना होता है उसके लिए षड्यंत्र रचा जाता है। उसने ऐसी योजना योजित की, ऐसा व्यवहार किया कि रोहिणेय ने समझा कि वह देवलोक में आ गया। वहाँ उससे पूछा गया कि उसने पूर्व जन्म में क्या-क्या किया बताओ। वह कुछ बोलने ही वाला था कि सामने रहे व्यक्तियों को देखा तो भगवान की बातें याद आ गईं। उन लोगों के पैर जमीन पर थे। उसने भगवान से सुना था कि देवों के पैर जमीन पर नहीं पड़ते। उसे लगा कि कुछ गड़बड़ है। वह अलर्ट हो गया। सावधान हो गया। उसकी दृष्टि मालाओं पर गई। उसने देखा कि देवी रूपधारी स्त्रियों की फूल-मालाएँ तरोताजा नहीं थीं। वे कुम्हला रही थीं। उसने सोचा कि दाल में काला है। तीसरी बात आई आँखों की। उनकी पलकें झपक रही थीं, जबकि देवों की पलकें झपकती नहीं। चौथी बात उनके शरीर की छाया पड़ रही थी।

उसके मन में पक्का विश्वास हो गया कि सब नकली काम है। उससे पूछा गया कि बताओ तुमने पूर्व में क्या खाया, क्या पीया, क्या अच्छा काम किया तो उसने भी लफ्फा लगाते हुए बताया कि मैंने ये खाया, वह खाया। उसने अपनी नई कहानी शुरू कर दी। एक बार भी यह नहीं कहा कि मैंने चोरी का काम किया।

अभय कुमार सारी बातें सुन रहे थे, किंतु वे कुछ बोल नहीं रहे थे। वे रोहिणेय को पकड़ने में समर्थ नहीं हो पाए। उनकी योजना फेल हो गई। दूसरी तरफ भगवान की चार बातें, समय पर रोहिणेय को प्राण दान देने वाली बनीं। उसने ये चार बातें सुनीं कब, पर काम में कब आई। इसलिए हमें बातें सुननी चाहिए, पढ़नी चाहिए। कब काम आ जाए पता नहीं। एक खतरे में एक बात यदि याद आ गई तो लाभ हो जाएगा या नहीं? लाभ हो जाएगा। यदि एक भी बात याद रह गई तो कल्याण हो जाएगा।

किसी हार्ट के मरीज को समय-समय पर एन्जाइना पेन उठ जाता है। वह अपने पास में एक छोटी-सी डिब्बी रखता है। छोटी-सी डिब्बी में छोटी-छोटी गोलियाँ होती हैं। उस गोली का नाम है 'सोरबिट्रेट।' मरीज को हर समय उस गोली का काम नहीं पड़ता। जब उसका काम पड़ता है तो उसको जीभ के नीचे रख लेता है। जीभ के नीचे रखने से उसका बचाव हो जाता है। वैसे ही सुनी

हुई बातें हमारे दिमाग में रहेंगी। वे हमारी धारणा में चली जाएंगी। वे बातें कभी भी लाभदायक बन सकती हैं। इसलिए ऐसा नहीं सोचना है कि मुझे क्या पढ़ना है, क्या अध्ययन करना है। निरंतर स्वाध्याय का लक्ष्य रखना चाहिए।

तीसरी बात है, साधना। साधना के विकल्प में सामायिक, संवर, पौषध, एकासन, आयंबिल, उपवास आदि कर सकते हैं। साधना के दो रूप हैं; पहला, धार्मिक अनुष्ठान और दूसरा, आध्यात्मिक शुद्धि। भीतर रहे हुए राग-द्वेष, नफरत आदि को हटाना। उनको अपने जीवन से दूर करना है। उसके लिए मैं प्रयास करूंगा। यदि मुझे क्रोध आ गया तो मैं क्रोध में बोलूंगा नहीं। मोह, मान, लोभ आ गया तो किसी भी प्रकार का प्रतिकार नहीं करूंगा। कोई प्रतिक्रिया नहीं करूंगा।

ज्ञानी से ज्ञानी मिले, करे ज्ञान की बात।
मूरख से मूरख मिले के मुक्का के लात।।

यही चीज होनी है। उस समय अपने आपको नियंत्रित कर लिया कि मुझे कोई जवाब नहीं देना है। ऐसे ही जब लगे कि मन में लालच आ रहा है तो उस पर तुरंत ब्रेक लगा दो, क्योंकि लालच बुरी बला है। यदि ऐसे ही करते रहेंगे तो क्रोध, मोह, मान और लोभ पर नियंत्रण कर पाने में समर्थ बनेंगे। नहीं तो जो प्रवाह चल रहा है, वह चलता रहेगा। वह प्रवाह घटेगा नहीं, बढ़ता ही जाएगा।

वृद्ध व्यक्ति बहुत कंट्रोल से काम करता है। वह सोच-विचार कर घर का कार्य करता है। अभी किसी युवा को सौ का नोट दे दें तो कहेगा कि सौ के नोट से क्या होता है। पाँच सौ, दो हजार का नोट तो पान, बीड़ी, मसाले में खर्च हो जाता है। वृद्ध आदमी जीभ खींचता रहता है, क्योंकि उसकी बोलने की हिम्मत नहीं होती। वह कहे तो किससे कहे, सुनने के लिए कान चाहिए जो आज प्राप्त नहीं है। उसको लगता है कि वह यदि कुछ कहेगा तो उसको ही वापस चार बातें सुननी पड़ेंगी।

बंधुओ! प्रोजेक्ट बनाओ। उसे तैयार करो। हमें मनुष्य जन्म मिला है। इस जन्म में यदि साधु नहीं बन पा रहे हैं तो दूसरा उपाय है। वैसे साधु बन जाएं तो बहुत अच्छी बात है, किंतु साधु नहीं बन पा रहे हैं तो श्रावक धर्म स्वीकार लें। जैसे आनंद श्रावक ने भगवान महावीर के धर्म को स्वीकार कर लिया। उसने पौषधशाला स्वीकार कर ली। हम अपने जीवन में साधना का उपक्रम अवश्य

करें। उसका मीठा फल भी खुद को ही मिलेगा। हम नमिराज चरित्र श्रवण कर रहे हैं।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

नमिराज धर्म जागरणा करते हुए अनुप्रेक्षा कर रहे हैं। उनके विचार पैदा हो रहे हैं कि जीव जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वह नये-नये जन्मों को ग्रहण करता है। नई-नई सृष्टि की रचना शुरू हो जाती है। उसी नई-नई सृष्टि के कारण उसका संस्करण अर्थात् एक गति से दूसरी गति में जन्म-मरण चलता रहता है। उससे वह छुटकारा नहीं पाता। पुनरपि जननं, पुनरपि मरणम्। बार-बार जन्म-मरण होता रहता है। पुन: जन्म और पुन: मरण से नए-नए परिजन हो जाते हैं। जो कल शत्रु था आज पिता बन गया। जो कल दुश्मन था आज बेटा हो गया। यही मेरा घर है। यही मेरा भाई है। यही मेरा पिता है। ये सारा मेरा ही कुंटुब है। मेरा ही कबीला है। व्यक्ति इतने संकीर्ण दायरों में आ जाता है।

मनुष्य की सोच बहुत संकीर्ण है। बहुत छोटी सोच है। छोटी सोच में वह जन्म लेता है। माता-पिता, बंधु-बांधव के साथ मोह बढ़ जाता है। उनके साथ संबंध जुड़ जाता है। उनसे रिश्ता जोड़ लेता है। जैसे ही पर्दा गिरा कि पर्दे के बाहर क्या हो गया, उसको भूल गया। मंच पर जो उसके सामने रहता है, उन्हीं की माया में, उन्हीं के ममत्व में वह भूल जाता है कि वह कौन है? उसको पता ही नहीं रहता है कि मुझे इस मोह और ममत्व से छुटकारा पाना है। इनसे छुटकारा पाना बहुत कठिन है। बहुत विरले लोग मोह और ममत्व का छेदन करने में समर्थ होते हैं। हम नए-नए मोह पैदा करने वाले और नई-नई सृष्टि रचाने वाले हैं या उसको नष्ट करने वाले हैं?

भरत चक्रवर्ती दर्पण के सामने खड़े विभूषित हो रहे हैं। वर्तमान में भी लोग ब्यूटी पार्लर जाते हैं। किसलिए? शरीर को वस्त्रों-आभूषणों से सजाने के लिए।

भरत चक्रवर्ती को भी सजाया जा रहा था। अंगूठियाँ पहनाई जा रही थीं। एक अंगूठी नीचे गिर जाने से उनकी एक अंगुली सूनी हो गई। उस पर उनका चिंतन चला। उन्होंने दूसरी अंगूठी उतारी और फिर तीसरी अंगूठी भी उतारी। ऐसा करते-करते पूरे आभूषणों को उतार दिया। उससे जो स्थिति निर्मित हुई, उस पर उनका चिंतन बना कि-

ये चमक आभूषण की है। ये बाहर की चमक है। ये बाहर की आभा है। मेरी आभा कहाँ खो गई! बाहर की चमक में हम स्वयं खो गए।

कौन खो गए?

हम स्वयं खोते जा रहे हैं।

मेरा सिद्ध स्वरूपी आत्म, खोया रे कहाँ,
आजा तुझको प्रभु पुकारे-2, क्यों तू भटके यहाँ।।

ये पंक्ति आपने भी सुनी होगी।

गौतम जी रांका जोधपुर में कई बार गाया करते थे।

पुद्गल की रौनक में हम स्वयं खो गये। चौबे जी चले थे छब्बे जी बनने, किंतु दुबे जी बनकर रह गये। हम बाहर की चकाचौंध में खो जाते हैं। हमारी हालत ''आधी छोड़ पूरी को धावे, आधी मिले न पूरी पावे'' जैसी है। हम बाहर की चमक बढ़ाने में स्वयं को खोते जा रहे हैं।

साथियो! ये अच्छी तरह से समझ लेना कि मनुष्य जन्म चमक-दमक में खोने के लिए नहीं है। अपने मन में एक गहरी धारणा बैठा लें कि इसे चमक-दमक में नहीं खोना है। देव, पुद्गलों की चमक में खो जाते हैं। विचार करते हैं कि अहो! मेरे आभूषण कितने चमकीले हैं, मेरा विमान कितना सुंदर है आदि-आदि। संयोग ऐसा बनता है कि उस देव का आयुष्य बंध होता है और वह मरकर पृथ्वीकाय में जन्म ले लेता है। सोचें आप कि वह आयुष्य बंध कहाँ-से-कहाँ चला गया! पुद्गल प्रीत उसे कहाँ ले गई!

पुद्गल दे दे धक्का तुमने मुझको खूब रुलाया है...

हमारी आत्मा अकेली होती तो कभी नहीं भटकती। पुद्गलों के कारण हम खो गये। अनादिकाल से पता ही नहीं कि हम हैं कौन? हमारा असली घर कहाँ है? हम तो पौद्गलिक घर को ही अपना घर मान रहे हैं। क्या यह टिकने वाला है? क्या यह शरीर टिकने वाला है? एक दिन दोनों बदल जाएंगे। लोग कहेंगे कि सेठ साहब तो ऊपर चले गए।

भारतीय संस्कृति की सोच बहुत अच्छी है। सबको ऊपर ही भेजती है। नीचे किसी को भेजती नहीं है। किसी की मृत्यु होने पर यह कहा जाता है कि अमुक का स्वर्गवास हो गया। यह नहीं कहा जाता कि अमुक का नरकवास हो गया। यह ऊँची सोच है। ऊपर क्या मिलेगा, यह तो जाने वाला ही जान पाएगा।

बाहर की चमक-दमक में कौन कितना खोया है, उसके अनुसार ही गति संभव है। अत: बाहर की चमक-दमक में खोयें नहीं, अपितु इसका शोध करें कि मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ। इसकी खोज करेंगे तो कुछ करने में समर्थ बन पाएंगे। नहीं तो पुन: जन्म पुन: मरण के चक्र में चलते रहेंगे।

यदि मनुष्य जन्म को निर्णायक बनाना है तो सबसे पहले बाहर की चमक-दमक में अपने आपको खोने नहीं दें। बाहर की चमक-दमक में खो जाने से भीतर की चमक कोरी रह जाती है। भरत चक्रवर्ती की चिंतनधारा आगे बढ़ी। उनको उसी अवस्था में केवलज्ञान हो गया। हमारी चिंतनधारा भी आगे बढ़े। ऐसी हमारी अनुप्रेक्षा हो। अनुप्रेक्षा होगी तो सक्षम बनेंगे। ऐसा करेंगे तो अपने आपमें धन्य बनेंगे। इसी के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

30 सितंबर, 2021

2

परख वाली दृष्टि जगे

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

एक प्रश्न आप सभी से पूछ लेता हूँ कि नीम की पत्तियों व उसकी टहनियों का स्वाद कैसा होता है?

(श्रोता- कड़वा होता है)

अच्छा। मिसरी का स्वाद कैसा होता है?

(श्रोता- मीठा होता है।)

रोटी का स्वाद कैसा होता है? स्वस्थ व्यक्ति को रोटी का जो स्वाद आता है, वैसा ही स्वाद मलेरिया के रोगी को रोटी खाने पर आयेगा या कुछ फर्क पड़ेगा?

मलेरिया के रोगी का स्वाद चेंज हो जाएगा। उसे वैसा स्वाद नहीं आएगा।

आपने नीम को कड़वा बताया किंतु ऊँट नीम को खाता है तो उसे कड़वा नहीं लगता। ऊँट को नीम का स्वाद मीठा लगता है, उसे मधुर लगता है। यदि हम उसको समझाने की कोशिश करें कि भाई नीम कड़वा होता है तो भी वह नहीं मानेगा। वह कहेगा कि मैं खुद अनुभव कर रहा हूँ कि नीम का स्वाद मीठा है। यदि वह आपको समझाने लगे कि उसका स्वाद कड़वा नहीं, मीठा होता है तो क्या आप समझने को तैयार हो जाएंगे? आप समझने के लिए तैयार नहीं होंगे।

ठीक इसी प्रकार इंद्रियरामी को देखना अच्छा लगता है, सुनना अच्छा लगता है, सूँघना अच्छा लगता है। भिन्न-भिन्न स्वाद उसको अच्छे लगते हैं। स्पर्श भी सुहाते हैं। मखमल का स्पर्श उसको अच्छा लगता है।

मिसरी मधुर लगती है। रसगुल्ले मीठे लगते हैं। केसर की सुगंध उसको प्रिय लगती है।

कहने का आशय यह है कि इंद्रियरामी, इंद्रियों में मुग्ध रहता है। इंद्रियों में मुग्ध रहने का मतलब है उनके विषय में लगाव बने रहना। कानों को प्रिय लगने वाले शब्द उसको सुहाते हैं। देखने में सुंदर पदार्थ उसकी आँखों के आकर्षण बिंदु बनते हैं। इसी प्रकार सुगंधित और मधुर पदार्थ उसकी रुचि के होते हैं। उसकी ओर उसका ध्यान जल्दी आकर्षित होता है। आत्मरामी भी इन्हीं पदार्थों का सेवन करते हैं, किंतु उनको रस नहीं आता।

ऐसा नहीं है कि पुद्गलों में रस नहीं है। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हर पुद्गल में है। बात है कि उस रस में कौन कितना डूबता है और कौन कितना निर्लेप रह सकता है। कौन कितना आसक्त होता है। जो पदार्थ जैसा है, उसको उसी रूप में समझने की दृष्टि सही है। जो जैसा है उससे अच्छा लगने लगे या उसके प्रति आकर्षण बनने लगे तो यह हमारी दृष्टि की खोट है। उसके प्रति आकर्षण होने का मतलब हमारे भीतर खोट पैदा हो गई। क्योंकि जो चीज मेरी नहीं है, उसके प्रति आकर्षित होने का मतलब है कि धीरे-धीरे अपने स्वरूप को भूल रहा हूँ। अपना स्वरूप भूलने पर बाहर के पदार्थ अच्छे लगने लगते हैं।

बेटा जन्म लेता है तो माँ उसको बड़ा प्यार करती है। माता को संतान प्रिय लगती है, उसकी किलकारियाँ, उसके खेल-तमाशे माता को मोहित करते रहते हैं। कभी उसने चाँटा लगा दिया, कभी बाल खींच लिए, कपड़े खींच दिए तो भी माता ममता के भाव में उसको गोद में उठा के लाड-प्यार करती है। वही लड़का बड़ा हो जाने पर, उसकी शादी हो जाने के बाद माता पर हाथ उठाता है, उसके बाल खींचता है तो माता का वह प्रेम नहीं जगता। वह प्रीत नहीं जगती। बचपन में वह खेल लगता था, किंतु बड़ा होने पर माता समझती है कि वह अपनी पत्नी के कहने पर ये सब कर रहा है।

माता की दृष्टि बदल गई। दृष्टि बदलते ही व्यक्ति बदल गया। यद्यपि व्यक्ति वही है, किंतु दृष्टि बदलने से वह चीज बदली हुई नजर आती है। वैसे ही हमारी दृष्टि बदलेगी तो जिससे हम आज राग, मोह कर रहे हैं, जिसके प्रति हमारा अनुराग है, आसक्ति है वह हमसे दूर हो जाएगी। हमें लगने लगेगा कि इतने दिनों तक मेरा दृष्टिकोण सही नहीं था।

एक व्यक्ति की आँख में मोतियाबिंद हो गया। उस व्यक्ति ने आकाश में देखा तो उसे चंद्रमा के टुकड़े-टुकड़े नजर आए। उसने कहा कि आज चंद्रमा के टुकड़े-टुकड़े हो गए।

उसका कहना सही है या गलत? बताओ उसका कहना सही है या गलत है?

आप उसकी नहीं मानेंगे। आप कहेंगे कि चंद्रमा एक ही दिख रहा है, किंतु उसको चंद्रमा कई टुकड़ों में दिख रहा है। आप कहोगे एक ही तो है, किंतु वह कहेगा कि टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। वह वैसा ही देख रहा है इसलिए कह रहा है। यदि विचार करें तो दोष उसका भी नहीं है। वह जो कह रहा है मोतियाबिंद के कारण से कह रहा है। उसको वैसा ही दिख रहा है, किंतु यह स्पष्ट है कि वह सही नहीं देख पा रहा है। उसका देखना दोषपूर्ण है।

किसी व्यक्ति को पीलिया हो जाए तो उसको पेशाब भी पीला-पीला आएगा। उसकी आँखें पीली हो जाएंगी। एकदम सफेद कपड़ा भी उसको पीला नजर आएगा। वह सफेद कपड़े को पीला कहेगा तो हम उसको स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि हम उस कपड़े को श्वेत देख रहे हैं। हमें वह कपड़ा सफेद नजर आ रहा है तो हम उसको पीला कैसे स्वीकार करें। वह व्यक्ति मान लेता है कि मुझे पीलिया है इसलिए सफेद कपड़ा पीला नजर आ रहा है।

जो संसारी दृष्टि में जी रहा है, वह इंद्रियारामी अवस्था में जी रहा है। उसको इंद्रियों के विषय ही प्रिय लगते हैं, अच्छे लगते हैं, सुरभित लगते हैं, मनोज्ञ लगते हैं। वे मन को सुहाते हैं, किंतु हकीकत में विचार करेंगे तो वह उसका दृष्टि दोष है। उसकी दृष्टि वैसी ही बन गई है।

अभी थोड़ी देर पहले मैंने बताया कि नीम हमको कड़वा लगता है, किंतु ऊँट को मीठा लगता है। वैसे ही हमारी जो रुचि है, वैसी ही रुचि दूसरों की हो जरूरी नहीं है। उनमें अंतर हो सकता है। यदि हम वास्तविकता को जानेंगे तो हमें जिस पदार्थ का जो स्वाद आ रहा है, हमारे पास बैठे दूसरे व्यक्ति को शायद वैसा स्वाद नहीं आए, क्योंकि हमें जो चीज प्रिय है उसमें हमें स्वाद ज्यादा आएगा।

एक व्यक्ति को मीठा अच्छा लगता है और एक को नमकीन अच्छा लगता है। मीठा खाने वाला कहेगा कि बहुत स्वादिष्ट मिठाई है, मिठाई खानी

चाहिए। जिसको नमकीन अच्छा लगता है वह कहेगा कि नमकीन का स्वाद अच्छा है, नमकीन खाना चाहिए। दोनों की बात सही है क्योंकि दोनों की अपनी-अपनी रुचि है। मिठाई में मिठास है, नमकीन में भी स्वाद है। जिसको जो चीज प्रिय होती है, उसके प्रति उसका लगाव रहता है। आत्मरामी केवल इतनी-सी बात कहता है कि तुम्हारा लगाव बाहरी पदार्थों के साथ बढ़े नहीं। वह कहेगा- खाओ-पीओ छको मत। जितना खाना-पीना है उतना खाओ-पीओ, किंतु उसको छको मत। अर्थात् स्वाद में आसक्त मत बनो। खाने के लिए कोई रुकावट नहीं है। शरीर को बनाए रखना है। जीवन को चलाना है तो खाना खाना पड़ेगा। जब तक हम साधना करते हैं, तब तक शरीर को खुराक देनी पड़ेगी। साधु भी अपने शरीर को खुराक देते हैं। वीतरागी भी अपने शरीर को खुराक देते हैं। अरिहंत भी अपने शरीर को खुराक देते हैं और सर्वज्ञ सर्वदर्शी भी अपने शरीर को खुराक देते हैं। ऐसा नहीं कि खाना बंद कर दें। यह फाइनल है कि शरीर खाने के आधार पर टिका हुआ है। कितनी ही तपस्या करें, पारणा करना होता है। समय से पहले शरीर नहीं छूटेगा। जब तक आयुष्य है, तब तक शरीर चलेगा। इसलिए शरीर को साधना में सहयोगी बनाने के लिए उसे खुराक देते हैं। जो जैसा है उसको वैसा ही मानकर खाते हैं। खाद्य पदार्थों के प्रति कोई आसक्ति नहीं, कोई लगाव नहीं। कोई प्रिय नहीं, कोई अप्रिय नहीं। साधु का भी उद्देश्य ऐसा ही रहता है, रहना चाहिए।

मुनि के लिए भी भगवान ने यह दृष्टि दी कि खाते हुए अपनी दृष्टि पदार्थ पर नहीं, क्षुधा पर होनी चाहिए। यदि आपसे पूछें कि आप किसलिए खा रहे हो तो क्या कहोगे? हमारा ज्यादातर खाना भूख मिटाने के लिए ही होता है। कुछ खाना ऐसा होता है जो स्वाद के वशीभूत होकर खाते हैं। कोई चीज अच्छी लगती है तो पेट भरने के बाद भी ले लेते हैं। उस चीज में स्वाद मिलता है इसलिए ले लेते हैं।

थोड़ी देर के लिए समझ लें कि आपको रसगुल्लों में स्वाद आ रहा है। आपको दो-चार रसगुल्ले मिलेंगे तो खा लेंगे। वहीं पर रोटी मिले तो कहेंगे कि अभी नहीं भा रही है। खाऊंगा तो उल्टी हो जाएगी, किंतु चार रसगुल्ले और मिल गए तो पेट में चले गए।

एक बस चल रही थी। उसमें यात्री कहीं उतर रहे थे और कहीं चढ़ रहे

थे। ऐसे करते-करते सीट फुल हो गई। एक भी सीट खाली नहीं रही। एक जगह आदमी ने गाड़ी रुकवाई, किंतु ड्राइवर ने नहीं रोकी, किंतु एक अन्य जगह गाड़ी रोककर एक यात्री को चढ़ा लिया और कंडक्टर ने अपनी सीट उसे बैठने के लिए दे दी। एक यात्री ने उससे कहा कि भाई ऐसा क्यों किया तो कंडक्टर ने कहा कि वह व्यक्ति वी.आई.पी. है इसलिए मैंने उसको चढ़ा लिया। इसलिए उसको सीट दे दी। जैसे उसने वी.आई.पी. को चढ़ाकर सीट दे दी, वैसे ही हमारा पेट भर गया, किंतु कोई वी.आई.पी. आ गया तो उसके लिए जगह खाली हो जाएगी।

क्यों वकील साहब सीट खाली हो जाएगी क्या?

खाना खा चुकने के बाद वी.आई.पी. खाना आ जाए तो खा लेंगे। वी.आई.पी. का मतलब है उसकी रुचि का खाना। पेट भर गया तो भी वी.आई.पी. खाना चलेगा, क्योंकि उसके प्रति हमारे मन में अनुराग है। उसके प्रति हमारी प्रियता है, हमारी चाह है।

एक लड़की अपने तीन साल के भाई को गोद में उठाकर चल रही थी। चलते-चलते घाटी आ गई। उसको ऊपर चढ़ने में थोड़ी कठिनाई हो रही थी, फिर भी वह बड़ी मस्ती से चल रही थी। उसको एक व्यक्ति ने कहा, बेटी तुम इसको नीचे उतार दो तो तुम्हें चलने में आसानी होगी। तुम्हें भार नहीं लगेगा। वह कहती है कि भाई का भार नही होता। ये तो मेरा भाई है। वह अपने भाई को लेकर घाटी पर चढ़ती जा रही है।

यदि उसी लड़की की गोद में किसी दूसरे बच्चे को बैठा दें तो वह कहेगी कि मुझे बहुत भार लग रहा है। मुझसे घाटी पार नहीं हो रही है। दूसरे बच्चे का वजन भी उसके भाई के वजन जितना ही है, घाटी भी वही है और चढ़ाव भी वही है, किंतु वह कहेगी कि इतना वजन लेकर मुझसे घाटी पार कैसे होगी?

इसका मतलब क्या है? मतलब स्पष्ट है। उसका अपने भाई के प्रति अनुराग है इसलिए वह उसको गोद में लेकर चल रही है। उसको उसका भार नहीं लग रहा है। वैसी ही हमारी रुचि है इसलिए पदार्थ सुहाते हैं, पर उससे हमारा भविष्य कैसा होगा, यह हम नहीं जानते। एतदर्थ भगवान ने एक बात बताई कि पदार्थ पर ध्यान नहीं दें, अपनी भूख पर ध्यान दें। अपनी जरूरत पर

ध्यान दें। यह सोचें कि मैं जो खा रहा हूँ वह पेट भरने के लिए खा रहा हूँ। जीवन निर्वाह के लिए खा रहा हूँ। ईर्या समिति के शोधन के लिए खाना खा रहा हूँ। संयम पालन के लिए खाना खा रहा हूँ। इसलिए खा रहा हूँ ताकि संत-महापुरुष, महान आत्माओं की सेवा कर सकूं। यदि खाना नहीं खाऊंगा तो मेरा शरीर दुर्बल हो जाएगा। फिर यह शरीर सेवा-वैयावृत्य नहीं कर पाएगा जो कि मेरी जिम्मेदारी है। इसलिए मुझे शरीर को खुराक देना है, शरीर को खाना देना है। यदि बिना आहार के वह ईर्या समिति का ठीक से पालन कर रहा है, संयम का सही पालन हो रहा है तो उसे खाना खाने की जरूरत नहीं है। तब खाना छोड़ देना चाहिए।

भगवान महावीर ने साढ़े 12 साल में लगभग 349 दिन ही आहार किया। बाकी दिन तपस्या चली। लगभग साढ़े 11 वर्षों तक वे तपस्या में लीन रहे। स्पष्ट है कि हमको भूख न सताए तो खाना कोई जरूरी नहीं है, इसलिए शरीर को खाना देने में भाव यह रहना चाहिए कि मैं शरीर की क्षुधा को मिटा रहा हूँ। क्षुधा वेदना सहन नहीं होने के कारण मैं भोजन कर रहा हूँ।

भगवान महावीर कहते हैं कि मुनि खाते हुए भी पापकर्मों का उपार्जन नहीं करता। चीज वही है जो आप खा रहे हैं। जो चीज आप खा रहे हैं, वही चीज मुनि खा रहे हैं। पदार्थ में अंतर नहीं है, पर भावों में फर्क है। वह जो खाता है, बिना स्वाद लिए खाता है। खाना खाते हुए यह सोचता है कि क्षुधा को मिटाने के लिए मैं खाना खा रहा हूँ।

एक श्रावक समभाव से आहार कर रहा है। उसे किसी पदार्थ के प्रति कोई लगाव नहीं है। उसको जो मिला, जैसा मिला खा रहा है। उसको स्वाद से कोई मतलब नहीं है कि ये चीज थोड़ी और ले लूं या अमुक पदार्थ छोड़ दूं। उसका ऐसा भाव नहीं है कि स्वाद आ गया इसलिए और ले लूं। उसके मन में ऐसी संवेदना नहीं है। इसलिए वह भी खाते हुए पापकर्म का उपार्जन नहीं कर रहा है।

क्यों नहीं कर रहा है पापकर्म का उपार्जन?

क्योंकि उन पदार्थों में उसका लगाव नहीं है। उनके प्रति कोई ममत्व नहीं है। थोड़ा भी लगाव होगा तो वह चिपक जाएगा। पोस्ट ऑफिस में खूब सारे सादे लिफाफे होते हैं। आपने देखा होगा कि बारिश के सीजन में लिफाफा

चिपक जाता है। किसी ने गोंद नहीं लगाया और न ही किसी ने फेविकोल लगाया फिर भी वह चिपक जाता है। उस पर थोड़ा चेप पहले से लगा हुआ रहता है। बारिश के मौसम के कारण उसमें नमी आ जाती है, जिससे वह चिपक जाता है।

क्या आपने कभी इसका अनुभव किया है?

हमारे अनुभव में आया हुआ है। ऐसी बातें तो आपको अच्छी तरह से समझ में आ जाती हैं। जैसे उस पर चेप लगा होने से, उस पर लेप पदार्थ लगा होने से नमी आने पर वह चिपक जाता है, वैसे ही हमारे भीतर थोड़ी भी आसक्ति का चेप है तो जो कर्म पुद्गल आएंगे, वे हमारे साथ चिपक जाएंगे। यदि भावों में राग है तो पापकर्म बंधेगा, यदि द्वेष है तो भी पापकर्म बंधेगा। राग-द्वेष नहीं है तो पुण्य कर्म का बंध होगा। यदि हम किसी का भला कर रहे होते हैं, किसी का सहयोग कर रहे होते हैं, तो उस समय हमारे भीतर आसक्ति या लगाव नहीं होता। प्रशंसा के भाव नहीं, केवल मानवता के धरातल पर किसी को बचाने की कोशिश कर रहे होते हैं तो वहाँ पर राग-द्वेष नहीं केवल कर्तव्य की भावना होती है। वहाँ जिन कर्मों का संचय करेंगे, वे कर्म पुण्य के रूप में संचित होंगे। राग-द्वेष के भावों से कर्म बंधेंगे तो वे हमें पीड़ा देने वाले होंगे। चुभने वाले होंगे। हमारे लिए कठिनाइयाँ पैदा करने वाले होंगे।

एक आदमी काँटे के ऊपर से निकलता है और एक आदमी फूल के ऊपर से निकलता है। फूल के ऊपर से निकलने वाले के पैरों में कोमलता का अहसास होता है, क्योंकि कोमलता फूल का स्वभाव है, वहीं काँटों से निकलने वाले के पैरों में चुभन हो जाती है। उसके पैर में काँटे चुभ जाते हैं। उसी तरह हमारे पापकर्म का उदय होगा तो हमें चुभन पैदा होगी और पुण्यकर्म उदय में होंगे तो सुहाना लगेगा, अच्छा लगेगा। लगेगा जैसे हम फूलों पर चल रहे हैं।

यदि हमारी प्रवृत्ति राग-द्वेष, लगाव या आसक्ति पूर्वक रहेगी तो उससे क्या पैदा होगा? वह तीखापन पैदा करेगा। लेकिन हमें तीखापन नहीं पैदा करना है। इसलिए हम खाना भी खाएं तो जीवन जीने के लिए खाएं। जीवन जीएं, किंतु निष्काम भाव से जीएं। उसमें रस नहीं लें। उसमें हम लगाव, आसक्ति पैदा नहीं होने दें। यह नहीं सोचें कि अमुक वस्तु तो मेरे खाने में होनी ही होनी है, नहीं तो खाना नहीं खाएंगे। ऐसा रस हम नहीं लें।

आचार्य पूज्य गुरुदेव एक व्याख्यान में फरमाते हैं कि एक पंडित जी को एक सभा में आमंत्रित किया गया। उनसे कहा गया कि पंडित जी आज आपको बैंगन पर व्याख्यान देना है। आपको बताना है कि बैंगन खाने से क्या हानि होती है, उससे क्या नुकसान होते हैं। उन्होंने बैंगन पर व्याख्यान शुरू किया। उन्होंने बैंगन के बहुत सारे दुर्गुण बताए और कहा कि बैंगन नहीं खाना चाहिए। उन्होंने कहा कि आज से किसी को बैंगन का सेवन नहीं करना है।

उस पंडित जी की लड़की भी व्याख्यान में आई हुई थी। यह बात सुनते ही वह दौड़ी-दौड़ी घर गई और अपनी माँ से पूछा कि आज कौन-सी सब्जी बनी है तो उसकी माँ ने कहा कि जो तुम्हारे पिता को पसन्द है, वही सब्जी मैंने बनाई है। तब उस लड़की ने माँ से कहा कि दूसरी सब्जी बना लो, क्योंकि आज पिता जी ने व्याख्यान में बैंगन के प्रति इतनी बातें कही हैं। बैंगन के खिलाफ उनको अद्‌भुत ज्ञान हो गया है। अब वे बैंगन की सब्जी को हाथ भी नहीं लगाएंगे। सब्जी क्या बैंगन को भी हाथ नहीं लगाएंगे। लड़की ने अपनी माँ से कहा कि जैसे ही आप बैंगन की सब्जी सामने लाओगी उनको गुस्सा आ जायेगा इसलिए भूलकर भी बैंगन नहीं परोसना। उसकी माँ ने तत्काल दूसरी सब्जी बनाई।

पंडित जी घर पर आए। खाना खाने बैठे तो देखा कि थाली में दूसरी सब्जी है। वे सब्जी को ध्यान से देखने लगे। वे बैंगन ढूँढ रहे हैं, पर बैंगन है नहीं तो नजर कहाँ से आये। बैंगन की सब्जी नजर नहीं आई तो उनको गुस्सा आने लगा। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि तुम्हें मालूम नहीं है क्या सब्जी होनी चाहिए और मुझे क्या सब्जी परोसी गई। पत्नी सहम गई, बेचारी काँपते हुए कहने लगी कि माफ करना, मुझे पुत्री ने कहा कि पिता जी आज बैंगन की सब्जी नहीं खाएंगे। वे व्याख्यान में बोल रहे थे कि बैंगन खाने से नुकसान ही नुकसान है।

पंडित जी कहने लगे कि छोकरी क्या जाने बैंगन क्या होता है। साथ ही पंडित जी ने कहा कि खाने के बैंगन अलग होते हैं और व्याख्यान के बैंगन अलग। वह तो सिर्फ व्याख्यान का बैंगन था।

ऐसे में कल्याण किसका होगा?

एक जगह संत पधारे, लोगों ने कहा कि व्याख्यान का समय हो गया।

वहाँ वृद्ध संत विराज रहे थे। वे वृद्ध संत को वंदना नमस्कार करके व्याख्यान में चले गये। वहाँ वैसे ही व्याख्यान हो रहा है जैसे यहाँ। उन्होंने वहाँ व्याख्यान में बताया कि पुद्गलों की मार जीव पर किस प्रकार पड़ती है। व्याख्यान सुनकर लोग कहने लगे कि क्या व्याख्यान है! क्या साधना है! लोग वाह-वाह करने लगे। व्याख्यान पूरा हुआ तो लोगों ने कहा कि महाराज ने कानों की खिड़कियाँ खोल दीं। लोग खुश होते चले गए। गोचरी का समय आ गया। प्रवचन देने वाले संत ने वृद्ध संत के पास जाकर उन्हें वंदन-नमस्कार किया। मत्थएण वंदामि करके कहा कि महाराज साताकारी घर कौन-से हैं?

गोचरी जाते हुए क्या पूछा? साताकारी घर कौन-से हैं? इसका मतलब यह है कि जाऊं और अच्छी गोचरी उपलब्ध हो जाये। मनोज्ञ गोचरी उपलब्ध हो जाए। मेरे मन के मुताबिक गोचरी उपलब्ध हो जाये। पुद्गल की मार कहाँ चली गई? व्याख्यान किसके लिए था? क्या जनरंजन के लिए व्याख्यान देना?

कैसे हो कल्याण करणी काली है, नहीं होगा भुगतान हुंडी जाली है...

जाली हुंडी लेकर कोई कहीं जायेगा तो उससे भुगतान नहीं होगा। वैसे ही दिखावे के भाव से कल्याण नहीं होगा।

अब नमिराज की बात करते हैं। नमिराज ऋषि का बोध जगा। जब तक बोध नहीं जगा, तब तक वे भी आम संसारी जीव थे। वैसी ही उनकी जीवनचर्या थी, किंतु जैसे ही उनका बोध जगा, उनकी ज्ञान चेतना जागृत हो गई तो उनके भीतर परिवर्तन हो गया।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार...

हमने बहुत बार सुना है और सुन रहे हैं कि माता-पिता, बंधु-बांधव के मोह में पड़कर ये जीव पराभव को प्राप्त करता है। पराभव को प्राप्त होने का मतलब है कि अपने जीवन को हार जाता है। अपने जीवन को गँवा बैठता है। वह कहता है कि ये मेरे पिता हैं। ये मेरी माता हैं। ये मेरा परिवार है। ये मेरे बंधु हैं। मैं इन सबको कैसे छोड़ सकता हूँ? ये कैसे हो सकता है कि मैं अपने कर्तव्य का पालन नहीं करूँ?

कर्तव्य पालन करने के लिए उसे रुकावट नहीं है, पर जबरन कर्तव्य मान लेना कर्तव्य नहीं है। ऐसा कोई मान ले तो वह उसकी गलती होगी। उस

मतिभ्रम के कारण जीव पराभव को प्राप्त करता है। इतने सारे लोगों को वह अपना कहता है, किंतु हकीकत यह है कि कोई किसी का नहीं है। कोई भी उसके साथ चलने वाला नहीं है। इसलिए किसको अपना कहना? सचमुच में कौन है तुम्हारा? ये भाव बहुत स्पष्ट होना चाहिए कि मैं उनका नहीं हूँ, वह मेरा नहीं है। जब ज्ञान चेतना जागृत हो जाती है, आत्मबोध जागृत हो जाता है, शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध हो जाता है, तब भीतर यह ध्वनि गूँजती है कि 'जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय' अर्थात् जब शरीर ही अपना नहीं है तो दूसरा अपना कौन है?

शरीर तो नजदीक है।

कितना नजदीक है?

बिलकुल नजदीक है।

शरीर नजदीक है या माता? शरीर नजदीक है या पति? शरीर नजदीक है या बेटा? शरीर नजदीक है या पिता? शरीर नजदीक है या पत्नी?

यदि घर में आग लगेगी तो पहले किसको बचाएंगे?

पहले अपने शरीर को बचाएंगे। जब अपने पर बात आने लगे तो पहले स्वयं को बचाने की ही बात बनेगी। इसका मतलब सबसे निकट हमारा शरीर है। यदि कोई हमारे निकटतम है तो वह शरीर है। जब वह भी मेरा नहीं है तो दूसरे को मेरा कहने की हिम्मत ही कैसे हो सकती है?

नमिराज ऋषि को यह बोध हुआ कि जिसको मैं अपना मान रहा था, जिसको मान रहा था कि ये मेरी महारानियाँ हैं, उनमें से कोई अपना नहीं है। वे विचार कर रहे थे कि इनके लिए मैंने क्या-क्या प्रयत्न नहीं किया। मैंने अपने शरीर के लिए भी प्रयत्न किया, किंतु क्या कारगर हुआ, क्या सार्थक हुआ। इनमें से कुछ भी तो सार्थक नहीं है। पत्नी मरकर माता हो जाएगी और मैं उसको धोक लगाऊँगा। उनके पाँव पूजूंगा। वही माता फिर मरकर पुत्री हो जाती है। ये चक्र चलता ही रहता है। जीव इसी चक्र में घूमता रहता है।

नमिराज चिंतन कर रहे हैं कि संसार का यह चक्र चलता रहेगा। प्रेम और मोहब्बत का, मोह और ममत्व का आवर्त चलता रहेगा। ये सारे रिश्ते मैं अनंत बार कर चुका हूँ। आगे भी पुन:-पुन: होते रहेंगे। इसका अंत होने वाला नहीं है। इसका अंत यदि करना है तो मुझे ही जागृत होना पड़ेगा। अपनी ज्ञान

चेतना को जगाना पड़ेगा। मोह कर्म को छोड़ना पड़ेगा। मोह, ममत्व का त्याग करना पड़ेगा। यदि मोह-ममत्व को छोड़ दिया, मान लिया कि ये रिश्ते मेरे नहीं हैं तो फिर चक्र आगे गतिमान नहीं हो पाएगा। इस चक्र को रोकना ही है। इसे रोकने के लिए सबसे पहले अपनी प्रिय वस्तु का त्याग करना होगा। उन्होंने विचार किया कि देह से बढ़कर और कोई प्रिय नहीं है। इसलिए सबसे पहले मुझे अपने देह से ऊपर उठ जाना है। इस शरीर भाव से ऊपर उठूँगा तो ही मेरी जीत होगी अन्यथा संसार के चक्र से आत्मा जल्दी नहीं निकल पाएगी। उसमें इतना रस है कि उससे विमुक्त होना बहुत मुश्किल है। इसलिए अब मुझे शरीर की कोई चिकित्सा नहीं करवानी है।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को उसके पूर्व भ्राता मुनि ने बहुत तरीके से समझाया। उनके समझाने पर ब्रह्मदत्त कहता है मुनिराज, आप जो कह रहे हो मैं सब समझ रहा हूँ। सब बात मुझे समझ में आ रही है। मैं नासमझ नहीं हूँ, किंतु सारी बातें सुनने के बाद भी मेरा उत्साह नहीं जग रहा है। मेरा पुरुषार्थ नहीं जग रहा है। मुझे समझ में आ रहा था कि ये रंगरलियाँ मेरी आत्मा को कीचड़ में ले जाने वाली हैं लेकिन अब मैं कीचड़ में धँस गया हूँ। अब मेरे हाथ में कुछ नहीं है। अब मेरे बस की बात नहीं है।

मेरे खयाल से आप ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जैसे तो नहीं होंगे। आप चाहें तो अपना उद्धार कर सकते हैं, किंतु चाहते ही नहीं। कर सकते हैं या नहीं? उद्धार कर तो सकते हैं, किंतु अभी फिलहाल इच्छा नहीं है। फिर देखते हैं। विचार करते हैं। सोचते हैं।

सोचते-सोचते क्या हो जाएगा?

राम नाम सत्य हो जायेगा। हमारा सोचना पूरा हुआ नहीं होगा कि लोग राम नाम की ध्वनि गुँजाना शुरू कर देंगे। इसलिए सोचने में समय नहीं बिताना। निर्णायक अवस्था में पहुँचना चाहिए। सोचने से बात घुलती रहती है। केवल उसी पर घोलेंगे तो बात जटिल हो जाएगी। बात को जटिल मत बनाओ। यह केवल अपने मन की कठिनाई है। अपने मन को समझा लिया तो सारी दुनिया समझ जाएगी। अपना मन नहीं समझा तो सारी दुनिया को समझाने से हल नहीं होगा। केवल एक को समझा लो।

जो एक जीत लेता है वह पाँच को जीत लेता है और जो पाँच को

जीत लेता है वह दस को जीत लेता है। मन को जीतनेवाला आत्मा पर विजय प्राप्त कर लेता है। फिर वह क्रोध, मान-माया, लोभ को जीत लेता है। उनको जीतने वाला पाँच इंद्रियों के विषयों पर जीत हासिल कर लेता है। उनको जीतने में समर्थ हो जाता है। इसलिए हम किसी अन्य को नहीं देखें। केवल अपने मन को देखें कि वह क्या बोल रहा है। मेरे मन में क्या स्फुरणा हो रही है। हम केवल अपने मन की सुनें और सबसे पहले उपाय करें कि मन सबसे पहले कैसे तैयार हो। ये मत सोचें कि पत्नी, बेटा, माता-पिता समझेंगे या नहीं समझेंगे।

नमिराज चिंतन में गहरे उतरते चले गये। उनका मन दृढ़ हुआ कि मुझे साधु जीवन स्वीकार करना है। उनके भावों में संवेग बढ़ता गया। उनके भीतर संयम की भावना का उल्लास बढ़ता ही गया। अब आगे क्या स्थिति बनती है, समय के साथ विचार करेंगे।

तपस्वियों की तपस्या चल रही है। उनसे कुछ प्रेरणा लेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर विराम।

01 अक्टूबर, 2021

3

हिमालय आपका चरण चूमे

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

संसार में दो तरह के प्राणियों का अवस्थान है। संसार में रह रहे प्राणियों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। दो की संख्या पर विचार करें तो भगवान ने धर्म भी दो प्रकार का बताया। एक अगार धर्म, दूसरा अनगार धर्म।

जीवों का एक समुदाय ऐसा है जो हिमालय की चोटी को स्पर्श करने को समुद्यत है। वह हिमालय की चोटी पर चढ़कर विजय ध्वज फहराना चाहता है। दूसरा समुदाय ऐसा है जो तलहटी में खड़ा रहकर हिमालय की चोटी को स्पर्श करने वालों को देखता रहता है। वह स्वयं हिम्मत नहीं कर पाता है कि वहाँ तक पहुँचे। इस प्रकार के समुदाय में रहने वाले कुछ व्यक्ति उसे देखकर खुश होते हैं तो कुछ ईर्ष्या से जल जाते हैं। खुश होने वाले विचार करते हैं कि वे लोग धन्य हैं, जिन्होंने इतना पुरुषार्थ किया और आज शिखर पर पहुँच गए। जलने वाले इसलिए जलते हैं, इसलिए ईर्ष्या करते हैं कि वहाँ पहुँचने वालों ने हमें कुछ कहा ही नहीं। हमें साथ ले जाते तो हम भी चले जाते। चढ़ना कोई बड़ी बात नहीं है, हम भी चढ़ जाते। ऐसे लोग कल्पना के हवाई घोड़ों पर सवार होते हैं, पर ध्यान रहे, कोई किसी को साथ ले जाने वाला नहीं है। हमारी स्वयं की प्रज्ञा काम नहीं करेगी तो कोई सहारा देने वाला नहीं है।

नीति में यह बात कही गई है कि जिसकी स्वयं की प्रज्ञा काम नहीं कर रही हो उसको शास्त्रों से कुछ मिलने वाला नहीं है। आगमों में ज्ञानराशि भरी है। चेतना के उत्कर्ष के अनेक आयाम आगमों में मौजूद हैं। जो आगमों में नहीं है, वह दुनिया में कहीं नहीं है। जो दुनिया में है, वह सब आगमों में उपलब्ध है। अपनी प्रज्ञा के अनुसार उसमें से कितना निकाल सकते हैं, कितनी खोज कर

सकते हैं, यह अपनी-अपनी बुद्धि पर, अपनी-अपनी शक्ति पर निर्भर है।

आगम के एक सूत्र पर, एक गाथा पर चार-चार महीने तक व्याकरण व न्यायसंगत अर्थ हो सकते हैं। 120 दिन तक उनकी व्याख्या हो सकती है। वह भी इस पंचम काल के प्राणियों के द्वारा। छह-छह महीनों तक एक गाथा का अर्थ व्याकरण न्याय निक्षेपित हुआ है। ऐसा नहीं की 'धम्मो मंगलं मुक्कट्ठं' गाथा बोल दी और चल कुछ और ही रहा है। व्याकरण न्यायसंगत अर्थ करना। एक-एक पद के अर्थ को निरूपित करना और छह महीने तक रेगुलर चलते रहना। ऐसी मेधा, बुद्धि, प्रज्ञा हमारे जिनशासन में हुई है। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि हम एक दिन भी ऐसा करने में समर्थ नहीं होते हैं और वे चार-चार, छह-छह महीने तक एक गाथा का व्याकरण न्याय निक्षेप संगत अर्थ करने में समर्थ थे।

इसका अर्थ क्या हुआ? इसका मतलब क्या हुआ?

हमारे आगमों में बहुत भरा हुआ है, निकालने की क्षमता होनी चाहिए। मैं कितना निकाल सकता हूँ इसके लिए अपनी ताकत को तौलना है। हम शक्ति का उपयोग दूसरी-दूसरी तरफ करते रहते हैं। आगम रत्नाकर को आलोड़ित, विलोड़ित करने का समय नहीं है। हम हिमालय पर आरूढ़ होना चाहें तो कौन रोकने वाला है? यदि हमारा हौसला बुलंद हो, उत्साह बरकरार होने के साथ ही मन में कुछ कर गुजरने की ललक हो, लक्ष्य बना लिया हो कि मुझे हिमालय के शिखर पर चढ़ना है, हिमालय की चोटी का स्पर्श करना है तो फिर कोई रुकावट पैदा होने वाली नहीं है। यदि जज्बा होगा तो ताकत अपने आप आएगी। हमारे भीतर ताकत की कमी नहीं है। शक्ति की कमी नहीं है।

अपने ऊपर कठिनाई आने पर एक बार भले ही हतप्रभ हो जाएं, किंतु प्रज्ञा विकसित है तो कभी कठिनाइयों से घबराएंगे नहीं। कठिनाइयों के बीच अपना मार्ग निकालने की क्षमता हमारे भीतर है। कोई आदमी कठिनाइयों से टकराता है तो उससे कुछ मिलने वाला नहीं है। टकराने से केवल चिनगारियाँ उछलती हैं।

आचार्य पूज्य गुरुदेव के जलगाँव चातुर्मास के प्रवेश से पूर्व दिन 19 किलोमीटर का विहार हुआ। मौसम को देखते हुए गुरुदेव का विचार बना कि जलगाँव से सात किलोमीटर के क्षेत्र में पहुँच जाऊँ। इसके लिए लंबा विहार

किया। 17 किलोमीटर पर आकर रुके, स्थान छोटा था। ईश्वर बाबू ललवाणी का आग्रह रहा कि आप जलगाँव के समीप पधार गए हो, लोगों का आना चालू रहेगा, इसलिए यहाँ से दो किलोमीटर पर स्थित हमारी फैक्ट्री पर पधारना हो जाए तो उचित रहेगा। इस प्रकार कुल उन्नीस किलोमीटर का विहार हो गया। उसके दूसरे दिन प्रवेश पश्चात् जो बारिश हुई वह कई दिनों तक चलती रही। जल की व्याख्या करते हुए गुरुदेव ने फरमाया, जल तरल होता है, वह बहता रहता है। बहते हुए जल के समक्ष कोई चट्टान आ जाए तो जल उससे टकराता नहीं, अपितु साइड से अपना मार्ग बना लेता है। समय के साथ वह अवरोधक चट्टान को भी काटने में समर्थ हो जाता है। पानी का मार्ग सुगम हो जाता है।

जिन्होंने भी जीवन में उत्कर्ष प्राप्त किया है, उन्नत अवस्थाएँ प्राप्त की हैं उन लोगों का जीवन कुछ अलग ही है। उनकी कहानियाँ इसी प्रकार की रही हैं। उनका मार्ग ऐसा ही रहा है। रास्ता एक रहा है, किंतु सफलताएँ अलग-अलग समय में प्राप्त हुईं। सभी ने एक ही समय में उत्कर्ष प्राप्त किया हो, ऐसी बात नहीं है। हमारे भीतर जज्बा नहीं होता तो हम मुहूर्त का इंतजार करते हैं। हम इंतजार करते हैं कि कब मेरे जीवन में वह घड़ी आए और कब मैं छलांग लगाऊँ। कहने वाला जैसे ही कहता है कि वह घड़ी आ गई तो वह पूछता है कि क्या छलांग लगाने की घड़ी आ गई। ऐसा कहता है, तब तक वह मुहूर्त निकल जाता है।

पता नहीं हमारे जीवन में वह क्षण, वह अवसर, वह मुहूर्त कभी आ पाएगा या नहीं आ पाएगा?

यदि उत्साह है, हौसला बुलंद है और कुछ कर गुजरने की ललक है तो फिर कुछ भी कठिनाई नहीं है। कई लोग यह विचार करते हैं कि मेरे पास कोई साधन नहीं है। यह नहीं है, वह नहीं है। इस तरह का विचार सिर्फ बहानेबाजी है।

राम जब अयोध्या से चले, उस समय उनके पास क्या-क्या साधन थे? वे साथ में क्या-क्या लेकर चले? कितने अस्त्र-शस्त्र, कितना भोजन-पानी, धन-दौलत साथ लेकर गए? कितना सोना कितनी चाँदी ले गए? कितने रत्न और आभूषण ले गए?

वे कुछ भी साथ नहीं ले गए। वे कुछ भी नहीं लेकर चले। खाली हाथ गए। उनको कल की चिंता नहीं थी। उनको चिंता नहीं थी कि जंगल में कहाँ जीवन व्यतीत होगा। जिनमें हिम्मत नहीं होती उनको चिंता सताती है। वे चिंता में ही घुटकर रह जाते हैं। पुरुषार्थी को ये चिंताएं नहीं सतातीं।

आप लोगों में से बहुत-से लोगों ने बस में, ट्रेन में सफर किया होगा। यात्रा की होगी। यात्रा करते समय आप जब खिड़की के पास बैठे होंगे तो बहुत सारी चीजें, गाँव-नगर आदि देखे होंगे। पेड़, गाँव, कस्बे, शहर आदि देखे होंगे। जब गाड़ी आगे बढ़ती है तो लगता है कि वे चीजें दौड़ रही हैं, पर हकीकत में वे दौड़ती नहीं हैं, अपितु पीछे छूट रही होती हैं। वैसे ही हमारे कदम हिम्मत से आगे बढ़ जाएं तो सारी चिंता पीछे छूट जाएगी। जिसकी आगे बढ़ने की नीयत है वह कभी भी पीछे नहीं देखता। उसकी नजर सदा आगे की ओर रहती है। उसकी दृष्टि आगे चलने की रहती है। वह यह नहीं देखता कि पीछे कौन है। यदि आदमी पीछे देखता है तो उसको चिंता घेर लेती है। चिंता घेर लेने से कदम अवरुद्ध हो जाते हैं। जिसने पीछे नहीं देखा उसके लिए रास्ता एकदम सपाट होता चला जाता है। उसकी गति आगे बढ़ती जाती है।

आप पीछे देखकर चलने वाले हैं या आगे देखकर चलने वाले?

(श्रोता- आगे देखकर चलने वाले हैं)

मैंने यदि 200 पच्चक्खाण बता दिए तो भी किसी को पीछे देखने की आवश्यकता नहीं है। गरदन पीछे करने की आवश्यकता नहीं है। गरदन पीछे करके क्यों नहीं देखना, यह बहुत रहस्य की बात है। यह बहुत गहरी बात है। हम आजतक पीछे देखते रहे इसलिए हमारा विकास नहीं हुआ। आगे देखने वाला आगे बढ़ेगा। पीछे देखने वाले की गति निश्चित रूप से अवरुद्ध होती है। उसकी गति रुक जाती है। जिसको आगे बढ़ना है, वह पीछे नहीं देखेगा।

थोड़ी देर के लिए विचार करो कि जैसे हमारे आगे नाक, मुँह, आँखें हैं, ऐसे ही पीछे होते तो सुविधा होती या असुविधा? बताओ आप।

(श्रोता- असुविधा होती भगवन्)

सही कहा, आपने। वैसा होता तो हम असुविधा में होते। इसलिए कुदरत ने हमें नाक, दो आँखें, मुँह आगे की ओर दिए कि तुम्हारी दृष्टि आगे की ओर रहनी चाहिए। आगे देखते रहना चाहिए। पीछे मत देखो। अपने कदम

आगे बढ़ाते रहो। कदम उत्साह के साथ आगे बढ़ते रहें। जिन्होंने आगे देखा, उनके कदम आगे बढ़ते रहे। वे चलते रहे और अपनी मंजिल को प्राप्त किया। आपके भी मन में उत्कंठा होगी कि हम भी मंजिल प्राप्त करें तो इसका एक ही फॉर्मूला है। वह फॉर्मूला है कि पीछे मुड़कर नहीं देखें। दृष्टि सदा आगे की ओर रहे अर्थात् दृष्टि लक्ष्य पर टिकी होनी चाहिए। विजन बहुत साफ होना चाहिए। राह, सड़क, रास्ता साफ दिखना चाहिए। स्थिति साफ होगी तो कदम रुकेंगे नहीं। कदम बढ़ते ही चलेंगे। फिर चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ आ जाएं, बढ़ते कदमों को रोकने की हिम्मत उनमें नहीं होगी। उनमें क्षमता नहीं होगी।

अगर मन रुकने को तैयार नहीं है तो कोई भी दूसरी शक्ति हमारी गति को रोक नहीं सकती। पहले मन में रुकावट पैदा होती है। मन को निर्देश मिलता है। जैसे सेनापति का निर्देश सेना को मिलता है, वैसे ही मन को निर्देश मिलता है। मन को आदेश मिलने के आधार पर कदम की गति रुक जाती है। अवरुद्ध हो जाती है। यदि हमारा मन रुकने को तैयार नहीं होता तो भले ही हमारा पैर कितना ही थक जाए, लहूलुहान हो जाए, वह रुकने का नाम नहीं लेगा। वह कहेगा; चलो, चलो, और चलो...

(श्रोता- आपस में बात करने लगे)

आप आपस में बात मत करो। अभी मेरे को सुनने का समय है आपका, इसलिए आप यहाँ बैठे हो। मैं चूक जल्दी जाता हूँ। यह मेरी थोड़ी कमजोरी है। सेनापति का आदेश आने के बाद सेना के जवानों को कुछ और नहीं दिखता है। चलना है तो बस चलना है। चाहे आगे घाटी हो या पहाड़ी, कोई रुकावट नहीं। वैसे ही हमारा मन सेनापति है। उसके निर्देश के अनुसार ही हमारी गति होती है। किंतु ये ध्यान रहे कि सेनापति बनाने के पहले, उसको सारी शक्तियाँ देने से पहले हमें अपने मन की पहचान कर लेनी चाहिए कि यह कहीं घबराने वाला तो नहीं है! ये आदेश देने में कहीं कमजोर तो नहीं पड़ेगा! सेनापति की परीक्षा होती है। उसके बाद सेनापति का पद देते हैं। उसको मालूम होता है कि किस समय क्या होना चाहिए। उसके अनुसार वह सेना को आदेश देता है। यदि सेनापति सो रहा है, सीमा पर जो हो रहा है, उससे उसका कोई लेना-देना न हो तो उसका विजन क्या होगा!

(श्रोता- नहीं होगा भगवन्)

जिसका विजन है उसको मालूम होता है कि सीमा पर क्या हो रहा है। सीमा पर क्या स्थितियाँ हैं। कहाँ क्या हो रहा है। दूसरे देशों की सेना कहाँ जमा हो रही है। ये सारी बातें उसकी जानकारी में होती हैं। नहीं होंगी तो धोखा खा जाएगा। वैसे ही हमारी कठिनाइयाँ हैं। हमें क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं, किन-किन कठिनाइयों से गुजरना है हमारे मन को ये सारी अवस्था पहले ज्ञात हो जानी चाहिए, ताकि वह कभी पीछे मुड़ने की बात न करे।

बंधुओ! हमने जन्म लिया है जीतने के लिए, हारने के लिए नहीं। हम जीतने वाले हैं, हारने वाले नहीं। हमारा जीवन हराने वाला है, हारने वाला नहीं। हमारा जीवन हारने वाला नहीं है। हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि हम इस जीवन में विजयश्री हासिल करें। बातें बहुत हो रही हैं, किंतु विजयश्री का अर्थ क्या है?

दो बातें हैं। एक भौतिक क्षेत्र में जीत होती है और दूसरी जीत मोहरूपी होती है। सबसे बड़ी जीत मोह को पराजित करने की है। मोह को जीतने की है। उसमें जितनी शक्ति की आवश्यकता होती है, उतनी शक्ति की जरूरत बाह्य विजयश्री को हासिल करने में नहीं रहती है। हजारों योद्धाओं को जीतने वाले अपनी वृत्ति के सामने, अपने मन के सामने घुटने टेक देते हैं। वे अपनी जीत कायम नहीं रख सकते। इसका कारण है मन की कमजोरी। जब मन में द्वंद्व हो जाता है, मन में आसक्ति हो जाती है, तब मन कमजोर होता है। मन की शक्ति कमजोर होती है। उस स्थिति में पैर लड़खड़ाने लगते हैं। लंबे समय तक कदम आगे नहीं बढ़ सकते। गति अवरुद्ध हो जाती है। हम अपनी गति को अवरुद्ध नहीं करें।

हम ऐसा मान के चलते हैं कि सबके लिए साधु बनना कठिन है। यहाँ बैठने वाले आज साधु बन जाएं, यह कितने प्रतिशत संभव है? जीरो प्रतिशत संभव है। हम साधु बनाने के लिए उपदेश नहीं देते, किंतु बताते जरूर हैं कि सच्चा रास्ता यही है। सच्ची राह यही है। सच्ची जीत, मोह पर विजय प्राप्त करना है। हम भी किसी जन्म में चक्रवर्ती, वासुदेव बने होंगे। उस समय हमने क्या काम किया? हम अभी तक संसार में इसलिए पड़े हैं क्योंकि हमने दुनिया पर तो जीत हासिल की, किंतु अपने आप से पराजित हो गए। हमें आवश्यकता है अपने आपको जीतने की। अपनी वृत्तियों को जीतने की। अपनी इच्छाओं को

जीतने की। मेरी इच्छा नियंत्रण में रहेगी, मन नियंत्रण में रहेगा। मैं कहीं भी जाऊंगा तो बिना मेरी इच्छा के मन इधर-उधर नहीं जाएगा। इतनी दृढ़ता यदि मन में जगी तो फिर जीत कहाँ पीछे रहने वाली है।

धैर्य जिसके प्राण हैं, सहिष्णुता जिसकी जन्मभूमि है और गंभीरता जिसकी धड़कन है, वह व्यक्ति आगे बढ़े तो कोई कारण नहीं है कि जीत को हासिल नहीं करे। तीन बातें ध्यान में रखें। धैर्य को प्राण बना लें। सहिष्णुता जन्मभूमि बन जाए और गंभीरता धड़कन। उसके बाद सारा श्रेय आपको मिलेगा।

एक बात ध्यान में और रखना कि कभी भी भूतनी को पीछे मत लगने देना। जिसके पीछे भूतनी लग जाती है, उसके नाटक अलग ही होते हैं। जिसको भूतनी लग जाती है वह गति नहीं कर पाता। उसकी गति निश्चित ही अवरुद्ध होगी। वह कभी भी हिमालय की चोटी पर अपने पैरों को आरूढ़ नहीं कर पाएगा। अपने कदमों को आगे बढ़ाने में समर्थ नहीं होगा। क्योंकि वह अपने इर्द-गिर्द देखता है। उसके कान अपनी प्रशंसा सुनने की चाह रखते हैं। वह यह जानना चाहता है कि मेरा नाम ऊँचा हो रहा है या नहीं। मेरी प्रतिष्ठा हो रही है या नहीं। मुझे कोई पद से विभूषित कर रहा है क्या।

पद, पदवी, प्रतिष्ठा की चाह और प्रशंसा के भाव पतन की ओर ले जाने वाले हैं।

वे हमको किधर ले जाना चाहते हैं?

वे सब हमको पतन की ओर धकेल रहे हैं। पद, प्रतिष्ठा, प्रशंसा जिनको प्यारी है उनके कदम आगे नहीं बढ़ेंगे। उनके कदम रुक जाएंगे। उनका विकास अवरुद्ध होगा। अपनी प्रशंसा में किसी के द्वारा दो शब्द कहे जाने पर वे पूछेंगे कि आपने क्या बोला? यह पूछकर वे आपसे कुछ और सुनने का प्रयत्न करेंगे। उनकी आंतरिक प्यास है कि आप उनके लिए कुछ अच्छा कहें। प्रशंसा सुनकर उनका सीना 56 इंच का होगा, किंतु जैसे ही कोई उनकी निंदा कर देगा, उनका मुँह मुरझा जाएगा। उनका मन खिन्न होने लगेगा। आँखों के सामने अँधेरा छाने लगेगा। 56 इंच का सीना जल कर खाक होने लगेगा।

साथियो! हमारा जीवन इसके लिए नहीं है कि हम प्रशंसा के पीछे पागल हो जाएं। हमारी कार्यशैली हमारे जीवन को प्रसन्नता देने वाली होनी चाहिए। दुनिया की प्रशंसा से हम प्रसन्न नहीं रह पाएंगे। हाँ, अपने कार्यों से

अपने मन को प्रसन्न कर सकते हैं। इसलिए कार्य सही होने चाहिए। जीवन को, मन को प्रसन्नता देने वाला कार्य हो। इससे भीतर खुशियाँ आने लगेंगी। मन खुशियों से परिव्याप्त हो जाएगा।

ये खुशियाँ तब आएंगी, जब अपने कर्म का बोध होगा। जब अपने कर्तव्य का बोध होगा। जब अपनी दृष्टि का बोध होगा। मेरा लक्ष्य केवल कर्म करना है। मेरा जो कर्तव्य है उसी दिशा में चलना है।

यदि सभा-सोसायटी में जाने का काम पड़े और वहाँ पर अपनी बात रखने की जिम्मेदारी बने तो कभी भी आग्रह बुद्धि नहीं होनी चाहिए। यह नहीं होना चाहिए कि मैंने जो बात कह दी वह मानी जाए। आप बात ऐसी कहो कि वह सर्वमान्य बन जाए। बात मनवाने की जरूरत ही नहीं पड़े। आप ऐसी बात रखो कि सर्वमान्य बने। कोई उस पर विरोध करे ही नहीं। बात सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय हो। समाज, संघ और परिवार के लिए सुखकारी, हितकारी बात होगी तो उसका विरोध कोई नहीं करेगा।

इसके साथ ही मैं जीवन से जुड़ी एक बात और कहना चाहूँगा। वह बात है कि यदि कोई यह बात कहता है कि क्रोध नहीं करना तो एकदम से क्रोध छूटेगा नहीं। मैं आपसे केवल यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जहाँ भोजन बनाया जाता है और जहाँ पर भोजन खाया जाता है, उन दोनों स्थानों पर क्रोध नहीं करना है। ये बात मनवाने के लिए नहीं होगी कि आपको क्रोध नहीं करना है, अपितु एक प्रयास किया जा सकता है, ताकि आपके कदम शनैः-शनैः आगे बढ़ें। पहला कदम होगा कि जहाँ भोजन बनाया जाता है वहाँ गुस्सा नहीं करेंगे।

रसोईघर में खाना बनाया जाता है। जहाँ खाना बन रहा है, वहाँ पर गुस्सा नहीं करना है। वहाँ पर क्रोध नहीं करना है। दूसरी जगह है डायनिंग टेबल। जहाँ पर भोजन का भोग लगाया जाता है, वहाँ गुस्सा नहीं करना। वहाँ क्रोध नहीं करना। आप जहाँ भोजन का भोग लगाएं, वहाँ अपने आपको वीतराग परमात्मा बनकर भोजन का भोग लगाएं। फिर देखिए आपको क्या मजा आता है।

रसोईघर में और खाना खाते समय क्रोध को त्यागने को कौन तैयार है? हाथ खड़े करेंगे।

(व्याख्यान में उपस्थित कुछ लोग अपने हाथ ऊपर करते हैं)

बहुत कम हाथ खड़े हो रहे हैं। इसका मतलब है कि आप क्रोध करोगे। इन दो जगह पर जो गुस्सा नहीं करना चाहते हैं वे हाथ खड़ा करें।

(व्याख्यान में उपस्थित सभी लोग अपने हाथ ऊपर करते हैं)

सबने हाथ खड़े किए हैं, यानी सब चाहते हैं कि गुस्सा नहीं करना है। किस-किस की तैयारी है क्रोध को त्यागने की? हिमालय लाँघने वाले, छोटी-सी नाली को लाँघने से नहीं घबराएंगे। हिमालय पर चढ़ने वाला छोटी-सी घाटी पर चढ़ने में कोई असुविधा नहीं समझेगा। पच्चक्खाण करा दूं आपको कि जहाँ पर खाना बनाया जाता है और जहाँ पर खाने का भोग लगाया जाता है, उन दो स्थानों पर गुस्सा नहीं करेंगे! यदि वहाँ पर गुस्सा आ गया तो जल्दी से उठकर वहाँ से रवाना हो जाएंगे, वहाँ बैठे नहीं रहेंगे। पक्का करा दूं पच्चक्खाण?

(श्रोता- करा दो भगवन्)

जोर की बोली से लगता है कि हिम्मत तो बहुत है आपमें। लोगों में बहुत उत्साह है। यह बात कहने में बहुत सुंदर लगती है, पर चलने की नहीं होती है। आप कह रहे हो कि जिधर होगा गुरु का इशारा उधर होगा कदम हमारा। मैं कह दूं कि यहाँ जितने लोग भी बैठे हैं उनमें से 11 जनों को मैं दीक्षा देना चाहता हूँ तो...

बोलो खड़े होओगे या नहीं! मेरी बात आपको समझ में आई या नहीं! मैं कह रहा हूँ कि इतनी बड़ी सभा है, यहाँ बैठे लोगों में से 11 आदमियों को अभी खड़ा कर दूं, अपने मन के मुताबिक 11 लोगों का चयन कर लूं कि इन लोगों को मैं दीक्षा दूंगा तो आपके हृदय की धड़कन तेज तो नहीं हो जाएगी। आपके हृदय की धड़कन तेज हो गई क्या कि पहले-पहले हमारे गले में माला न आ जाए। आपको चिंतित होने की जरूरत नहीं है। मैं अभी खड़ा कर भी नहीं रहा हूँ। पर कभी खड़ा कर दूं तो यह सोचना कि मेरे पर गुरु महाराज ने कितना भरोसा जताया है।

साथियो! हमें अपनी बात मनवाने की कोशिश कभी नहीं करनी चाहिए। परिवार में अपनी बात मनवाने की कोशिश नहीं करना। अपनी बात मनवाने का प्रेशर किसी पर कभी नहीं डालना चाहिए, बल्कि बात ऐसी होनी चाहिए कि अपने आप सारे लोग मानने के लिए तैयार हो जाएं।

ऐसा कब होगा बताओ? ऐसा तब होगा जब उस विषय पर गहराई से विचार करेंगे। उस विषय पर अनुप्रेक्षा करेंगे। उस विषय पर गहराई से चिंतन और मनन करेंगे। बीच में आने वाली कठिनाइयों को समझेंगे।

इन सारे विषयों पर गहराई से विचार करें। साथ में यह भी विचार करें कि यदि उस योजना की जिम्मेदारी आपको ही सौंप दी जाए तो आप उसे मूर्त रूप देने में, कार्यान्वित करने में समर्थ हैं या नहीं! कहने का आशय यह है कि योजना ऐसी हो, जो आपको सौंपी जाए तो समयबद्धता के साथ पूरी जिम्मेदारी के साथ उसे वहन करने में समर्थ हों।

बहुत-से लोग रोना रोते हैं कि भगवन् मीटिंग में लोग मेरी बात को सुनते ही नहीं हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि सुनाने का स्वर आपके पास नहीं है। पहले आपको उसे सुधारना होगा, तभी लोग आपकी बात सुनने के लिए तैयार होंगे। मैं इतनी देर तक बोलता हूँ और आप मेरी बात सुनते हो। ऐसा कभी नहीं कहा कि म.सा. क्या रोज-रोज एक ही बात सुनाते हो, बल्कि शांत भाव से मन लगाकर ग्रहण करते हो। यदि सबके हित की बात हो, बात से सबको लाभ हो, अपने स्वार्थ की बात नहीं हो तो कौन नहीं सुनना चाहेगा?

हो सकता है कि सबमें इतना सामर्थ्य नहीं हो कि साधु जीवन स्वीकार कर लें, पर अच्छा तो साधु जीवन ही है। यह स्पष्ट है कि साधु जीवन ही श्रेष्ठ है। राजा जीवन है। सिद्ध बनने के लिए साधुता को स्वीकार करना ही पड़ेगा। इस बात से कौन-कौन इनकार करते हैं? या सब स्वीकार कर रहे हो?

जिसके पास दो लाख की पूँजी हो, वह दस हजार खर्च कर सकता है। वह यदि दस लाख खर्च करना चाहे तो संभव नहीं होगा। इसी प्रकार जिसके पास दो करोड़ है वह एक लाख रुपये खर्च कर सकता है, पर पास में दो करोड़ हो तो वह सौ करोड़ खर्च नहीं कर सकता है। ऐसे में तो उलटा काम हो जाएगा। कहीं हार्ट फेल न हो जाए। कहीं आत्महत्या न करनी पड़े। कोई दूसरा चारा नहीं है। पूँजी का अर्थ यह हो सकता है कि कोई साधु जीवन स्वीकार करने की शक्ति रखता हो, किंतु आज अपनी ताकत को नहीं समझ पा रहा हो। हालांकि लक्ष्य तो यही होना चाहिए कि-

वो दिन धन होसी जब बणसूं मैं अणगार...

जोर से बोलें, आज इतनी भीड़ होने के बाद भी आवाज बहुत

शिथिल (धीमी) है।

वो दिन धन होसी जब बणसूं मैं अणगार...

धन्य दिन कौन-सा होगा?

धन्य दिन वह होगा जब मैं आरंभ-परिग्रह को त्याग कर मोह, ममत्व का छेदन करूंगा। क्षमा को धारण करनेवाला बनूंगा। इंद्रियों का दमन करनेवाला बनकर अपने जीवन पर अंकुश लगाने वाला बनूंगा। यदि आज मेरे में सामर्थ्य नहीं है तो मैं वैसा सामर्थ्य जगाने का प्रयास करूंगा। अपने भीतर वैसी शक्ति जगाने का प्रयत्न करूंगा।

जब तक वह सामर्थ्य नहीं है, तब तक क्या करना चाहिए? क्या खाली का खाली चले जाना चाहिए या त्याग, प्रत्याख्यान आदि से आत्मा को भावित करना चाहिए?

सोचना कि क्या करना चाहिए। जितनी ताकत है उसके अनुसार कार्य करते हुए अपनी ताकत को और बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि 20 लाख की पूँजी है तो उसमें से 1 लाख आराम से खर्च किया जा सकता है। उसी प्रकार अपनी ताकत का बीसवाँ हिस्सा या सोलहवाँ हिस्सा त्याग-पच्चक्खाण करने से अपनी आत्मा को भावित किया जा सकता है।

सोचो, क्या करना है?

अभी थोड़े दिन पहले आप लोगों के हाथों में 200 नियम का पंफलेट आया था। उसे किस-किसने पढ़ा? पढ़ा या फेंक दिया? सही-सही बताना कि किस-किसने पढ़कर पच्चक्खाण लिए और किस-किसने देखकर रख दिया या किसने अंवेर कर रखा?

एक बार वापस देखना। यदि किसी के पास नहीं हो तो अन्य किसी से प्राप्त कर लेना। वापस 1 वर्ष के लिए टिक लगाना कि मैं कौन-कौनसे नियमों का पालन कर सकता हूँ। हो सके तो आज ही प्रतिज्ञा लेकर पालना शुरू कर सकते हो।

संयोग से आज 2 अक्टूबर है। महात्मा गांधी की जयंती। आज से 200 के पच्चक्खाण चालू हो जाएंगे।

पच्चक्खाण कब से चालू होंगे बताओ?

(श्रोता- आज से चालू हो गए भगवन्)

आने वाले 2 अक्टूबर तक उन नियमों का पालन करना है। कैसी भी कठिनाई आ जाए उस कठिनाई से निकलने के लिए स्वयं रास्ता ढूँढना है। रास्ता ढूँढेंगे तो मिलता जाएगा। आपने यात्राएँ की हैं। बहुत बार आपने स्वयं ही ड्राइविंग भी की होगी। आप लोग गाड़ी चलाने वाले होंगे ही। चाहे दुपहिया चलाने वाले हों या चार पहिया चलाने वाले। गाड़ी की सीट पर बैठे। स्टेयरिंग हाथ में ली और चाबी को घुमाकर गाड़ी स्टार्ट कर दी। स्टार्ट करने के बाद ऐसा सोचते हो क्या कि किधर जाऊँ?

(श्रोता– नहीं भगवन्)

आपके दिमाग में पहले ही आ जाता है कि कहाँ जाना है। किस रोड से जाना है। वह रोड जाम हो गई तो किधर से निकलना है। यदि किसान आंदोलन चलने से सड़कें जाम हों तो वहाँ खड़े हो जाना है, उस जाम का हिस्सा बन जाना है या मौका पाकर वहाँ से निकल जाना है?

(श्रोता– मौका पाकर वहाँ से निकल जाना है)

बीकानेर से कोलायत की तरफ मेरी यात्रा चल रही थी। उस रोड पर दुर्घटना हो गई, जिससे बीकानेर से लेकर लगभग दो किलोमीटर तक जाम हो गया। वहाँ पुलिस भी आ गई। कई लोग सोचने लगे कि वहाँ से निकलें कैसे? वे दुविधा में थे। एक आदमी ने सोचा कि ऐसे तो गाड़ी निकलेगी नहीं। उसके साथ एक हृष्ट–पुष्ट आदमी था। उस आदमी ने हृष्ट–पुष्ट आदमी से कहा कि भाई तू कपड़ा उतार दे, केवल एक कच्छा ही पहने रख। उसने उसको केवल कच्छा पहने जीप में सुला दिया और कहने लगा कि उसको साँस की बहुत तकलीफ हो रही है। भीड़ ने उनको जगह दी और उसने गाड़ी निकाल ली। उसको मौका मिला और गाड़ी निकाल ली। झूठ बोलकर निकाली। उसे अपन सही नहीं कह सकते। पर हाँ, अच्छा ड्राइवर, अनुभवी ड्राइवर बहुत कठिनाई वाले रास्ते से भी बहुत आराम से गाड़ी निकाल लेता है। बिना किसी दुर्घटना के आसानी से गाड़ी निकाल लेता है। ड्राइवर की खासियत होती है कि भीड़ से, लोगों से गाड़ी को टक्कर खाने से बचाए। उसका माइंड सक्रिय रहता है। सक्रिय नहीं होगा तो गाड़ी धक्का खा जाएगी।

जैसे ड्राइवर का दिमाग तेज चलता है और सक्रिय होता है, वैसे ही हमारे जीवन की गाड़ी ड्राइव करने वाली बुद्धि को भी इतनी प्रखर होना चाहिए

कि वह स्वयं अपना मार्ग निकाल ले। असंभव कुछ भी नहीं है दुनिया में। जैसा चाहें वैसा किया जा सकता है।

इसके विपरीत स्थिति से हमारी विकास यात्रा अवरुद्ध हो जाएगी। जो हमें अभीष्ट नहीं है। इसलिए विकास यात्रा को निरंतर आगे बढ़ाते रहना है। विकास यात्रा के नियमों की अनदेखी नहीं करनी है। नियम सदा सम्मुख होने चाहिए। विजन में होने चाहिए। बुद्धि में ये बातें समाई होनी चाहिए कि हौसला बुलंद हो, उत्साह बरकरार हो। प्राण धैर्य हो। भूमि सहिष्णुता की हो और धड़कन गंभीरता की। इसके साथ ही आग्रह बुद्धि नहीं हो। जहाँ ऐसा होगा वहाँ विवाद की बात नहीं होगी। ये पाँच तत्व पास हैं तो फिर गाड़ी कहीं नहीं रुकेगी।

जब मैंने दीक्षा नहीं ली थी तब की एक बात है। एक बस पर लिखा हुआ था,

''सदा स्टेयरिंग सामने, ब्रेक दाहिना देख
पाँच देव रक्षा करे, टायर-ट्यूब व जेक''

वे पाँच देव कौन हैं?

पाँच देव यानी स्टेयरिंग, ब्रेक, टायर-ट्यूब और जैक। हमारे लिए भी पाँच चीजें हैं; धैर्य, सहिष्णुता, गंभीरता, उत्साह और संवाद की स्थापना। ये पाँच चीजें जिसके पास हैं उसकी विकास यात्रा को कोई चुनौती नहीं दे सकता। उसमें कोई अवरोध पैदा नहीं कर सकता।

आज बाहर से बहुत-से लोग उपस्थित हैं। अभी आप सुन ही गए कि 'सामायिक का है संघोष, ब्यावर का यह उद्घोष।' आज दोपहर के समय वह कार्यक्रम (सामायिक पच्चीस रंगी का) आयोजित होने वाला है जो कल सुबह लगभग 11.30 बजे तक चलने वाला है।

लक्ष्य धुँधला रह गया, विजन स्पष्ट नहीं रहा तो गाड़ी टक्कर खा जाएगी। इसलिए विजन स्पष्ट होना चाहिए। यदि कमी रह गई हो तो अभी पूरी कर लो। आप साधुमार्गी जैन संघ के सदस्य हैं। आप में कमी नहीं रहे।

सोजत सिटी में रहने वाले जवरचंद जी मेहता ने एक बार कहा कि एक जवाहरपंथी सौ गवारपंथी पर भारी रहता है। उन्होंने जवाहरपंथी को बहुत मजबूत बताया है। हम साधुमार्गी परिवार के सदस्य हैं। हममें कमजोरी नहीं

रहनी चाहिए। दुनिया में कमजोरी होगी, किंतु हमारे मन में कोई कमजोरी नहीं रहे।

आप बोलने के लिए शूरवीर हैं या करने के लिए शूरवीर हैं?

(श्रोता- करने के लिए शूरवीर हैं भगवन्)

''नहीं थोथा नाद गुँजाना है अब कर कुछ दिखलाना है''

जय-जयकारों का समय निकल गया है। अब जयकारों का समय नहीं रह गया है। अब समय है कुछ करने का। कर्म करना अपना अधिकार है। हमें कुछ न कुछ करना है। पिछले दिनों से यहाँ पर एक प्रोजेक्ट चल रहा है। अभी तक मैं उसकी व्याख्या करता रहा हूँ। कहता रहा हूँ कि पंचवर्षीय प्रोजेक्ट तैयार होना चाहिए। उसके तीन आयाम होंगे- श्रम, स्वाध्याय और साधना। श्रम का अर्थ है कि मैं समाज के लिए, संघ के लिए और परिवार के लिए किन-किन कार्यों में कितना योगदान दे सकता हूँ। दिन में, सप्ताह में, महीने में, तीन महीने में, साल भर में कितने समय का सहयोग दे सकता हूँ। संघ और परिवार के लिए मैं कितना कार्य कर सकता हूँ। साधु-संतों की सेवा के लिए मेरा श्रम कितना रह सकता है। जैसे गोचरी में दलाली करना और जो भी कार्य श्रम के अंतर्गत है उनमें समय का नियोजन।

दूसरा स्वाध्याय। कम से कम 15 मिनट अनिवार्य रूप से स्वाध्याय करना चाहिए।

कितने मिनट बताओ?

(श्रोता- पन्द्रह मिनट रोज)

कम से कम 15 मिनट स्वाध्याय प्रतिदिन करना है। स्वाध्याय का मतलब कोई भी धार्मिक पुस्तक पढ़ना, जिसका अर्थ समझ में आ रहा हो। कोई मराठी नहीं पढ़ना। आपको मराठी पढ़नी ही नहीं आती तो उसे लेकर बैठे मत रहना। जो पुस्तक पढ़नी नहीं आती, उसे लेकर नहीं बैठना।

एक लड़का जवान हो गया था। उसकी शादी करनी थी। लोग आते और देखकर चले जाते। बाप कहता है कि बेटा, जमाना पढ़ाई-लिखाई का हो गया है, इसलिए घर में कोई मेहमान आवे तो किताब लेकर पढ़ते रहना। कहीं भी ध्यान नहीं देना। उस समय मौन रहना। बोलना मत। कोई लड़का देखने के लिए आया तो वह किताब पढ़ रहा था, पर किताब को उलटा पकड़ कर पढ़

रहा था।

कॉलेज में पढ़ने वाला एक लड़का परीक्षा में फेल हो गया। उसके घरवालों ने आपत्ति की। घरवालों ने शिकायत की कि हमने देखा है कि लड़का तो दिन-रात पढ़ता था फिर कैसे फेल हो सकता है। जब शोध हुआ तो पता चला कि लड़का उपन्यास पढ़ रहा था। वह जासूसी किताबें पढ़ रहा था। वह कॉलेज की किताबों के बीच में जासूसी किताब या उपन्यास रख के पढ़ रहा था। ऐसे में वह पास कैसे होता?

उस लड़के की बात पर वापस आते हैं जिसे देखने लोग आये थे। देखने आये लोगों ने लड़के से कहा कि आपको गणित आती है तो वह हू-हू बोलने लगा। उसके पिता ने कहा था कि मुँह पर टेप लगाकर रखना। अब जो लड़के को देखने के लिए आये थे, वे शादी करेंगे या नहीं? बताओ।

(श्रोता- नहीं करेंगे भगवन्)

हम भी ऐसा नहीं करें। पन्द्रह मिनट का नियम बना लें। हिंदी, मराठी या गुजराती जो भी आपको समझ में आये उसको पढ़ना चाहिए। वैसा हमारा लक्ष्य होना चाहिए। पन्द्रह मिनट कम से कम। ज्यादा कितना भी समय हो सकता है।

तीसरा नियम है साधना का। साधना में दो विकल्प हैं। दो रास्ते हैं। दोनों रास्तों का पालन सही तरीके से करना है। पहला है अनुष्ठान। अनुष्ठान का मतलब सामायिक, संवर, पौषध, आयंबिल, एकासन और उपवास। इन सब में अपने समय का नियोजन करें। निश्चित करें कि प्रतिदिन कितनी सामायिक करना और सप्ताह में कितनी करना। महीने में दया, पौषध कितनी करनी। अपना कोई प्रोजेक्ट तैयार करना चाहिए। दूसरा है अध्यात्म। अध्यात्म का अर्थ है; यह समीक्षा करना कि मेरे भीतर क्रोध की कितनी मात्रा है। क्रोध समीक्षण, मान समीक्षण, माया समीक्षण और लोभ समीक्षण। धीरे-धीरे इनको हलका करना, पतला करना। ये प्रोजेक्ट का मूल खाका है। परीक्षा और इंटरव्यू स्वयं को लेना है कि तीन महीने में अपने प्रोजेक्ट के अनुसार मैं कितना आगे बढ़ा और कितना पीछे रहा।

ये समीक्षा किसको करनी है बताओ?

(श्रोता- समीक्षा हमें स्वयं करनी है)

इस प्रकार से पाँच वर्ष का कोर्स बनाकर आगे गति करनी चाहिए। यदि इसमें सम्मिलित होते हैं, समर्थ होते हैं तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि आज जिस भूमि पर बैठे हैं उससे आपका अवश्यमेव उत्थान होगा। ऊपर उठेंगे। हिमालय नहीं चढ़ेंगे फिर भी कदम ऊँचे उठेंगे। इसलिए इस पंचवर्षीय योजना को लेकर आगे बढ़ना। आप स्वयं प्रोजेक्ट तैयार कर सकें तो ठीक अन्यथा समय के साथ इसका प्रोजेक्ट आपके सामने आ सकता है। प्रोजेक्ट के अनुसार कदम आगे बढ़ाएंगे तो अवश्यमेव जीवन का विकास होगा।

उत्थान पतन का, हेतु है निज में निज की आत्मा...

उत्थान या पतन दो ही रास्ते हैं या कोई तीसरा मार्ग है?

(श्रोता- दो ही हैं भगवन्)

जो खड्ढा है, खाई है वह रास्ता नहीं है। रास्ते दो ही हैं। या तो पतन या उत्थान। उसमें हेतु कौन है? इन दोनों मार्गों पर हेतु हमारी आत्मा है, कोई दूसरा नहीं। कोई दूसरा उठाने वाला नहीं है। कोई दूसरा गिराने वाला नहीं है। यह खुद पर निर्भर है कि कौन-सा रास्ता अपनाते हैं। उत्थान का या पतन का! उत्थान का रास्ता चुनना चाहिए। पंचवर्षीय प्रोजेक्ट की साधना करें, उसकी आराधना करें। अपने जीवन को आगे बढ़ाएंगे तो धन्य बनेंगे।

तपस्या का क्रम जारी है। श्री प्रखर श्री जी म.सा. और श्री जयंकारा श्री जी म. सा. की आज 29-29 की तपस्या चल रही है। और कई भाई-बहनों की भी तपस्या चल रही है। इनसे प्रेरणा लें। इतना ही कहकर विराम।

02 अक्टूबर, 2021

4

सिद्धत्व का शिलान्यास

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

घड़ी में कितने बजे हैं?

(व्याख्यान में उपस्थित लोगों की तरफ से आवाज आती है- दस बजकर बीस मिनट हो रहा है)

घड़ी के काँटे दस और चार के अंक पर पहली बार आए? घड़ी के काँटे कितनी बार घूम गए?

(उपस्थित जन- अनेक बार घूम गए)

इसके काँटे घूम रहे हैं। छह से बारह और बारह से छह पर काँटे घूम रहे हैं।

कभी हमने सोचा कि हमारी जिंदगी क्या है? घड़ी के काँटों की तरह हम भी घूम-फिरकर वहीं-के-वहीं खड़े हैं। हमें लगता है कि हमने विकास कर लिया, हमने ऊँचाइयाँ प्राप्त कर लीं। हमें अपने धन और वैभव पर बड़ा गौरव होता है। गौरव होता है कि मैंने ऊँचाइयाँ प्राप्त की हैं। बारह पर दोनों काँटा चले जाने के बाद काँटा वापस रेंगता हुआ नीचे आ जाता है। यह क्रम चलता रहता है। जैसे घड़ी का काँटा चलता रहता है, वैसे ही हमारे जीवन की गति होती रही है। नरक से निकल पशु योनि में गए। पशु योनि से निकल मनुष्य गति में गए। मनुष्य से देव गति में चले गए फिर काँटा घूमा और मनुष्य बने। पशु और नरक में चले गए। ये काँटे घूमते रहे, घूमते रहे। अनादि काल से घूमते रहे।

घड़ी को बने हुए कुछ वर्ष हुए होंगे। घड़ी का निर्माण, आविष्कार हजारों वर्षों की देन है। हो सकता है तब से घड़ी के काँटे घूम रहे हों, किंतु हमारी जिंदगी के, जीवन के काँटे अनादिकाल से घूम रहे हैं।

जयंती बाई श्राविका थी। भगवान महावीर की पर्युपासना करते हुए, उसने पूछा कि भगवान! जीव भारी कैसे होता है, संसार में डूबने वाला कैसे होता है? किससे होता है?

भगवान ने बताया कि हिंसा करने से, झूठ बोलने से, 18 पापों का सेवन करने से जीव भारी होता है, वह डूबता है। संसार में बैठ जाता है। गहरा चला जाता है।

कोई भी भारी चीज पानी में डालोगे तो वो डूब जाएगी। यदि हलकी चीज डाली जाए तो वह तिरकर ऊपर आ जाएगी। उसने भगवान से यह भी पूछा कि भगवान जीव हलका कैसे होता है?

भगवान ने कहा, 18 पापों से निवृत्त होने से जीव हलका होता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है कि भगवान महावीर से पूछा गया कि सामायिक का क्या लाभ होता है?

भगवान ने जवाब दिया कि सावद्य योग से विरत होता है, विरक्त हो जाता है, उससे अलग हो जाता है अर्थात् आत्मा लाभ की भागीदार हो जाती है।

क्या है सावद्य योग? हम बोल रहे हैं कि पाप में प्रवृत्त मन, वचन, काया के योग सावद्य हैं। किसी डूबने वाले जहाज में बैठना चाहेंगे या डूबते हुए जहाज से निकल कर पारगामी जहाज पर आरूढ़ होना चाहेंगे? पारगामी जहाज में अपने आपको आरूढ़ करना चाहेंगे। सावद्य योग का त्याग मतलब 18 पापों का त्याग। सारे पापों का त्याग। सावद्य का अर्थ होता है पापकारी योगों का त्याग, अर्थात् मेरा मन पाप में प्रवृत्त नहीं होगा। मेरे वचन पाप में प्रवृत्त नहीं होंगे। मेरी काया कोई पापकारी कार्य नहीं करेगी। यह प्रतिज्ञा होती है। सामायिक यदि शुद्ध मन से होती है तो संसार की भौतिक संपदा से उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। कैलाश जैसा पर्वत, सोने-चाँदी का पर्वत एक तरफ पड़ा रह जाएगा और सामायिक की साधना एक तरफ रह जाएगी।

क्यों रह जाएगी?

क्योंकि उसमें सारे पापों का त्याग हो गया। वैसे जीव न हलका न भारी है, किंतु कर्म संयोग से वह हलका व भारी हो गया।

कृष्ण वासुदेव को तौला जा रहा है। कितना ही धन, सोना-चाँदी

डाला गया, किंतु काँटा बराबर नहीं हो रहा था, पलड़ा बराबर नहीं हो रहा था। एक तुलसी का पत्ता दूसरे पलड़े में रखा गया तो कृष्ण वासुदेव का पलड़ा ऊँचा हो गया। इससे तुलसी की महत्ता का पता चलता है। ऐसा वैदिक संस्कृति में बताया गया है।

बताओ तुलसी की महत्ता कितनी है?

हमें तुलसी का महत्त्व नजर नहीं आता, क्योंकि हमारी दृष्टि उसके आकार-प्रकार को देख रही है। जैसे तुलसी का महत्त्व नहीं जानते, वैसे ही सामायिक के महत्त्व को हम अभी तक समझ नहीं पाए हैं। औपचारिक रूप से हम सामायिक कर रहे हैं। उसकी गहराई में नहीं जाते। उसको स्पर्श नहीं कर पाते। जिस दिन उसका स्पर्श हो जाएगा, उस दिन लोहे के समान हमारी चेतना, हमारी जिंदगी स्वर्ण में बदल जाएगी। जैसे पारस पत्थर का स्पर्श लोहे को सोना बनाता है, वैसे ही सामायिक हमारे जीवन को स्वर्णमय बना देती है।

क्या समझे? आप क्या समझे ये बताओ? बताओ लोहे से सोना बनाने का क्या मतलब है?

(श्रोता- परिवर्तन)

परिवर्तन का क्या मतलब? परिवर्तन तो आपको हजार मिल जाएंगे। आप वस्तुस्थिति को समझो।

पास में रसोईघर बना हुआ है। भोजनशाला या रसोईघर के ऊपर पतरे लगे हुए हैं। जब पानी गिरता है तो पतरे आवाज करते हैं। आपने देखा होगा कि लोहार के वहाँ लोहे को कूटा जाता है तो लोहा जोर-जोर से आवाज करता है। सोने को भी कूटा जाता है, किंतु जब सोनार सोने को कूटता है तो उसकी आवाज गंभीर होती है। सोना चिल्लाता नहीं है। हल्ला नहीं करता। स्वर्णमय जीवन बनाने का मतलब है कि जीवन में गंभीरता आ जाए, दृढ़ता आ जाए। जीवन ठोस हो जाए।

सोने का मूल्य क्या है? सोना जातिवान धातु है। हम भी जातिवान बन जाएंगे तो ठोस हो जाएंगे। फिर कितनी भी समस्याएँ, कितनी भी विपत्तियाँ विचलित नहीं कर सकेंगी। वह किनारे हो जाएंगी और रास्ता क्लीयर हो जाएगा। सामायिक वह साधना है जो सर्वज्ञ बना सकती है। सामायिक वह साधना है, जिससे हमारा जीव सर्वज्ञता हासिल कर सकता है। सावद्य क्रिया

करते हुए, पाप करते हुए पवित्रता प्राप्त होना मुश्किल है। पाप से विरक्त होंगे तो पवित्रता मिलेगी। कोयले की खदान में बैठेंगे तो कितने भी सावधान रहें, कपड़े और हाथ काले हुए बिना नहीं रहेंगे। वैसे ही हिंसा में, परिग्रह में, पाप में बने रहेंगे तो उसका अंश लगेगा। सावद्य योग से विरक्त होने का मतलब है कि पापों से अपने आपको विरक्त कर लेना। पाप से स्वयं को दूर कर लेना।

पूणिया श्रावक के सामायिक की चर्चा बहुत बार हम सुनते रहे हैं। हम सुनते रहे हैं कि उनकी सामायिक इतनी महत्त्व लिए हुई थी कि भगवान महावीर मगध सम्राट श्रेणिक से कहते हैं कि उसकी एक सामायिक भी तुम ले लो तो तुम्हारा नरक टल जाएगा।

कितने दु:ख हैं नरक में?

(श्रोता– बहुत हैं)

यह तो आपका सुना हुआ है इसलिए बोल दिया कि बहुत है। अनंतानंत दु:ख है नरक में। नरक जितने दु:ख मनुष्य जीवन में नहीं हैं, फिर भी लोग दु:खी हो जाते हैं। नरक सदृश्य वेदना मनुष्य जीवन में नहीं है। मनुष्य को कितना भी दु:ख हो जाए, कितनी भी पीड़ा हो जाए उससे अनंत गुणा दु:ख नरक में होता है। हम उन दु:खों का अनुभव कर चुके हैं। पाप में हमारी प्रवृत्ति होती रही तो पुन: नरक में अवस्थान होगा। जैसे घड़ी के काँटे बारह से छह पर, छह से नौ पर और नौ से बारह पर घूमते रहते हैं, वैसे ही हमारा जीव चार गतियों में भ्रमण करता रहेगा। इसे भ्रमण करने से कोई रोकने वाला नहीं है। सामायिक की साधना ही इसको रोक सकती है।

धर्म में गया समय सार्थक होता है। जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण बन जाता है। वह समय जीवन के लिए निर्णायक बन जाता है। 25 रंगी सामायिक का संघोष उपाध्यायश्री द्वारा प्रेरित किया गया। उनके द्वारा एक आह्वान किया गया, जिसकी अनुभूति आप लोगों को हुई होगी। क्या अनुभव हुआ वह आप स्वयं जान सकते हैं। आपको कैसा अनुभव हुआ होगा? उस समय यदि आपको नींद आ रही होगी तो आपका अनुभव केवल औपचारिक हुआ। उसको औपचारिक ही कहूँगा।

क्या है औपचारिक? आपने रात भर गीत गा लिया या आपस में ज्ञान चर्चा कर अपने मन को उसमें लगा लिया होगा, किंतु आत्मा से साक्षात्कार

कितना हुआ? अपने भीतर भगवत्ता की आराधना को कितना उतारा।

एक भाई ने कल प्रश्न किया था कि गुरुदेव भीतर जाने का रास्ता क्या है? बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। आज भी वैसा ही प्रश्न हमारे सामने खड़ा है कि साधना को भीतर कैसे उतारा जाए? वह रास्ता कौन-सा है?

वह सामायिक का रास्ता है। वह स्वाध्याय का रास्ता है। इसके माध्यम से गहराई में उतर सकते हैं। एकाग्र होने के लिए श्वास देखने की बात कही जाती है। न केवल श्वास, बल्कि अपनी सारी चर्याओं पर दृष्टि केंद्रित करें। अपने भीतर द्रष्टा भाव लेकर आयें और देखते रहें कि मेरा मन क्या सोच रहा है। मेरी वाणी क्या बोल रही है। मेरा शरीर क्या गतिविधि कर रहा है। एक सेकेंड का समय भी ऐसा नहीं जाए कि आपको मन की गतिविधि ज्ञात न हो सके। वचन और शरीर की परिणति आपके अनुकूल रह जाए और द्रष्टा भाव आपमें आ गया तो आप देखना कि क्या अनुभूति होती है। हम बहुत बार अनुभूति से उलझ जाते हैं, घबरा जाते हैं। कुछ हो गया तो? वहाँ कुछ होने के लिए अनुभूति होती है, किंतु हम कुछ होने देना नहीं चाहते। जैसे हैं, वैसे ही बने रहना चाहते हैं। वह अनुभूति बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है, जिसमें आप केवल द्रष्टा बनकर जी रहे हैं। कोई प्रतिक्रिया नहीं। कोई प्रतिध्वनि नहीं। आप अपने में निमज्जित हो, आप अपने में लीन हो। आपके सामने चलचित्र चल रहे हैं, किंतु कोई प्रतिक्रिया नहीं है। ऐसी सामायिक जो आपकी अनुभूति के साथ गुजरेगी, उसकी कीमत किसी भी भौतिक संपदा से नहीं तौली जा सकती। इसीलिए पूणिया श्रावक की सामायिक की कीमत 52 डूँगरी थी। उसकी कीमत नहीं, दलाली के लिए भी वह पर्याप्त नहीं था। उसकी कोई तुलना नहीं थी। एक सामायिक का परिणाम, एक सामायिक का समय यदि हमने साध लिया और वह समय हमारी मुट्ठी में आ गया तो जो होगा, वह अद्भुत होगा।

महासती प्रेक्षाश्री जी ने विभिन्न तरीके से सामायिक की बातें बताईं और उपाध्यायश्री जी ने पच्चक्खाण के विषय में बताया। वे प्रत्याख्यान आपको कहाँ ले जाने वाले हैं? वे आपको भीतर उतारने वाले हैं। बाहर की चीजें छूटती जाएंगी, छँटती जाएंगी और आपका जीवन आगे बढ़ता जाएगा। आपके कदम आगे बढ़ते चले जाएंगे, किंतु लोग केवल औपचारिकताओं में रह जाते हैं। सामायिक पच्चक्ख लेते हैं, पर मन कहीं और होता है। सोचते हैं कि उसे जल्दी

पूरा करना है। ऐसी नीयत होती है तो सही परिणाम नहीं मिलते। अत: आत्ममंथन करें।

सरकार की तरफ से जमीन नीलाम हो रही थी। उसमें हीरे रहे होंगे। सरकार उसको लीज पर दे रही थी। एक व्यक्ति ने सौ मीटर लंबी-चौड़ी या पाँच सौ मीटर लंबी-चौड़ी जमीन ले ली। सरकार की तरफ से निश्चित होता है कि खदान में से कितनी गहराई तक खुदाई कर सकते हैं। उससे ज्यादा खुदाई नहीं हो सकती। यह भी निश्चित होता है कि कितने समय के भीतर खुदाई कर लेनी है। जिसे लीज पर जमीन प्राप्त हुई थी उस व्यक्ति ने सोचा कि अभी तो मेरे पास खूब टाइम है, बाद में एक साथ ही खुदाई कर लूंगा और हीरे निकाल लूंगा।

ऐसे करने से क्या होगा?

(श्रोता- समय पूरा हो जाएगा)

फिर लीज पर ली गई जमीन किस काम आई? वह उसकी खुदाई नहीं कर पाया तो जमीन लीज पर लेने का मतलब क्या हुआ? उसके पैसे गए और मिला कुछ नहीं।

सुमित मुनि म.सा. बोल रहे थे, तब मेरे भीतर प्रतिक्रिया पैदा हो गई। उन्होंने बोला कि समय की बचत करना, समय का बचाव करना तो बचाव करने का उपाय मैं बता देता हूँ। साढ़े आठ से दस बजे तक आप व्याख्यान में आते हैं। उसमें जो नहीं आए उसका डेढ़ घंटे बच जाएगा। कल से समता भवन, जवाहर भवन और नानेश रत्नम् नहीं आने से आपका बहुत-सा समय बच जाएगा, किंतु ध्यान में लेना, केवल समय के बचाव की बात नहीं कही गई है। इस्तेमाल की बात कही गई है। आपने लीज पर जमीन ले ली, किंतु उसका इस्तेमाल नहीं किया और वह जमीन हाथ से चली गई तो क्या इस्तेमाल हुआ। उसमें से बहुत कुछ निकाला जा सकता था। उससे बहुत ऊँचाइयाँ प्राप्त की जा सकती थी, किंतु वह व्यक्ति उससे वंचित रह गया।

मैं जहाँ तक सोचता हूँ व्यक्ति ऐसी गलती कभी नहीं करता। रत्नों की जमीन को खुदाई के बिना वह छोड़ नहीं सकता।

अपनी जिंदगी में कितने रत्न भरे हुए हैं? और क्या-क्या भरा हुआ है? इस मानव देह में, हमारी चेतना में बहुत शक्तियाँ भरी हुई हैं। कैसी-कैसी

शक्तियाँ भरी हुई हैं, उसे जानने का प्रयत्न नहीं करते। कभी खुदाई करके या ताले खोलकर देखने का प्रयत्न नहीं करते। सामायिक कहती है कि अपनी निधि, अपनी पूँजी को संभाल ले। लोग कहा करते हैं 'सामायिक की कमाई।' वह कमाई अपने आप सामने आ जाएगी इसलिए केवल सावद्य योगों का पच्चक्खाण ही नहीं करें, अपितु उसमें रही संपदा को प्राप्त करें। हीरे की खदान में हीरे का शोध करना है। हीरे की खोज करनी है।

हुं कौन छुं क्यांथी थयुं, शुं स्वरूप छे म्हारुं खरुं।
कोणा सम्बन्धे वलगणा छे, राखुं के ते परिहरुं।।

सम्बन्ध किस कारण से है, क्यों है? इन सम्बन्धों से क्या लाभ है? इनको रखना है या छोड़ना? ये संबंध यदि नहीं छूट पाते हों तो एक उपाय है कि अपने आपको किनारे कर लें। रेनकोट पहन लें। रेनकोट पहन लिया तो संबंधों के समुद्र में रहते हुए भी आपको उसका पानी भिगो नहीं पाएगा। कभी मोदी जी रेनकोट पहनने की बात बोले थे।

बताओ किसके लिए बोले थे?

(श्रोता- मनमोहन सिंह के लिए)

बहुत बढ़िया। यह बात आपको आसानी से याद रह गई। ऐसी बात कभी भूलते ही नहीं हो। अच्छा बताओ कि पंचवर्षीय प्रोजेक्ट कितनी तारीख को दिया गया था?

(हलकी-सी आवाज आती है- 25 अगस्त को)

किसी एक को याद रह गया बात अलग है, नहीं तो उस कागज को निकालकर देखो कि कहीं दीमक तो नहीं खा गया। मनमोहन के लिए मोदी ने कहा कि रेनकोट पहनकर स्नान करते हैं। भगवान महावीर ने पहले ही कहा है कि यदि रिश्तों के बीच रहकर संसार में जीना है तो रेनकोट पहनकर जीओ। उससे आत्मा को सुरक्षित रखा जा सकता है। राग-द्वेष व आसक्ति के छींटे आत्मा को स्पर्श नहीं कर पाएंगे। रेनकोट संवर का रूप है, सामायिक रूप है। यह अलगाव की साधना है। मेरा शरीर अलग है। मेरा परिवार अलग है। न वह मेरा है और न मैं उसका हूँ। ये विचार, ऐसी अनुभूति रेनकोट रूप है।

इसी को भगवान महावीर कहते हैं द्रष्टा भाव। जिसका द्रष्टा भाव जग गया, जिसके भीतर द्रष्टा भाव जागृत हो गया, उसको उपदेश देने की

आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह स्वयं देखने लगा है। जब तक आँखें नहीं खुलें, तब तक आँखें खुलवाने का प्रयत्न होता है। आँखें खुल ही गईं, अब क्या खुलवाना। दरवाजा बंद होता है, ताला लगा होता है, उसके लिए चाबी की जरूरत होती है। ताला खुला हो, दरवाजा भी खुला हो तो चाबी के प्रयोग की जरूरत ही क्या है। खुले हुए ताले पर चाबी लगाकर खोलने का काम अनभिज्ञ, अनाड़ी या नादान व्यक्ति ही कर सकता है। अत: भगवान की वाणी ध्यान में लें- ''उद्देसो पास्सगस्स नत्थि'' महासती कमलाकँवर जी म.सा. के विचारों पर अभी सोचने की बात है। उन्होंने कहा था कि गुरुदेव के अगले चातुर्मास में 50 मासखमण होने चाहिए। अभी 50 मासखमण पूरे हुए हैं।

उसमें से बाहर के कितने हैं और ब्यावर के कितने हैं?

(सामने से आवाज आती है- ज्यादातर ब्यावर के ही हैं)

एक राजा और उसके मंत्री तेनालीराम की कहानी आती है। लोगों ने कहा कि तेनालीराम बड़बोला व्यक्ति है यानी ज्यादा बोलने वाला है। हर बात पर बड़बड़ करता ही रहता है। बातें बहुत बघारता है। इसको कहीं-न-कहीं फँसाना चाहिए। एक बार लोगों ने प्रस्ताव रख दिया कि राजन् सब लोगों ने आपको भोजन के लिए बुलाया है, अपने घर पर बुलाया है, किंतु अब तक तेनालीराम ने आपको कभी भोजन नहीं कराया। हम चाहते हैं कि महामंत्री तेनालीराम आपको अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित करें। आप उनके वहाँ भोजन करने के लिए पधारें और वह अच्छे पकवानों का भोजन करवाए। सम्राट ने तेनालीराम की तरफ दृष्टि डाली और मुस्कुराने लगे। तेनालीराम ने कहा कि हुजूर आप स्वयं मेरे घर पधारें तो मैं धन्य हो जाऊँगा कि आप मेरे घर पर पधारे। आप मेरे घर का भोजन करेंगे मेरे को और क्या चाहिए। तेनालीराम ने कहा, तो सम्राट ने कहा कि ठीक है तुम कह रहे हो तो जरूर आएंगे। भोजन की तारीख निश्चित कर दी।

कौन-सी तारीख? 10 तारीख निश्चित हो गई। सम्राट ने तेनालीराम से कहा कि भाई कितने लोग साथ में लावें तो तेनालीराम ने जवाब दिया कि राजन् जैसा आपके जमे वैसा करें। राजदरबार में जितने भी लोग थे सब चलने के लिए तैयार थे। एक बरात हो गई। लोगों में उत्साह जगा कि हम उसके घर पर जाएंगे।

उधर तेनालीराम क्या करता है?

3 तारीख निकली, 4 तारीख निकली, 5 तारीख निकली, 6 तारीख निकली, 7 तारीख निकली। ऐसे करते हुए 8 तारीख भी निकल गई और 9 तारीख आ गई। तेनालीराम राजदरबार में सम्राट के सामने हाथ जोड़ खड़ा हो गया। राजा ने कहा कि क्या हो गया? उसने कहा, राजन् लाख प्रयत्न करने के बावजूद बाजार में थाली और लोटे नहीं मिले। मैं लोटे और थाली की व्यवस्था नहीं कर पा रहा हूँ। मेरी आपसे केवल इतनी विनती है कि जो भी मेरे घर पर भोजन करने के लिए पधारें वे सभी लोटे और थाली साथ में लेकर आएं।

राजा ने घोषणा करा दी कि जो भी तेनालीराम के यहाँ भोजन के लिए चलेंगे वे सभी लोटा और थाली साथ लेकर जाएंगे। लोगों ने कहा कि जाना ही है तो लोटा, थाली साथ लेकर जाएंगे। वे लोग अपने घर में जैसी भी थाली थी फूटी-टूटी उसमें भी खा लेते थे, किंतु दूसरी जगह थाली ले जानी है तो घर में जो सबसे बढ़िया थी, सोने-चाँदी की थाली और लोटा लेकर गए। उनको बैठा दिया गया। सबको परोसगारी की व्यवस्था तेनालीराम कर रहा है। पहले जमाने वाला पंखा ऊपर से झुला रहा है। लोग कहने लगे कि वाह! क्या कहना है तेनालीराम का! बहुत जोरदार व्यवस्था की है। आपने तो हमको धन्य कर दिया। रिकॉर्ड तोड़ दिया। तेनालीराम कहता है- 'अन्न आपरो, धन आपरो म्हारी तो खाली वाहवाही है।'

लोग जैसे ही हाथ धोकर लोटा-थाली उठाने लगे तो तेनालीराम ने हाथ जोड़कर कहा, इतना तो मेरी शान को, इज्जत को बचाओ आप लोग। आप जूठी थाली लेकर जाएंगे तो मेरे लिए शर्म की बात होगी। तेनालीराम ने कहा कि सबकी थालियों और लोटों पर नाम अंकित है। ये लोटे और थाली आपके घर पहुँचाने का प्रयत्न करूंगा। लोगों ने सोचा कि जूठी थाली कौन धोये। उनके लिए तो ऊँघते को बिछौना की बात चरितार्थ हो रही थी। सबने कहा कि ठीक है। सभी लोगों ने थालियाँ वहीं छोड़ दीं।

उसके बाद 11 तारीख, 12 तारीख और 13 तारीख तक निकल गई किंतु थालियाँ वापस नहीं आईं तो लोगों ने राजा के पास शिकायत की कि हमारी थालियाँ नहीं आ पाई हैं। राजा ने तेनालीराम को बुलाया और कहा कि क्या बात है भाई, आपने लोगों की थालियाँ नहीं पहुँचाईं तो उसने कहा कि

अन्नदाता मैंने पहले ही बोला था कि अन्न आपरो, धन आपरो म्हारी तो खाली वाहवाही है। तेनालीराम ने बताया कि सभी थालियाँ मूलचंद जी के घर गिरवी रखी हुई हैं। लोग पैसे चुकाएं और अपनी-अपनी थालियाँ ले आएं। उन्होंने कहा कि मैं जितना भी माल लाया था, वह वहाँ से उधार लाया था। उसके बदले मैंने वहाँ थालियाँ गिरवी रख दी हैं। अब उधारी चुकाओ और अपनी थालियाँ ले जाओ।

राजा ने कहा कि यह कैसी बात हुई?

तेनालीराम ने कहा कि मैं तो पहले ही बोला कि अन्न आपरो, धन आपरो म्हारी तो खाली वाहवाही है। कहने का आशय हम वाहवाही लूटने में ही न रहें।

महासती श्री प्रखर श्री जी म.सा. और महासती श्री जयंकारा श्री जी म.सा. की तपस्या के विषय में महासतियों से सुन लिया। मनोबल मजबूत हो तो लक्ष्य को पाया जा सकता है।

ईश्वरचंद जी म.सा. का मेवाड़ में विचरण हो रहा था। चातुर्मास के लिए मैंने उनसे कहा कि रास्ता लंबा पड़ जाएगा, तो कहा संतों का लक्ष्य हो जाना चाहिए। लक्ष्य के बाद सब हो जाता है। वह चातुर्मास के लिए पधारे। कहने का मतलब है कि लक्ष्य बन जाता है तो आंतरिक शक्ति जग जाती है।

नानालाल जी पोखरणा ने पहली बार भोपाल सागर में ट्रेन देखी। उस समय वे छोटे थे। ट्रेन देखकर उन्होंने सोचा कि एक इंजन कितने डिब्बे को ले जा रहा है। मैं भी बड़ा होकर ट्रेन चलाऊँगा। लक्ष्य बना, तो बड़े होकर चतुर्विध संघ रूपी ट्रेन को चलाने वाले बन गए। अत: ये सोच लो कि कुछ भी हो जाये मुझे अपनी मंजिल प्राप्त करनी है। ये सोच लो कि मंजिल अब दूर नहीं है। शुद्धता से एक सामायिक कर अपनी आत्मा के साथ जुड़ने का प्रयत्न करेंगे तो अवश्यमेव वह सामायिक आनंद देने वाली बनेगी। शुभता देने वाली बनेगी। जीवन में आनंद पहुँचाने वाली बनेगी। जिसकी तुलना किसी से नहीं हो सकती। पूणिया श्रावक को जो आनंद आ रहा था सामायिक में उससे भी बढ़कर हम आनंद ले सकते हैं और हम भी धन्य बन सकते हैं। इतना ही कहकर विराम।

03 अक्टूबर, 2021

5

चैतन्य बोध दुर्लभ

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

दिन और रात दो अवस्थाएँ हैं। एक को हम दिन कहते हैं और दूसरी को रात कहते हैं। दिन और रात में फर्क क्या है, यह हम सब जानते हैं। दिन में उजाला होता है। सूर्य को दिनकर कहा गया है। जिसमें सूर्य का उजाला प्राप्त होता है, जो दिनकर के प्रकट होने से होता है, उसे दिन कहते हैं। रात सामान्यत: अंधेरे को कहा गया है। रात अंधेरी हुआ करती है। बहुत कम रात्रियाँ प्रकाश फैलाने वाली होती हैं।

जैसे दिन और रात दो अवस्थाएँ होती हैं, वैसे ही जीव की दो अवस्थाएँ होती हैं; इंद्रियरामी और आत्मरामी। इंद्रियरामी अवस्था आत्मविमुख है। जिसमें आत्मा का उजाला नहीं है, जिसमें आत्मा का प्रकाश नहीं है, जिसमें ज्योत्सना नहीं है, वह अवस्था इंद्रियरामी अवस्था है, अर्थात् अंधेरी रात है। इंद्रियरामी अवस्था वाला व्यक्ति यदि जगा हुआ भी है तो इंद्रियों के प्रति जागृत है। उसे इंद्रियों के विषय सुखकर प्रतीत होते हैं। उसे लगता है कि इंद्रियों के विषयों की प्राप्ति हो जाए। इंद्रियों को सुख मिल जाए। इंद्रियाँ शांत हो जाएं। इंद्रियों की अनुकूल अवस्था को वह सुख मानता है। गरमी में शीतलता मिल जाने पर, छाया मिल जाने पर वह सोचता है कि सुख मिल गया। हकीकत में वह इंद्रिय सुख है। वह बाहरी यानी त्वचा को लगने वाला सुख है। उसका आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

गजसुकुमाल के सिर पर अंगारे रखे गए। उससे उनका शरीर जल रहा था पर आत्मा नहीं। गजसुकुमाल के चित्त में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। अंगारे रखे जाने से पूर्व वे जिस अवस्था में थे अंगारे रखे जाने के बाद भी उसी

अवस्था में रहे। उनके चित्त पर कोई फर्क नहीं पड़ा। शरीर से जिसका ध्यान हट गया, इंद्रियों से जिसका ध्यान हट गया उसको यह फिक्र नहीं होती कि शरीर में क्या घट रहा है।

दो अवस्थाओं की बात बताई जा रही है; इंद्रियरामी और आत्मरामी। रामी का अर्थ होता है रमण करना, युक्त होना, लगे रहना। इंद्रियरामी, इंद्रियों के सुख को जुटाने की कोशिश करता है। रात्रि का हमारा अधिकांश समय सोने में व्यतीत होता है। विश्राम करने में हमारा रात्रि का समय बीतता है। वैसे ही इंद्रियों के सुख में हमारा समय व्यतीत हो रहा है। यदि आत्मा की दृष्टि से विचार करें तो हम सो रहे हैं। हम जिसको विश्राम मान रहे हैं, वह विश्राम नहीं, प्रमाद है। जिसमें आत्मविस्मरण है, वह प्रमाद है। जब सोते हैं, उस समय यह भान नहीं होता कि हम कहाँ हैं?

कहा जाता है कि सम्राट मानसिंह रात में जब सोया हुआ था, उस समय उसको बँधवाकर उसकी छोटी महारानी अपने पीहर ले गई। इस संबंध में और भी बहुत सारे किस्से मिलते हैं। एक किस्सा द्रौपदी का भी है। कहा जाता है कि सोई हुई अवस्था में उसे उठाकर समुद्र पार ले गए।

सुसुप्तावस्था ऐसी ही अवस्था है, जिसमें व्यक्ति को भान नहीं रहता कि वह कहाँ है। वह जब जगता है, तब सोचता है कि मैं कहाँ था और कहाँ आ गया। वैसे ही आत्मजागरण के क्षणों में व्यक्ति सोचता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, तब उसको अपनी पहचान होती है अन्यथा इसकी भी पहचान नहीं होती कि मैं कौन हूँ। इसकी भी पहचान नहीं होगी कि मैं कहाँ से आया हूँ।

श्रीमद् आचारांग सूत्र में कहा गया है कि जीव पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण आदि चार दिशा, चार विदिशा तथा ऊपर व नीचे की दिशाओं में घूमता है यानी जन्म-मरण करता है। उसको मालूम नहीं है कि वह किस दिशा से आया है और किस दिशा में जाना है। कभी-कभी ज्ञान से, ज्ञानियों के मुँह से सुनकर व्यक्ति जान पाता है कि वह पहले कहाँ था और अब किस दिशा में है।

ऐसे बहुत सारे आख्यान मिलेंगे, जिनमें जातिस्मरण ज्ञान के माध्यम से जाना गया कि वह कहाँ से आया और कहाँ था। जातिस्मरण ज्ञान से अपने 900 भवों को जाना जा सकता है, यदि बीच में कोई असंज्ञी का भव नहीं

आया हो तो अपने 900 भवों का ज्ञान जातिस्मरण से हो जाता है। उन भवों की बातें स्मृति में आ सकती हैं। केवलज्ञान से संपूर्ण अवस्थाओं को जाना जाता है।

श्रीमद् भगवती सूत्र में एक गाथा के माध्यम से भगवान महावीर ने सुदर्शन को बोध कराया है। यह सुदर्शन अंतगड सूत्र वाला नहीं है। यह दूसरा है। महावीर भगवान उनको बता रहे हैं कि तुम विमलनाथ भगवान की परम्परा में दीक्षित हुए थे। महाबल नाम था। तुमने संयम की परिपालना की। उसके बाद दस सागरोपम की स्थिति वाले देव बने थे। देव भव से च्यवकर तुम यहाँ आकर सुदर्शन बने हो। भगवान ने उनको पूर्व जन्म की कहानी विस्तार से सुनायी कि कहाँ तुम्हारा जन्म हुआ, कैसा तुम्हारा यौवन रहा। उन्होंने सारा वृत्तांत सुनाया, किंतु हम संक्षेप में बात करते हैं। भगवान ने सुदर्शन को जैसे ही सुनाया तो उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह स्वयं अपनी पूर्व स्थितियाँ जानने लगा।

मेघ कुमार का रात्रि को विश्राम नहीं हो पाया और वे कहाँ चले गए?

(कुछ लोगों ने कहा, घर और कुछ लोगों ने कहा, विचारों में चले गए)

वैसे वे जग रहे थे, किंतु दूसरी भाषा में बात करें तो वे सोये हुए थे। भगवान कहते हैं कि परीषह रूपी शत्रु को जीतो और मोह को भून डालो। मोह जब तक बना रहता है, तब तक कहीं-न-कहीं घेराव करता है। मेघ मुनि बहुत उत्कृष्ट भावों से साधु बने थे। उनके परिवारवालों ने समझाने में कोई कमी नहीं छोड़ी थी। उनकी माता रोती रहीं, बिलखती रहीं। मेघ कुमार के सामने उनकी माता बेहोश हो गई, गिर गई। फिर भी उनके मन में मोह का भाव नहीं जगा। उनके मन में ममत्व का भाव नहीं जगा। मेघ कुमार की दीक्षा के बाद प्रथम रात्रि में संतों के पाँवों का स्पर्श मेघ मुनि को हुआ तो उन्हें नींद नहीं आई। मेघ मुनि की आत्मा सो गई, किंतु मेघ मुनि जागृत था। मेघ मुनि भाव सुषुप्ति में चले गए कि मुझे ऐसा साधु जीवन नहीं चाहिए। किसी साधु ने मेघ मुनि को जान-बूझकर ठोकर नहीं लगाई थी। अंधेरा होने की वजह से ठोकर लग गई थी। साधुओं के पास प्रकाश, लाइट कुछ होती नहीं इसलिए आते-जाते वक्त स्वाभाविक रूप से उनके पैरों का स्पर्श हो गया। साधु का पैर लगने से मेघ मुनि दु:खी हो गए। उनके दु:ख का कारण था उनका मान कि मैं जब राजकुमार था, तब मेरा कितना मान-सम्मान हुआ करता था और साधु बन गया तो अपमान

होने लगा। कोई मुझे समझता ही नहीं। मेरी तरफ किसी का ध्यान ही नहीं है।

भले ही अहंकार कम हो या ज्यादा, किंतु वह जैसे ही भीतर जगता है आदमी को परेशान करता है। ध्यान रहे, जैसे एक छोटी-सी आलपीन अपने भीतर से वस्तु को निकलने नहीं देती, वैसे ही छोटा-सा अहंकार वीतरागी नहीं बनने देगा। कौन नहीं जानता कि पाँव में चुभा हुआ छोटा-सा काँटा गति रोक देता है। वैसे ही थोड़ा भी अहंकार रहेगा तो हम रागी रहेंगे। उसके संसार में अटके रहेंगे। अहंकार भले ही थोड़ा हो, किंतु घातक है। भले ही मेघ मुनि को अहंकार नहीं आया हो, किंतु कहीं-न-कहीं उस अहंकार की झलक उनके भीतर जगी थी। रातभर मेघ मुनि नींद नहीं ले सके। वह मन की व्यथा में अपने आपको कोसते रहे। अपने मन में अपने से बातें करना बड़ा घातक होता है। जो अपने मन से बातें करता रहेगा, वह कहाँ-से-कहाँ तक की बातें करता रहेगा, उसके मंद विचार कहाँ से कहाँ चले जाते हैं, यह मेघ मुनि के जीवन से, उसके विचार से समझ सकते हैं।

मेघ मुनि ने विचार कर लिया कि मुझे अब साधु जीवन में नहीं रहना। उन्होंने सोच लिया कि जब सूर्योदय होगा तो मैं भगवान के पास जाऊँगा। भगवान को निवेदन कर दूंगा और वंदना-नमस्कार कर लूंगा। जैसे अपनी भाषा में जय-जिनेंद्र, राम-राम कहते हैं, कुछ उसी तरह उन्होंने सोच लिया। सूर्योदय होने पर मेघ मुनि, भगवान के पास जाते हैं। भगवान उनको देखते हैं कि वे नीची निगाह करके खड़े हैं। भगवान से उसकी निगाह नहीं मिल पा रही थी। अंततोगत्वा भगवान ने कहा कि मेघ! क्या कल रात्रि तुम्हारे मन में ऐसे-ऐसे विचार पैदा हुए?

भगवान से कुछ छुपा नहीं रहता। मेघ मुनि मुँह से कुछ बोल नहीं पा रहे थे। भगवान ने बात चलाई तो मेघ मुनि ने कहा कि भंते! आप जैसा फरमा रहे हो वैसी ही बात है। भगवान ने कौन-सा सूत्र दिया मेघ मुनि को? भगवान ने कहा कि मेघ थोड़ा पीछे मुड़कर देख, तुम्हें मालूम हो जाएगा। मेघ मुनि कहते हैं, भगवन्! जब मैं पीछे देखता हूँ तो पाता हूँ कि मैं राजकुमार था। मुझे माता-पिता का ममत्व प्राप्त था, वात्सल्य था, नौकर-चाकर हाथ जोड़कर खड़े रहते थे। पीछे सुख का साम्राज्य था। आगे देखूं तो दुःख ही दुःख नजर आ रहा है। भगवान ने पहले वाले जन्म को देखने की बात कही। मेघ मुनि को

जातिस्मरण ज्ञान हुआ। वे देखने लगे कि एक हाथी के भव में मैंने कितने परीषह सहन किए। उनके सामने एकदम वह तसवीर, वह पिक्चर आ गई।

मेघकुंवर हाथी रा भव में करुणा करी श्री जी बताई।
प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व री, अनुकम्पा की, समकित पाई।।
अनुकम्पा सावज्ज मत जाणो।।

प्राण, भूत, जीव और सत्व की अनुकंपा करने से उनको सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई थी। भगवान ने मेघ मुनि से कहा कि तुमने अनादिकाल से जिस सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति नहीं की थी, उस रत्न की प्राप्ति हाथी के भव में की।

यह कहानी आपने बहुत बार सुनी होगी कि जंगल में आग लगने की स्थिति में एक हजार योजन भूमि को सुरक्षित कर लिया गया था। वहाँ का कचरा हटा लिया गया, ताकि आग का प्रवेश नहीं हो सके। जंगल में आग लगी। हाथी दौड़कर आया, तब तक वह जगह जानवरों से भर चुकी थी। हाथी भी घुस गया। कुछ समय पश्चात् उसके शरीर में खुजली हुई तो वह एक पाँव ऊपर करके खुजलाने लगा। खुजलाने के बाद पैर नीचे रखने लगा तो देखा कि दूसरे जीवों से धकेला हुआ खरगोश का एक बच्चा उस पैर की जगह पर आ गया था। यह देखकर हाथी ने अपना पैर ऊपर ही रहने दिया।

कितने घंटों तक रहने दिया?

बीस पहर तक उसने अपने एक पाँव को ऊपर रखा। बीस पहर यानी ढाई दिन-रात। साठ घंटों तक उसने पैर को ऊपर रखा। आपके सामने ऐसा अवसर आ जाए कि एक पैर ऊपर करके खड़े रहना है तो कितने समय तक खड़े रह सकते हैं?

(श्रोता- आठ मिनट तक ही नहीं रह सकते)

ऐसा बताया जाता है कि पूज्य मुनि श्री श्रीलाल जी म.सा. के लिए वारंट निकाला गया। आचार्य पूज्य श्री श्रीलाल जी म.सा. ने स्वयं दीक्षा ली थी। अत: परिवारवालों ने वारंट निकलवाया। सूबेदार ने उनसे कहा कि आप यहाँ से टोंक चले जाओ नहीं तो पकड़कर पहुँचाया जाएगा। उस समय वे आचार्य नहीं बने थे। मुनि अवस्था में थे। उन्होंने कहा कि हम संत हैं। अपनी मरजी के राजा हैं।

ठहरे तो खेर की खूँटी, चले तो पवन की बूटी। ऐसा कहकर वे ध्यान

लगाकर एक पैर पर खड़े हो गए। वह एक पैर पर तीन घंटे तक खड़े रहे।

ठहरे तो खेर की खूँटी का मतलब है कि जैसी हवा बहती है वैसे ही हम चलते हैं। हम बहती हवा की तरह बह जाते हैं। एक लकड़ी होती है खैर की। उसकी खूँटी बड़ी मजबूत होती है। वैसे ही हम ठहर गए तो हमें कोई हटा नहीं सकता।

सूबेदार उनकी दृढ़ता देखकर घबरा गया। उसने श्रीलाल जी म.सा के भाई साहब को बुलाया और कहा कि मुझे माफ करना भाई साहब! मैं भी बाल-बच्चे वाला हूँ। ये समझ जाएं तो आप ले जाएं नहीं तो हमारे हाथ में नहीं है इनको समझाना। मैं इनको समझाने में समर्थ नहीं हूँ। पूज्य श्री श्रीलाल जी तीन घंटे तक खड़े रहे। हाथी के भव में मेघ मुनि का जीव भी साठ घंटे एक पैर को ऊपर रखकर तीन पैरों पर खड़ा रहा। आग बुझने पर उसके आगे-पीछे से जीव-जानवर निकले। हाथी ने भी वहाँ से गमन करने के लिए पाँव को नीचे रखने का प्रयत्न किया, किंतु अपने आपको संभाल नहीं पाया। वह धड़ाम से नीचे गिरा और उसका वहीं देहांत हो गया।

यह दृश्य कौन देख रहा था?

(श्रोता- मेघ मुनि देख रहे थे)

वे जातिस्मरण ज्ञान से देख रहे थे कि जैसा भगवान ने बताया वैसा का वैसा है। वह भगवान के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं, भगवन् मुझे पुनः दीक्षित कीजिए। मुझे पुनः शिक्षित कीजिए। साथ ही कहा कि मैं साधु जीवन में नहीं रहा। मैं कहीं और चला गया। मेरी सुषुप्ति हो गई। मेघ मुनि ने भगवान से कहा कि मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब अपनी इन दो आँखों की रक्षा करूंगा, बाकी सारा शरीर संतों की सेवा में समर्पित है।

दो आँखों की रक्षा किसलिए? आँखों की रक्षा इसलिए क्योंकि आँखें नहीं रहेंगी तो संयम की पालना दुष्कर होगी? ईर्या समिति का पालन कैसे होगा और प्रतिलेखना कैसे होगी? आँखों के आधार पर संयम का, यतना का पालन हो सकता है। आँखें नहीं होने से संयम की पालना कठिन हो जाती है। दुरूह हो जाती है। इसलिए संयम की रक्षा के लिए, आँखों की रक्षा जरूरी हो जाती है। वे भगवान से प्रतिज्ञा लेते हैं और संयम में स्थिर हो जाते हैं। जातिस्मरण ज्ञान से ज्ञात हो जाता है कि मैं कहाँ से आया। इससे पहले मेरा

जीवन कहाँ था। सुदर्शन श्रावक ने जैसे ही पूर्वोक्त बात जानी, उन्होंने मन में संकल्प कर लिया। वे माता-पिता से अनुज्ञा प्राप्त करके साधु बन गए। उनका विषय थोड़ा अलग है, किंतु कहने का तात्पर्य है कि कभी-कभी जातिस्मरण आदि ज्ञानों से व्यक्ति जान लेता है। उसे बोध हो जाता है अन्यथा बहुधा व्यक्ति नहीं जान पाते कि वह कहाँ से आया है। नरक से आया है पशु से आया है या मनुष्य से या देव गति से आया है। यदि देव गति से आया तो कौन-से देवलोक से आया। पशु गति में कितने समय तक था यह पता नहीं होता, पर उसको जब बोध होता है कि मैं जीव हूँ, मैं आत्मा हूँ तब अहसास होता है कि मैं अनादिकाल से इन्हीं रूपों में भटकता रहा हूँ। क्या यही मेरा असली रूप है? क्या दु:ख से संतप्त होते रहना ही रूप है मेरा? या कुछ भिन्न रूप है? इसका ज्ञान तीन प्रकार से होता है।

पहला तीर्थंकरों के वचन सुनने से होता है। दूसरा होता है अन्य महापुरुषों के व्याख्यान आदि सुनने से और तीसरा अपने ज्ञान के जागरण से। इन तीन प्रकार से बोध जाग्रत होता है।

नमिराज जग गए। उनको तीव्र वेदना हो रही थी। उसी वेदना में एक सूत्र मिल गया कि जहाँ बहुतों का संयोग होता है, वहाँ अनेक कठिनाइयाँ खड़ी होती हैं। एक आत्मा शाश्वत है जो ज्ञान और दर्शन से युक्त है। आत्मा का स्वरूप ज्ञाता और द्रष्टा है। वह जानता और देखता है। उसका मूल रूप है जानना और देखना। पुद्गल न जान पाता है और न देख पाता है। अन्य किसी में भी ज्ञाता और द्रष्टा भाव नहीं है। एकमात्र चैतन्य में ज्ञाता-द्रष्टा भाव रहा हुआ है। उसी से वह अपना उद्धार कर सकता है। वह अपना कल्याण कर सकता है।

नमिराज अनुप्रेक्षा में जा रहे हैं। वे अनुप्रेक्षा कर रहे हैं। इंद्रिय विषयों बारे में वे विचार करने लगे। चिंतन करने लगे। अपने जीवन की अनेक अवस्थाओं का चित्रण उनके सामने होने लगा। वे सोचने लगे कि जीव चतुर्गति संसार में भ्रमण करता रहा है। वह कभी नरक में गया, कभी तिर्यंच में गया तो कभी मनुष्य गति में व कभी देव गति में गया। इन चार गतियों में वह बार-बार भटकता रहा है। वह संसार में जन्म लेता है और पुन: मरता है। पुन: जन्म लेता है और पुन: मरता है। बार-बार इस संसार में घूमता रहा है। यह चक्र अनवरत

चलता रहा है, चल रहा है व चलता रहेगा। वह इस संसार में नई सृष्टि, नई रचना, नये रिश्ते-नाते जोड़ लेता है। हमने भी ये सारी अवस्थाएं प्राप्त की हैं।

नमिराज विचार कर रहे हैं कि वर्तमान में मेरा भी बहुत बड़ा परिवार है। बहुत परिजन हैं। रिश्तेदार हैं, किंतु क्या इन सबसे मेरी गरज सरेगी! क्या इन सबसे मेरा कार्य संपन्न हो जाएगा! इन सबसे मेरा मोह बढ़ेगा, मेरी ममता बढ़ेगी तो संसार में जन्म-मरण चलते रहेंगे। इनसे मेरा छुटकारा नहीं हो पाएगा।

जो मोह कर्म को तोड़ेगा, मोह के बंधन को काटेगा उसे एक क्षण में मुक्ति हो सकती है। इस तरह का चिंतन नमिराज का चलता रहा। उनका चिंतन गहरा होता चला गया। उन्होंने यह भी सोचा कि मोह बढ़ता कैसे है! उसके बढ़ने का कारण क्या है! मोह का फैलाव क्यों होता है?

उनको समाधान मिला कि पुद्गलों के प्रति आकर्षण, पाँच इंद्रियों के विषयों के प्रति आकर्षण होने से मोह बढ़ता है। यह सुंदर है, यह अच्छा है, आकर्षण का भाव उसके प्रति लगाव पैदा करता है। लगाव अचानक से पैदा नहीं होता। पहले थोड़ा आकर्षण पैदा होता है कि ये बहुत अच्छा लग रहा है। फिर थोड़ा गहराई में उतरने पर अनुराग पैदा होता है। उसके साथ आसक्ति पैदा होती है। आसक्ति की पहचान आसान है। जिस पदार्थ के मिलने पर सुख की अनुभूति हो और जिसके नहीं मिलने पर या दूर हो जाने पर मन में रिक्तता की अनुभूति हो उसे कहते हैं आसक्ति। आसक्ति जितनी गहरी होती जाती है, मोह उतना ही बढ़ता जाता है। ऐसा सोचते-सोचते उनके मन में एकत्व भाव आ गया। एकत्व भाव अर्थात् एक आत्मा ही शाश्वत है। उसी आत्मा पर अपने आपको अवलंबित होना चाहिए। आत्मा से भिन्न सारे संयोग हैं, वे सारे संयोग, वियोग में परिवर्तित होने वाले हैं।

उनका शरीर तप रहा था। उनके शरीर में भयंकर दाह हो रहा था, ज्वर हो रहा था। उनका मन उसी में अटका हुआ था इसलिए नींद नहीं आ रही थी। उन्होंने सोचा तो मन शांत हुआ और गहरी नींद आ गई। मन में एक ही बात बार-बार चलती रहती है, घुलती रहती है तो मन बोझिल हो जाता है। उससे नींद उड़ जाती है, किंतु जब मन शांत होता है, तो वह विश्राम में चला जाता है। उसको विश्राम मिल जाता है। उसको झपकी लग जाती है। नींद आ जाती है।

नमिराज को भी नींद आई। नींद में उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा।

उत्तम पुरुषों को स्वप्न भी विलक्षण आया करते हैं। ऐसा बताया गया है कि उत्तम पुरुषों को आने वाले स्वप्न विशिष्ट होते हैं। उनका कोई-न-कोई अर्थ होता है। वे पता करते हैं कि ऐसा स्वप्न मुझे क्यों आया। उसके पीछे क्या रीजन है, क्या प्रयोजन है। सामान्य लोगों को जो स्वप्न में भी नसीब नहीं होता, फिर हकीकत में क्या नसीब हो पाएगा।

नमिराज की नींद खुली और भावना रंग दिखाने लगी। वे विचार करने लगे कि मैंने जो स्वप्न देखा उसका तात्पर्य क्या हो सकता है। स्वप्न देखने के बाद वे विचाराधीन हो गये। वे विचारमग्न हो गये। उन्होंने स्वप्न में हाथी को देखा था। जागृत होने के बाद उनको ऐसा लगने लगा कि ऐसा हाथी मैंने पहले कभी देखा है। कहाँ देखा, किस जगह देखा?

ऐसा विचार करते हुए वे गहरे चिंतन में डूब गये। उसी में उनको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उत्तराध्ययन सूत्र के 9वें अध्ययन के शुरू में क्या बोला? शुरू में बताया कि उनको जातिस्मरण ज्ञान हो गया।

चइऊण देव-लोगाओ, उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि।
उवसंत-मोहणिज्जो, सरई पोराणियं जाइं।।

मोह कर्म के उपशांत होने से जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई। यहाँ एक चर्चा और कर लेना चाहता हूँ। जातिस्मरण ज्ञान मोह कर्म के उपशम से होता है या ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से।

उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है कि मोह कर्म का उपशम होने से जातिस्मरण ज्ञान हुआ। जातिस्मरण ज्ञान दो प्रकार का होता है। यह ज्ञान अज्ञानी को भी होता है और ज्ञानी को भी होता है। मिथ्यात्वी को भी हो जाता है और सम्यक्त्वी को भी हो सकता है। ज्ञान के प्रकटीकरण में ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम जरूरी होता है। यहाँ जो मोह कर्म का उपशांत होना दर्शाया गया है, उससे स्पष्ट होता है कि वह ज्ञान सम्यक्त्व युक्त था। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम सामान्य है। वह मति-अज्ञान आदि रूप भी हो सकता है, किंतु जिस ज्ञान में मोह कर्म का भी तदनुरूप उपशम-क्षयोपशम होता है, वह ज्ञान रूप ही होगा, ऐसा समझना चाहिए।

भावों का प्रभाव बड़ा अनूठा होता है। भाव जितने गहरे होंगे उसका प्रभाव उतना ही अनूठा होगा। उसके बहुत सारे उदाहरण हैं। उन उदाहरणों में

नमिराज और अनाथी मुनि तो हैं ही। संत प्रशम मुनि जी भी एक उदाहरण हैं। वे दीक्षा के पहले गठिया-वात से पीड़ित थे। उनकी उम्र कम थी। 20 वर्ष से भी कम। उनकी माताजी ने शासन प्रभावक श्री धर्मेश मुनि जी म.सा. से निवेदन किया तो वे उनको दर्शन देने उनके घर पधारे। श्री धर्मेश मुनि जी म.सा. ने उनको दर्शन दिया, मांगलिक सुनाई और उनसे कहा कि तुम संकल्प करो कि यदि बीमारी से ठीक हो जाऊँगा तो साधु बन जाऊँगा। साधु जीवन स्वीकार कर लूंगा। उन्होंने कहा कि मैं तो पड़ा हूँ क्या दीक्षा लूंगा तो श्री धर्मेश मुनि जी म.सा. ने उनसे कहा कि जब तुम ठीक हो जाओ तब दीक्षा की बात कर रहा हूँ। उन्होंने कहा कि मैं इस बीमारी से ठीक हो जाऊँगा तो साधु बन जाऊँगा। उनकी माता जी से कहा कि इसकी दीक्षा में कोई अंतराय नहीं बने तो माता ने कहा कि भगवन् यदि ये ठीक हो जाता है तो हम उसकी दीक्षा में अंतराय क्यों बनेंगे! वे लगभग 6 महीने में ठीक हो गये तो भावना और संकल्प के अनुसार साधु जीवन प्राप्त करने का प्रयत्न चालू कर दिया। उन्होंने ज्ञान-ध्यान सीखना चालू कर दिया और आचार्य पूज्य गुरुदेव के चरणों में साधु जीवन स्वीकार किया।

भावना प्रबल होनी चाहिए। भावना में इतना वेग होना चाहिए कि एक बार जो मन में जागृत हो जाए उसको टालें नहीं। कोई कहता है कि म.सा. एक्सीडेंट हो गया। ऐसा एक्सीडेंट हुआ कि गाड़ी को देखकर कहा नहीं जा सकता कि कोई बचा होगा। सब आप की कृपा से, धर्म की कृपा से बाल-बाल बच गये।

यदि बच गये तो अब क्या करना चाहिए? वापस संसार के मैदान में ही दौड़ना या कुछ और करना? वही घोड़े वही मैदान या कुछ नया करना?

(श्रोता- कुछ नया करना)

यदि नई जिंदगी मिल गई तो पुरानी जिंदगी में क्यों रहना! नई जिंदगी चालू क्यों नहीं करना! एक्सीडेंट से बच गये तो अब क्या कर लेंगे। कुछ नया करने के लिए बचे या पुरानी जिंदगी जीने के लिए बचे? यदि मौत के मुँह से बच गये तो संसार को बढ़ाने के लिए बचे या संसार को घटाने के लिए?

(श्रोता- संसार को घटाने के लिए बचे)

जंबूकुमार की सोच को देखें। जब वे सुधर्मा स्वामी को वंदन-नमस्कार

करके घर की तरफ लौट रहे थे तो बीच में शस्त्र अभ्यास हो रहा था। अचानक एक गोला उनके आगे गिरा। उनका रथ एक कदम और आगे बढ़ा होता तो गोला उनके रथ पर गिर जाता। जंबूकुमार ने जैसे ही यह दृश्य देखा, वैसे ही पलटकर सुधर्मा स्वामी के पास गए। एक कहानी में बताया गया है कि वे 12 व्रत स्वीकार करते हैं जबकि दूसरी कहानी में बताया गया है कि वे शील व्रत को स्वीकार करते हैं। जो भी उन्होंने स्वीकार किया हो। उन्होंने कहा कि मैं खाली हाथ कैसे जाऊँ! अभी मैं चला जाता तो खाली हाथ जाता। उन्होंने निर्णय किया कि कम-से-कम व्रत और नियम तो मैं जिंदगी में स्वीकार कर ही लूं। उन्होंने जो भी नियम लिये हों, नियम ग्रहण किये। नियमों से अपने आपको भावित किया, उसके बाद घर गये।

यह बहुत बड़ी बात है। बहुत महत्त्व की बात है। हम छोटे-मोटे नियम से घबराते हैं। कतराते हैं कि सौगंध ले लूं और नियम का पालन नहीं हुआ तो क्या होगा? ऐसा सोचने वाले शादी तो नहीं करते? शादी कर ली और उसको नहीं निभा पाये तो क्या होगा? तलाक दे दोगे क्या? आजकल तलाक को बहुत आसान समझ लिया गया है, किंतु तलाक इतना आसान नहीं होता है। समस्या खड़ी होती है। अत: नियम-प्रत्याख्यान से अपनी आत्मा को भावित करने का शनै: शनै: अभ्यास करना चाहिए। मनुष्य जन्म में नियम नहीं पालेंगे, अपने आपको को मर्यादित नहीं करेंगे, संयमित नहीं करेंगे तो फिर कौन-से जन्म में स्वयं को संयमित करेंगे। पशु जन्म में तो गले में रस्सी पड़ जायेगी। कोई दूसरा व्यक्ति रस्सी बाँधकर नियंत्रित करेगा। इससे अच्छा है कि स्वयं अपने आप पर नियंत्रण कर लें। भगवान ने कहा है-

'अप्पा चेव दमेयव्वो'

अर्थात् आत्मा का दमन करना चाहिए। संयम और तप से अपने आपको संयमित कर लिया तो फिर दूसरों द्वारा रस्सी से बाँधे जाने की नौबत नहीं आएगी। नमिराज के भाव भी सुदृढ़ बन जाते हैं। वे संकल्पित हो जाते हैं। उनकी भावना दृढ़ हो जाती है कि मुझे साधु जीवन ही स्वीकार करना है।

आगे वे किस प्रकार से संयमी जीवन पर आरूढ़ होते हैं, कैसे चारित्र धर्म को स्वीकार करते हैं और कैसे इंद्र की उपस्थिति होती है, ये सब समय के साथ जानेंगे। जिसके मन में कुछ करने की ललक होती है, वह कभी पीछे

मुड़कर नहीं देखता है। जिसका मन दृढ़ हो जाता है, वह मन में जो धार लेता है उसको अवश्य पूरा करता है। मन को सुदृढ़ बनाएं व अपनी मंजिल को प्राप्त करें। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर विराम।

04 अक्टूबर, 2021

6

निर्णायक क्षण

हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊं अणगार...

साधु जीवन उत्तम है पर उसको स्वीकार करने की भावना मन में उत्पन्न होना कठिन है, दुरूह है। संसार के अलीते-पलीते को बढ़ाने की भावना मन में चलती रहती है। व्यक्ति विचार करता रहता है कि मेरे पास इतनी संपत्ति है, अगले वर्ष इसमें इतने प्रतिशत इजाफा और होना चाहिए। इतनी संपत्ति बढ़नी चाहिए। अगले वर्ष और संपत्ति बढ़ानी चाहिए। आर्थिक दृष्टि से ऐसी बहुत सारी कल्पनाएँ करता रहता है। धर्म कितना बढ़े, इस तरफ बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है।

कृष्णा बाई मीठालाल ठाकुरगोता वर्षों से स्वाध्याय सेवा देने के लिए तत्पर रही हैं। वृद्धावस्था के बावजूद उन्होंने अपनी स्वाध्याय सेवा चालू रखी। 30 तारीख तक उनके मन में दीक्षा का कोई विचार नहीं था। 01 तारीख को थोड़ा-थोड़ा भाव बना और 03 तारीख को फाइनल हो गया। कृष्णा बाई ने 04 तारीख को दीक्षा ले ली और 05 तारीख को संलेखना ग्रहण कर लिया। 06 तारीख को संथारा सीझ गया। संलेखना पूर्ण हुई।

हमको देखने में लग रहा है कि यह कार्य छह-सात दिनों में पूरा हो गया, किंतु कुछ घड़ियाँ होती हैं, जो निर्णायक होती हैं। कई बार हम ऐसे मोड़ पर खड़े होते हैं जब निर्णय करना होता है। उस समय यदि सही निर्णय हो जाता है तो सही दिशा में गति हो जाती है। उससे मंजिल प्राप्त हो सकती है। व्यक्ति सही समय, सही क्षण पर चूके नहीं। चूक गया तो फिर हाथ में कुछ आने वाला नहीं होता। क्षण बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। अवसर या समय खड़ा नहीं रहता। उसको साध लेने वाला अपने आपको धन्य बना लेता है।

हमारी जिंदगी में भी ऐसे बहुत सारे प्रसंग आते हैं, जब हमें कुछ निर्णय करने होते हैं। अनेक व्यक्ति मन में घुलते रहते हैं, मन में विचारते रहते हैं कि ऐसा करूँ या वैसा करूँ! करूँ या नहीं करूँ! उसमें वह इतना टाइम निकाल देते हैं कि हाथ में आया मौका निकल जाता है। निर्णय करने से पहले सघन विचार होना चाहिए, किंतु उसमें घुलना नहीं चाहिए। बात बार-बार रिपीट नहीं होनी चाहिए। जहाँ बात रिपीट होती रहती है, वहाँ उलझन खड़ी होती है। वहाँ समाधान नहीं होता, बल्कि समाधान और दुरूह हो जाता है।

अभी कहा गया कि निर्णय से पहले सघन विचार होना चाहिए। सघन विचार का तात्पर्य है, कार्य में आने वाली बाधाओं को पहचानना। कार्य करने के लिए आवश्यक साधनों की उपलब्धता को जानना। कार्य का तरीका निश्चित करना। कार्य करने से पूर्व इन सारी बातों पर विचार होना चाहिए। विचार के बाद एकदम से छलाँग लगा देना चाहिए।

जिंदगी ढलती जा रही है, पर लोग यह कहते हैं कि उम्र बढ रही है। हकीकत में उम्र बढ़ नहीं रही है, अपितु घट रही है। सुबह के समय सूर्य की तरफ पीठ होने पर उसकी छाया सामने दिखती है, बहुत लंबी छाया दिखती है, पर दोपहर के समय वह घट जाती है। वैसे ही-

घटते-घटते घट जाएगी तेरी रे उमरिया...

उम्र तो घटती है पर तृष्णा नहीं घटती। वह बुढ़ापे में भी बढ़ती जाती है कि थोड़ा और जी लूँ। धन थोड़ा और कमा लूँ। वाकई में जीवन बहुत छोटा है, किंतु तृष्णा इतनी बड़ी है कि इस जीवन में पूरी नहीं हो पाती। अतृप्त अवस्था में यहाँ से रवाना हो जाते हैं। जब तक अतृप्त अवस्था रहेगी, तब तक जन्म-मरण के चक्कर से निकल पाना मुश्किल है। अतृप्ति पुनः जन्म दिलाएगी और मृत्यु से गुजरना होगा।

पुनरपि जननं, पुनरपि मरणम्...

पुनः जन्म, पुनः मरण होता रहेगा। चूँकि हम तृप्त नहीं हुए इसलिए जीवन ऐसा जी लें कि इस जीवन में तृप्ति आ जाए। आप साधु बनें या नहीं बनें, मैं आपसे कोई आग्रह नहीं करता, किंतु तृप्त हो जाएं, भूखे मत सोएं। भूखे रहकर नरक में चले गए तो वहाँ कौन खाना देगा? पशु योनि में चले गए तो किसी के द्वार पर खड़े रहेंगे कि कोई रोटी खिला दे। कोई पानी पिला दे।

इसलिए मेरा यह कहना है कि यहाँ से भूखे मत जाना, अतृप्त मत जाना। यहाँ से तृप्त होकर जाना। एक महत्त्वपूर्ण बात का ध्यान रखना कि धन कभी भी तृप्ति नहीं देगा। तृप्ति अपने भीतर है। कई बार मेरे मन में चिंतन बनता है कि शालिभद्र कौन-सी मिट्टी का बना हुआ था कि उसके मन में भूख थी ही नहीं। उसे क्षुधा थी ही नहीं। शालिभद्र को जितना मिला उतने मे संतोष था। उससे अधिक की उसको आकांक्षा ही नहीं थी कि और मिल जाए। कोई कुछ ले भी गया तो चिंता नहीं। ले गया तो ले गया। कोई चिंता नहीं।

दो-तीन दिन पहले सुमित मुनि जी ने बोला था कि आपका 50 का नोट गिर जाए तो आप उसको टटोलने लग जाएंगे। घंटा, दो घंटा कितना ही समय खर्च हो जाए उसे टटोलेंगे। साथ ही उन्होंने कहा था कि हमारी 50 वर्ष की उम्र कहाँ गई उसकी कोई खोज ही नहीं है। हकीकत यही है कि हम बाह्य पदार्थों में इतने मशगूल हैं कि भीतर की शहनाई को सुन ही नहीं पाते। अपने भीतर के नाद को सुन नहीं पाते।

शालिभद्र को संपत्ति छोड़ने में भी कोई ज्यादा समय नहीं लगा। धन्ना जी को धन और परिवार छोड़ने में कोई समय नहीं लगा। यह उनका जागरण था। यह जागरण बड़ा महत्त्वपूर्ण था। जागरण का कोई समय नहीं होता। वह किसी समय भी हो सकता है। हमारे उठने का समय होगा, सोने का समय होगा, किंतु आध्यात्मिक जागरण का कोई समय नहीं होता।

आध्यात्मिक जागरण के लिए उम्र का तकाजा नहीं है। वह 9 वर्ष की उम्र में भी जग जाता है नहीं तो 90 साल भी निकल जाते हैं।

इसकी कोई गिनती नहीं है कि कितने लोग सोए-सोए जा रहे हैं और कितने लोग भूख से संतप्त होते हुए जा रहे हैं। तृप्त होकर जाने वालों की गिनती करें तो उनकी भी कोई गिनती नहीं है, किंतु अतृप्ति में जाने वाले ज्यादा हैं। तृप्त होने वाले कम है, पर जो तृप्त होकर गए उन्होंने स्वयं को जीत लिया। इसलिए तृप्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कृष्णा बाई की विचारणा बनी। उस संबंध में समाचार मिले और उनको दीक्षा की अनुमति दी गई। श्री गौरव मुनि महाराज के द्वारा उन्हें सामायिक चारित्र दिया गया और उन्होंने संलेखना स्वीकार की। हमारी सोच में कभी-कभी आ जाता है कि इतनी उम्र में क्या दीक्षा लेना, क्या होना, क्या करना। उम्र

की बात नहीं है। सोचो कि हमारे भीतर भावना बन रही है या नहीं।

भगवान कहते हैं 'पच्छा वि त्ते पयाया खिप्पं गच्छंति अमर भवणाइं।'

भले ही यह गाथा पुरानी प्रतों में नहीं रही हो, किंतु प्रेरणास्पद है। हकीकत यह है कि छोटी उम्र में यदि भावना जग जाए, जागरण हो जाए तो व्यक्ति निहाल हो ही जाता है। वह तर जाता है। यदि किसी का लघु वय में जागरण न हो पाए, अधिक उम्र में भी भावना जग जाए, तप-संयम से प्रीत लग जाए तो वह भी कल्याण पथ का राही बन जाता है। आनंद श्रावक की अपनी स्थिति रही होगी कि वह साधु नहीं बन सका, फिर भी उसके भीतर संकल्प जगा कि मुझे संसार के भार को ढोते-ढोते नहीं मरना है। मुझे अपने लिए भी कुछ करना है, ताकि मैं तृप्त हो जाऊँ। उन्होंने घर-परिवार का त्याग किया और ज्ञात कुल की पौषधशाला में स्वयं को अवस्थित कर वहीं पर अपनी साधना चालू कर दी। उनको उनकी साधना के बल पर अवधिज्ञान हुआ। कौतूहली व्यक्ति को अवधिज्ञान होना कठिन है। कौतूहली व्यक्ति को यदि कभी अवधिज्ञान भी हो गया तो भी वह उस ज्ञान को टिकाये नहीं रख पाएगा। वह वापस चला जाएगा। अवधिज्ञान के लिए गंभीर वृत्ति आवश्यक है। जो अपने जीवन के लिए गंभीर होता है, उसे अवधिज्ञान प्राप्त हो पाता है। आनंद श्रावक साधु नहीं बन सके, पर साधना में इतना निखर गए कि देवगति में उत्पन्न हुए। वहाँ उनको चार पल्योपम की स्थिति प्राप्त हुई। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे, साधु बनेंगे। क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो, वीतराग बनेंगे, सर्वज्ञ बनेंगे, अयोगी और संपूर्ण कर्मों का क्षय करके मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार श्रावक अवस्था में रहते हुए भी उन्होंने अपने आपको साधा। स्वयं को तृप्त किया।

हमारी साधना, हमारी आराधना हमें किस दिशा में ले जा रही है? हमारा मोह, ममत्व घट रहा है या बढ़ रहा है या ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ है? भरा हुआ बरतन खाली हो रहा है या उसमें और भरा जा रहा है। अपने ममत्व को बढ़ा भी सकते हैं और उसको घटा भी सकते हैं। आपके अपने वश की बात है। यदि जागरण है, जागृति है तो ममत्व को घटा सकते हैं।

'इदं न मम' का एक छोटा-सा सूत्र ममत्व को बढ़ने नहीं देगा। यह सूत्र ममत्व को घटाएगा। 'इदं न मम' यानी ये मेरा नहीं है। अंतर्भाव से केवल

एक विचार बने कि ये मेरा नहीं है। जो भी दृश्य है, जो भी आँखों से दिख रहा है, वह अपना नहीं है।

क्या-क्या दिख रहा है आँखों से? क्या-क्या दिख रहा है? देखो आपकी आँखों से क्या दिख रहा है?

अपना बंगला दिख रहा है। अपनी धन-संपत्ति दिख रही है। अपना मोबाइल दिख रहा है। अपनी स्कूटी दिख रही है। किंतु जो भी दिखने वाली चीजें हैं उनके प्रति 'इदं न मम' का भाव रहना चाहिए अर्थात् ये मेरा नहीं है और मैं भी उनका नहीं हूँ। उनसे केवल संबंध जुड़ा है। क्योंकि शरीर भी दिख रहा है देखो! दिख रहा है न, अपनी आँखें हमको नहीं दिख रही हैं।

आँखें दिखती हैं क्या?

महासती श्री सुयशा जी ने कहा कि दर्पण में आँखें दिख जाएंगी। इन्होंने आँख देखने का तरीका बता दिया। वैसे ही ज्ञानरूपी दर्पण में देखेंगे तो आत्मा दिखेगी, किंतु वह दर्पण मिले तब न। वह ऐसा दर्पण है जिसमें न केवल अपनी आँखों को देख सकते हैं, बल्कि अपने चैतन्य देव के भी दर्शन कर सकते हैं। अपनी आत्मा के दर्शन कर सकते हैं। अपने एक-एक आत्मप्रदेश का दर्शन कर सकते हैं। आत्मा के एक-एक प्रदेश का फैलाव हो तो ये नानेश रत्नम् भर जाएगा या नहीं, बताओ!

(श्रेणिक जी कहते हैं- हाँ भर जाएगा)

सही-सही बताओ।

वे कहते हैं ये तो कुछ भी नहीं है, अनंत प्रदेश भर जाएंगे।

सही नहीं है। यदि सही नहीं बताया तो आज भोजन नहीं करना है। उपवास हो जाए तो कोई बात नहीं है। यदि आपने सिद्धांत बत्तीसी का अध्ययन किया होता तो आज यह नौबत नहीं आती। कम-से-कम कुछ बोल सकते थे। गौतम जी! बोलो, भवन भर जाएगा या कुछ प्रदेश बाकी रहेंगे? या यहाँ से जवाहर भवन भी भर जाएगा? या कुछ जगह खाली रहेगी?

(श्रोता- जगह खाली नहीं रहेगी भगवन्, पूरी जगह भर जाएगी)

आपको मैं ही बता दूं अन्यथा ये सारे खेल-तमाशे चलते रहेंगे। हम सुनते बहुत हैं। हमने बहुत बार सुना होगा। यह पहले सुनी हुई बात है। आपने कई बार यह बात सुनी होगी, किंतु उससे अपने को क्या लेना-देना? इससे

होने वाला क्या है? इससे कौन-सा कल्याण हो जाएगा? ऐसी उपेक्षा वृत्ति रहेगी तो हम ज्ञान के अधिकारी नहीं बन पाएंगे।

14 रज्जू प्रमाण लोक नक्शा देखा कभी? कमर पर हाथ रखकर 16 कली का घाघरा पहनकर नाचते हुए भोपे का जैसा आकार होता है, वैसा ही लोक का आकार बनता है। ऐसा 14 रज्जू प्रमाण लोक असंख्यात आकाश प्रदेशों से भरा हुआ है।

हमारी आत्मा के एक-एक प्रदेश को एक-एक आकाश प्रदेश पर रखा जाये तो लोक का एक भी प्रदेश खाली नहीं रहेगा। वे असंख्यात हैं, अनंत नहीं हैं। कितने लोगों ने इसका सही जवाब दिया?

जितने आत्मप्रदेश हैं उन सभी को हम साक्षात् देख सकते हैं। उनका साक्षात् केवलज्ञान से हो सकता है। अन्य किसी ज्ञान-दर्पण से नहीं हो सकता। न अवधिज्ञान से जाना जा सकता है, न मन:पर्यय ज्ञान से। वह देखा जाएगा तो एकमात्र केवलज्ञान से। केवलज्ञान ऐसा दर्पण है जो अपनी आत्मा का दर्शन करा सकता है। दुनिया के बाकी दर्पण शरीर को दिखा सकते हैं, आँखों को दिखा सकते हैं। आँखों का आकार दिखा सकते हैं, रंग आदि बता सकते हैं।

कबीरदास जी कहते हैं-

'मुखड़ा क्या देखे दर्पण में, तेरे दया धरम नहीं मन में...'

भाई तू मुखड़ा क्या देख रहा है दर्पण में, जब दया धरम नहीं है तेरे मन में। यदि घट में राम नाम नहीं है तो ये काया बेकार है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुछ ही लोगों को जो सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, वे सुविधाएँ आपको प्राप्त हुई हैं। दुनिया में जितने जीव हैं उनमें से बहुत कम लोगों को ये सुविधाएँ नसीब हैं जो आपको नसीब हुई हैं। आपको पहले पाँच इंद्रियाँ प्राप्त हुई हैं। अनतांनत जीव में से असंख्यात जीव ही ऐसे हैं, जिनको पाँच इंद्रियाँ प्राप्त होती हैं, मन प्राप्त होता है। हम उससे भी बढ़कर हैं कि हमें मनुष्य जीवन मिला। रोटी बनाने के लिए आटा गूँधते समय जितना नमक डालते हैं, उतने भी जीव नहीं हैं जिन्हें ऐसा मौका मिला है। सोच लीजिए कि हम कितने वी.आई.पी. हैं। हमने कितने महत्त्वपूर्ण स्थान को प्राप्त किया है, किंतु महत्त्वपूर्ण स्थान को प्राप्त करके भी केवल पॉकेट भरने का ही काम कर रहे हैं।

एक किसान जौहरी की दुकान पर गया था। जौहरी ने किसान को

नाश्ते-पानी के लिए निवेदन किया। किसान ने कहा कि रहने दो तो जौहरी ने कहा कि ऐसे कैसे जा सकते हो। किसान ने कहा कि ठीक है तो करा दो। नाश्ते के लिए लड्डू, जलेबी, काजू-कतली आदि बहुत सारी चीजें मँगाई गईं। उसको कौन खिला रहा है बताओ?

(श्रोता- जौहरी जी)

नहीं। उसके पैसे खिला रहे हैं। जौहरी बहुत उम्मीदों से उसको खिला रहा है। उसकी मेहमाननवाजी कर रहा है। जौहरी किसान के तलवे पोंछ रहा है। किसान के सामने व्यंजन रखे गये तो उसने पहले लड्डू उठाकर पॉकेट में डाला। फिर जलेबी उठाकर दूसरी जेब में डाली। उसने काजू कतली उठाई और ऊपर की पॉकेट में डाली। जौहरी सोचने लगा कि गाँव का आदमी है, इसने कभी ऐसी मिठाइयाँ देखी नहीं होंगी, इसलिए उसका माथा थोड़ा डिप्रेशन में चला गया दिखता है, किंतु हकीकत कुछ अलग थी।

हकीकत यह थी कि जब पहले वह किसान पेढ़ी पर आया था तो जौहरी का ध्यान उस पर नहीं गया। जौहरी की नजर उठी, उसे देखा और अनदेखा करके अपने काम में लग गया। वही किसान थोड़ी देर बाद दूसरा पोशाक पहनकर, वी.आई.पी. बनकर गया। उसने माथे पर टोप लगाया और चार घोड़ों की बग्घी किराये पर ली। एक-दो बॉडीगॉर्ड उसके साथ थे। इस प्रकार से किसान ठसक से जौहरी की दुकान के सामने पहुँचा तो जौहरी ने उसको मान-सम्मान दिया। पेढ़ी से उतरकर सामने गया। कहा, पधारो सा, पधारो सा।

माया से माया मिले कर-कर लम्बे हाथ।
तुलसी हाय गरीब की कोई न पूछे बात।।

किसान को जेब में मिठाई रखता हुआ देखकर जौहरी ने उससे कहा कि ये आपके लिए ही है। आप खाइए। मैं आपके साथ टिफिन की व्यवस्था कर दूंगा तो किसान ने कहा, सेठ साहब! जिसकी बदौलत मेरे को खाना मिला है पहले मैं उनको खिला रहा हूँ।

किसकी बदौलत उसको खाना मिला? वह तो पहले भी आया था। उस समय उसके सामने भी नहीं देखा गया। अब जो मिला वह पहले मिला क्या? उसको जो भी मिला वस्त्रों की बदौलत मिला। उसने अपनी कहानी

जौहरी को बता दी।

आपकी नजर वस्त्रों पर रहती है या इनसान पर? वस्त्रों पर निगाह रहेगी तो संसार दिखेगा। इनसान पर दृष्टि रहेगी तो भगवान दिखेंगे। एक गीत की पंक्ति है–

चेतन चेतो रे दस बोल जगत में मुश्किल मिल्या रे चेतन चेतो रे...

हमको मनुष्य जन्म मिला है। हम जिनकी स्मृति सभा में हैं, उन कीर्तनयशा श्री जी म.सा. ने दूसरा मनोरथ पूरा किया। तीसरा मनोरथ भी उन्होंने पूरा कर लिया। हम भी भावना भावें। अपने मन में ऐसी भावनाओं को सँजोएं कि हमारे जीवन में भी वह क्षण आए। वह दुर्लभ क्षण आए, जिस समय मैं अपने आपको साधु जीवन की पोशाक में दिखूं। तभी जीवन सफल होगा।

जलगाँव के नैनसुख जी लुंकड़ ने अपने लिए साधु की एक पोशाक रख रखी थी कि मरने से पहले एक बार उस पोशाक को पहनूँगा। जैसी मुझे सूचना और जानकारी मिली, उसके आधार पर कह रहा हूँ। वहाँ कोई साधु-संत नहीं होने से वह साधु नहीं हो सके, किंतु ऐसी सूचना मिली कि साधु के पोशाक में उन्होंने मृत्यु को वरा। कई लोग ऐसी सोच भी रखते हैं कि घर में साधु जीवन की एक पोशाक ऐसे स्थान पर रखी रहे जहाँ हर समय दृष्टि पड़ती रहे। वह सोचते हैं कि मेरे घर में ओगा, पातरा, चोलपट्टा, पूंजनी, चादर रखूँ। हर श्रावक की ऐसी भावना होनी चाहिए।

आर्द्रकुमार को मुनि के वस्त्र देखकर वैराग्य जग गया। वह उत्कृष्ट भावों से साधु बना। पता नहीं हम कितने कठोरकर्मी हैं, हमारे कर्म कितने संगीन बने हुए हैं कि हमारे भीतर वैराग्य जग नहीं रहा है। प्रयत्नशील बनें। पुरुषार्थ करेंगे, प्रयत्न करेंगे तो जैसे धन कमा लेते हैं, पुण्य कमा लेते हैं, वैसे ही आत्मभाव में रमण करने में समर्थ हो सकते हैं। पुरुषार्थ की भावना जागे। निमित्त कोई भी बन सकता है। मनुष्य जन्म मिला है। उसको निर्णायक बना लें। यदि ऐसे बन पाएंगे तो धन्य हो जाएंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

07 अक्टूबर, 21

7

रहे सदा सुख छाँह

संघ सदा जयकार अलौकिक, संघ सदा जयकार
संघ की महिमा गणधर गाये, संघ की धूली शीष चढ़ाये
गायें हम सब गीत अलौकिक, संघ सदा जयकार
संघ के सम्मुख शीष झुकाये, संघ शिखर पर ध्वजा चढ़ाये
फहरे दशों दिश मांय अलौकिक, संघ सदा जयकार...
समता का शंखनाद गुंजाये, तूर्य मजीरा तान सुनाये
रहे सदा सुख छाँह अलौकिक, संघ सदा जयकार...
बोलो हम सब हुए केशरिया, संघ रहेगा सदा केशरिया
केशरिया संघ ताज अलौकिक, संघ सदा जयकार...

इस गीत में एक छोटी-सी पंक्ति है- रहे सदा सुख छाँह। इस छोटी-सी पंक्ति का जीवन में वास हो जाए तो धन्य-धन्य हो जाएंगे। रहे सदा सुख छाँह का अर्थ है- सुख की छाँह हमेशा बनी रहे। यह किसी एक व्यक्ति की चाह नहीं है। किसी एक समुदाय की चाह नहीं है। मानव मात्र ही नहीं संसार का प्रत्येक प्राणी सुख की छाया चाहता है। सबकी भावनाओं के मद्देनजर या जो भगवान महावीर ने अनुभव किया, उसे उन्होंने कहा कि सभी जीव सुख की एषणा करने वाले हैं। सभी प्राणी सुख की खोज करने वाले हैं। यह कोई आज की बात नहीं है। बहुत समय से, अनादिकाल से प्राणी सुख-छाँह की खोज में लगा हुआ है।

जब सभी प्राणी सुख की खोज करने वाले हैं तो एक सहज प्रश्न उठता है कि सुख कहाँ है और वह कैसे मिलेगा?

बच्चा रोता है तो उसके माता-पिता उसको एक टॉफी पकड़ा देते हैं तो वह शांत हो जाता है। एक खिलौना पकड़ा देने पर वह शांत हो जाता है।

ऐसा ही हमारे साथ हो रहा है। हम सुख की टोह में रहते हैं और हमें एक खिलौना पकड़ा दिया जाता है, एक टॉफी पकड़ा दी जाती है। हम उससे खेलने लग जाते हैं, खुश हो जाते हैं। भौतिक संसाधन हमारे सामने आ जाते हैं तो हम सोच लेते हैं कि यही सुख है, किंतु थोड़ी देर में जब वह साधन हमसे दूर हो जाते हैं तो हम वापस पुराने स्थान पर आ जाते हैं। हमारा सुख गायब हो जाता है। इसी ऊहापोह में अनादिकाल से हम चलते रहे हैं।

अभी एक प्रश्न उठा था कि सुख कहाँ मिलेगा। सुख-छाँह हमें संघ के अंतर्गत मिलेगी। ऐसा कहने से आप यह मत समझना की म.सा. संघ का महिमामंडन कर रहे हैं। यह महिमामंडन करने की बात नहीं है। संसार में झुलसते हुए प्राणियों के लिए प्रभु महावीर ने चार तीर्थों की स्थापना की। चार तीर्थ हैं; साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। साधु-साध्वी की चर्या एक ही होती है और श्रावक-श्राविका की चर्या भिन्न-भिन्न होती है। साधु या साध्वी पाँच महाव्रत धारण करने वाले होंगे। उनके लिए कोई छूट नहीं है। उनको पाँचों महाव्रत को स्वीकार करना होगा। वे सोचें कि एक, दो या तीन महाव्रत ले लूं तो नहीं चलेगा। पाँचों महाव्रत ही स्वीकार करना होगा। उसकी पालना करनी होगी। श्रावक और श्राविका की चर्या भिन्न होती है।

यहाँ आप देख लो कि कोई सामायिक में बैठा है तो कोई दरी पर। कोई चोलपट्टा व श्वेत चादर पहनकर सामायिक में है तो कई लोग भिन्न-भिन्न वेशभूषा में बैठे हैं। ये चर्या बता रही है कि श्रावक के लिए बारह व्रतों को स्वीकार करना अनिवार्य नहीं है। उसका जैसा सामर्थ्य हो, जैसी उसकी शक्ति हो, वैसा वह करे। श्रावक एक व्रत को भी स्वीकार कर सकता है और चार, पाँच, सात, दस, बारह व्रत को भी स्वीकार कर सकता है। इसलिए उसकी चर्या साधुओं से भिन्न है। उसकी चर्या भिन्न-भिन्न बताई गई है। कुछ व्रत एक करण, एक योग से तो कुछ दो करण तीन योग से भी हो सकते हैं। उनके लिए 49 भांगे बताए गए। भंग यानी विकल्प। उन विकल्पों के आधार पर वह प्रत्याख्यान स्वीकार कर सकते हैं, किंतु साधु के लिए पाँचों महाव्रत तीन करण, तीन योग से ही स्वीकार्य होंगे। करण का अर्थ है- करूँ नहीं, करवाऊं नहीं और अनुमोदन नहीं करूँ। योग यानी मन से, वचन से, काया से।

भगवान महावीर ने केवलज्ञान, केवलदर्शन होने के बाद अर्थात्

सर्वज्ञ होने पर दिव्य देशना दी। उनकी दूसरी देशना में चतुर्विध संघ खड़ा हो गया। साधु बन गए, साध्वी भी बन गई, श्रावक भी बने और श्राविकाएँ भी बन गईं। तब से ये संघ गतिशील है।

भगवान से पूछा गया कि भगवान आपका यह तीर्थ, यह संघ-शासन कितने वर्षों तक चलेगा तो भगवान ने उत्तर दिया कि 21 हजार वर्षों तक यह शासन गतिमान रहेगा। यह भगवान महावीर की वाणी है जो कभी अन्यथा नहीं हो सकती। कितने ही तूफान आ सकते हैं, कितनी भी कठिनाइयाँ आ सकती हैं, किंतु संघ का कभी विच्छेद नहीं होगा। यह गतिशील था, गतिशील है और सदा गतिशील रहेगा। यह निश्चित है कि सदा आबाद रहेगा। यह हो सकता है कि कभी संघ बहुत उत्कर्ष पर चलेगा और कभी कुछ अपकर्ष में भी आ सकता है, किंतु गतिशील रहेगा। जैसे नदी का प्रवाह गरमी में मंद हो जाता है, किंतु रुकता नहीं, वैसे ही संघ का प्रवाह चलता रहेगा, चलता रहेगा।

समय-समय पर बहुत सारे प्रसंग इस संघ के सामने आए। भगवान महावीर के पश्चात् 609 वर्षों के बाद बहुत बड़ा बदलाव आया और संघ दो भागों में विभक्त हो गया। एक दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। भगवान महावीर के निर्वाण के 690 वर्षों के बाद श्वेताम्बर में भी दो भाग हो गए। आगे चलते हुए फिर इसी प्रकार से कुछ भिन्नता संघ में व्याप्त होती रही। इसके कारण बहुत-से हो सकते हैं। सबसे बड़ा कारण हमारी समझ रही है। हमारी समझ ने जिधर मोड़ लिया हम उधर मुड़ गए। इस कारण से भिन्नताएँ बढ़ती चली गईं।

मैं पहले भी ब्यावर आया था। उस समय महावीर भवन में रुका हुआ था। उस समय एक गीत की कड़ियाँ मेरे कानों में पड़ीं।

जिन धर्म के टुकड़े हजार हुए कोई इधर गिरा कोई उधर गिरा।
जिन धर्म के...

'क्या हुए हजार और कैसे हुए हजार' की समीक्षा करने का समय अभी नहीं है। जिन धर्म के टुकड़े कभी नहीं हुए। हम टुकड़ों में विभक्त होते हुए चले गए। भारत एक है। यहाँ राजस्थान बना, मध्यप्रदेश बना, यू.पी. बना, गुजरात बना, उत्तराखंड बना। भारत अलग-अलग प्रांतों में विभक्त हो गया, किंतु सभी भारतवासियों का एक संविधान है। जैसे भारतवासियों का एक संविधान है, वैसे ही जैनिज्म का एक संविधान है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की

सम्यकाराधना, उसका संविधान है। रत्नत्रय की सुरक्षा होनी चाहिए। अन्य सारे कार्य गौण हैं। ज्ञान की महत्ता है, दर्शन की महत्ता है और चारित्र की महत्ता है। इन तीनों का बचाव होना चाहिए। इन तीनों की रक्षा होनी चाहिए। संघ के हर सदस्य का कर्तव्य है, दायित्व है इनकी रक्षा करना। संघ को हम भिन्न-भिन्न रूपों में भी देखते हैं, किंतु संघ का अर्थ कदमताल के रूप में है।

सबकी एक सोच, सौ सैणों रो एक मत।

सौ आदमी बैठे हैं। सबका समान मत, एकमत। सबके विचार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किंतु निर्णय भिन्न-भिन्न नहीं होता है। निर्णय एक ही होगा और वह सबको मंजूर होगा। जो भी निर्णय होगा, वह ज्ञान, दर्शन व चारित्र को पुष्ट करने वाला होगा। ज्ञान, दर्शन व चारित्र को खंडित करने वाला कोई भी लक्ष्य संघ का नहीं रहेगा। यदि हम साधुमार्गी संघ पर विचार करें, चर्चा करें तो आज उसका जन्मदिवस है। उसका स्थापना दिवस है।

हमने महाभारत में देखा होगा कि श्रीकृष्ण का जन्म कितनी विकट स्थितियों में हुआ। वैसे ही 'श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ' का जन्म, उसकी स्थापना भी बहुत विकट समय में हुई थी। बड़ी कठिनाइयों का वह दौर था। वह दौर कितनी कठिनाइयों का था, इसे केवल एक उदाहरण से आप जान सकते हैं। पंडित लालचंद जी मुणोत संघ समाज के कार्यकर्ता के रूप में पत्र लेखन का कार्य करते थे। पाँच व्यक्ति मिलकर उनका वेतन चुकाते थे।

आप विचार करें कि कितनी कठिनाइयाँ थीं। कितनी समस्याएँ थीं। समय वह था जब पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. ने श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ रूप संस्था से अपने आपको पृथक् कर लिया था। बहुत सारी चर्चाएँ थीं, बहुत सारी समस्याएँ थीं। आचार्य ने उनको समाहित करने के लिए बहुत सारे प्रयत्न किए, किंतु जब देखा कि पानी सिर के ऊपर से निकलने वाला है तब उन्होंने विचार किया कि मुझे निर्ग्रंथ, श्रमण संस्कृति की रक्षा करनी है। पद पर बने रहना मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। शारीरिक वेदना, शारीरिक कठिनाइयाँ बहुत थीं। उन कठिनाइयों को एक गीत की कड़ी से आप जान सकते हैं।

संतों के कंधे डोली थी, पीछे भक्तों की टोली थी...

आचार्य गणेशलाल जी म.सा. विशेष गमनागमन में समर्थ नहीं रहे।

उनके शरीर पर रोगों ने आक्रमण कर दिया था। इसलिए डोली के सहारे संतों के कंधों पर उदयपुर के राजमहल की ओर पधार रहे थे। राजमहल में वे किसी महाराजा से मिलने के लिए नहीं पधार रहे थे। पधार रहे थे नए महाराज (युवाचार्य) की स्थापना के लिए। स्थापना के पूर्व उसकी पृष्ठभूमि भी होनी चाहिए। उस पृष्ठभूमि के रूप में श्रावकों के भीतर एक जज्बा जगा। उनका उत्साह करवट लेने के लिए तत्पर हुआ। लोगों ने मिलकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना की। उसका कई तरह विरोध भी हुआ। पहचान पाना मुश्किल था कि कौन अपना है और कौन पराया। कौन साथ रहेगा और कौन विरोध में होगा। जिधर देखो उधर एक ही चर्चा कि संघ को सक्सेज नहीं होने देना। इसे सफल नहीं होने देना। बात केवल इस संघ की नहीं है। कोई भी नया प्रोजेक्ट खड़ा होता है तो दूसरे लोग चाहते हैं कि वह सफल नहीं हो।

पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. के विचरण क्षेत्र में भी कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। कहें कि उपस्थित की गईं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, किंतु आचार्यश्री ने एक लक्ष्य रखा- चरैवेति, चरैवेति... यानी चलते रहो, चलते रहो... अपना रास्ता तय करते रहो। इधर-उधर क्या हो रहा है, उसमें मत उलझो। यदि यह एक सूत्र हाथ में ले लिया तो सुख की छाया से वंचित नहीं होंगे। यदि उलझना छोड़ दें तो समस्या नहीं रहेगी। उलझते रहेंगे तो स्वयं ही समस्या पैदा करते रहेंगे। उलझते रहेंगे तो समस्या का समाधान नहीं होगा। यदि नीयत उलझने की रहेगी तो समस्याओं का समाधान नहीं हो पाएगा। उलझना छोड़ देंगे तो सामने समस्या नहीं रहेगी।

नाना गुरुदेव ने यही किया। आप भी किसी से उलझें मत। कितनी भी उलझनें खड़ी हो जाएं अपने रास्ते पर चलते रहें। चलते रहने से रास्ता मिलेगा। चलने वाले को मार्ग मिलता है जबकि खड़े रहने वालों के लिए सदा अंधेरा है। खड़ा रहने वाले को रास्ता नहीं मिलेगा।

इस प्रकार से विचार करें तो आज समीक्षा और संकल्प का दिवस है। समीक्षा करनी है कि हम कहाँ थे और कहाँ तक आए। संकल्प का अर्थ है आगे के लिए संकल्पित होना कि कहाँ तक चलना है। हम कहाँ से चले, कहाँ तक रास्ता तय किया और मंजिल पाने के लिए आगे क्या उपाय करना है। हम

जब भूतकाल देखते हैं तो कठिनाइयों से भरा हुआ दिखता है किंतु यह सत्य है कि बिना कठिनाइयों के विकास भी नहीं होता।

आपने नहर में पानी बहते हुए देखा होगा। यह भी देखा होगा कि नहर में पानी को कुछ दूरी तय करने के बाद एक छोटे-से मार्ग से गुजरना पड़ता है। मार्ग बहुत छोटा हो जाता है। उसको एक छोटे-से पाइप के भीतर से गुजरना पड़ता है। फिर वापस उसको वही रास्ता मिल जाता है। वही चौड़ाई मिल जाती है। वह रास्ता नहर के पानी को रोकने के लिए छोटा नहीं किया गया, बल्कि उसका वेग बढ़ाने के लिए किया गया। उससे उसका वेग तीव्र हो जाता है, वैसे ही हमारे भीतर कठिनाइयाँ आएंगी तो हमारी शक्ति जगेगी।

बंगाल में एक कहावत है- 'ठेकला बुद्धि काज दे' और राजस्थान में कहावत है कि 'ठोकर लागणी चाहिए।' जब तक कोई ठोकर नहीं खाता तब तक उसका दिमाग काम नहीं करता है। पुराने समय में बड़े सेठ के लड़के तक को काम सिखाने के लिए दूसरी जगह भेजा जाता था। इसलिए भेजा जाता था ताकि उसको दूसरे की ठोकर लगे। एक बार ठोकर लग गई तो फिर जिंदगी में ठोकर नहीं लगेगी। यदि एक बार भी ठोकर नहीं खाई तो पता नहीं जिंदगी में कितनी ठोकरें खानी पड़ेंगी। ठोकर, बुद्धि को पैना करती है। बुद्धि में विकास के बीज अंकुरित करने के लिए ठोकर बहुत जरूरी होता है। वैसे ही हमारे जीवन में कठिनाइयाँ आनी चाहिए। कठिनाइयाँ दुःख नहीं हैं। यह नहीं सोचें कि जब आप सदा सुख छाँह की बात कह रहे हैं तो फिर कठिनाइयाँ क्यों?

यह हमारी बड़ी भूल है कि हमने कठिनाइयों को दुःख समझ लिया। कठिनाइयाँ भीतर की शक्तियों को जगाने के लिए आती हैं। कठिनाइयाँ इसलिए आती हैं कि भीतर सोई हुई शक्ति का जागरण हो। कठिनाइयाँ प्रेरणा देने के लिए आती हैं। कोई यदि प्रेरणा नहीं लेता है तो वह पश्चाताप करता है। यदि हम प्रेरणा नहीं ले पाते हैं तो परेशान हो जाते हैं। इसलिए जब-जब भीतर कोई कठिनाई आए तो उससे प्रेरणा लेनी चाहिए, न कि परेशान होना चाहिए, किंतु लोग अपनी समझ के अनुसार उससे परेशान होने लगते हैं। यह समझ लेते हैं कि ये कठिनाई परेशानी देने वाली होगी। ऐसा समझेंगे तो परेशानी से कोई नहीं बचा सकता। यदि कठिनाइयों को प्रेरणा के रूप में लेंगे तो कभी पछताएंगे नहीं। प्रेरणा लेकर उत्साह को द्विगणित रूप से विकसित करते हुए आगे बढ़ेंगे

तो सारी कठिनाइयाँ अपने आप दूर होती चली जाएंगी। कठिनाई हमें रोकने के लिए नहीं, बल्कि आगे बढ़ाने के लिए, हमारी शक्ति को और जगाने के लिए आती है।

जब आप गाड़ी को किसी घाटी या चढ़ाई पर चढ़ाते हो तो उसे किस गियर में लेना पड़ता है?

(श्रोता– फर्स्ट गियर में डालते हैं)

जब आप इतना जानते हो तो जीवन की घाटियाँ चढ़ते समय फर्स्ट गियर क्यों नहीं लगा लेते! फिर क्यों रोना! फिर किसका साथ लेना! दुनिया में कोई भी नहीं है साथ देने वाला।

'एकला चालो रे' किसने कहा?

(श्रोता– रवीन्द्रनाथ टैगोर ने)

उससे पहले भगवान महावीर ने कहा था कि 'एगओ चर' अर्थात् भाव से एकाकी चलो यानी किसी की अपेक्षा मत करो। किसी की आवश्यकता मत समझो। अपनी शक्ति पर भरोसा कर आगे बढ़ते चलो। जो आगे बढ़ता जाता है उसके पीछे कदमताल होती रहती है। बहुत से लोग उसके पीछे चलने वाले बन जाते हैं। उसको पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती, लोग उसके साथ कदमताल करते रहते हैं।

संघ के लिए यही बताया गया है कि सबके कदम एक साथ बढ़ें। आपने देखा होगा आर.एस.एस. के कदमताल को। उस कार्यक्रम में सभी सदस्यों के पैर एक साथ उठते हैं और एक साथ जमीन पर गिरते हैं। ऐसा एकता का भाव हो, एकत्व का भाव हो उसको संघ कहा गया है। हमारे मन के विरुद्ध हजारों हो सकते हैं, किंतु संघ का कदम जिधर उठेगा, उसी तरफ मेरा कदम भी उठेगा। उसी के साथ मेरा कदम भी उठेगा। उसे बीच में अटकायें नहीं। अपने मन का विरोध संघ विकास में कभी बाधक नहीं बने। ये बहुत कठिन बात है कि हजारों लोग एक ही माइंड के हो जाएं। भले ही हजारों माइंड होंगे, भिन्न-भिन्न माइंड होंगे, किंतु कार्यशैली एक रहेगी। किसी बात पर संघ ने जो निर्णय कर लिया उसके साथ रहेंगे। संघ के निर्णय से अलग रूठकर नहीं बैठेंगे। यह नहीं सोचें कि मेरी बात मानी नहीं गई। यह नहीं सोचें कि इस निर्णय में मुझसे कुछ पूछा नहीं गया। यदि ऐसी स्थितियाँ होती रहतीं तो आज अपन संघ का

इतना विकसित रूप नहीं देख पाते। वह कहीं किनारे पड़ा रहता। जैसे अब तक हमने कठिनाइयों में भी एकत्व भाव नहीं छोड़ा, वैसा ही भाव भविष्य के लिए भी बना रहना चाहिए।

हमारा एक लक्ष्य है, एक ही उद्देश्य है कि 'जिधर होगा संघ का इशारा, बढ़ेगा उधर कदम हमारा।' जिधर संघ का इशारा होगा, उधर हमारा कदम बढ़ेगा। संघ हमारा प्राण है। यदि प्राण नहीं रहे तो जीवन नहीं रहेगा। प्राणों की सुरक्षा करनी है या इस शरीर की सुरक्षा करनी है?

(श्रोता- प्राणों की सुरक्षा करनी है)

यदि शरीर में प्राण नहीं रहेगा तो डॉक्टर जिंदा नहीं कर सकता है। यदि प्राण रहेगा और आदमी बेहोश हो गया तो उसको होश में लाया जा सकता है। उसका इलाज किया जा सकता है। यदि शरीर जर्जर हो गया तो उसे ठीक किया जा सकता है, किंतु यदि प्राण नहीं है तो कुछ नहीं किया जा सकता। प्राणविहीन शरीर जलाने और दफनाने लायक हो जाता है। फिर उससे कोई अपेक्षा नहीं होती। संघ हमारा प्राण है। वह हमारा जीवन है। हम उससे अलग कोई कल्पना नहीं कर सकते। कोई विचार नहीं कर सकते।

जो नगीना अंगूठी में जड़ा होता है, हार में पिरोया हुआ होता है, वह शोभित होता है। वह सुंदर दिखता है। अलग पड़ा हुआ नगीना कीमत रखता होगा, किंतु उसकी शोभा नहीं है। वैसे ही हमारी शोभा संघ से है। संघ से हमारा नगीना जुड़ा हुआ है, हमारी शोभा जुड़ी हुई है। नहीं तो कोई कहीं गिरा और कोई कहीं गिरा। उसका कोई ठौर नहीं है। कोई ठिकाना नहीं है। पेड़ से टहनियां काट दी जाती हैं या वे हवा से नीचे गिर जाती हैं तो लोग उसे जलाकर नष्ट कर देते हैं। जो पत्तियां नीचे गिर जाती हैं वे वापस अपना अस्तित्व बनाने में समर्थ नहीं हो पातीं। संघ हमारा प्राण है और प्राणों की रक्षा करना हम सबका कर्तव्य। प्राणों का सिंचन करना, प्राणों को बनाये रखना हमारा कर्तव्य है। हमारे प्राणों से किसी प्रकार, कोई समझौते की बात नहीं हो सकती, वहाँ कोई समझौता नहीं होता है। वहाँ समन्वय होता है। संघ आज जिस स्तर पर पहुँचा है, उसके लिए उसने कई मुकाम तय किये होंगे, किंतु अभी यहीं रुकने की बात नहीं है। आगे भी चलना है। चलना है और चलना है...

मकान बनाने में कौन-कौन-से द्रव्य उपयोग में आते हैं?

(व्याख्यान में उपस्थित लोगों की तरफ से आवाज आती है– ईंट, पत्थर, सीमेंट, पानी काम आते हैं)

चूना काम आता है। पानी काम आता है। लोहा काम आता है। लेबर काम आती है। इंजीनियर काम आता है। ठेकेदार काम आता है। बहुत सारे घटक मिलकर एक मकान खड़ा करने में समर्थ होते हैं।

इन सबमें सबसे ज्यादा मूल्यवान कौन होगा? किसका मूल्य ज्यादा होगा?

आप कह रहे हो कि ईंटों का ज्यादा महत्त्व है। खाली ईंटों को जोड़ने से मकान बन जाएगा क्या?

(श्रोता– नहीं भगवन्)

खाली ईंट के ऊपर ईंट रख देने से मकान नहीं बन जाएगा। दो ईंटों को जोड़ने में मसाले की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार संघ रूपी मकान के ईंटों को जोड़ने वाला मसाला होता है वात्सल्य। स्वधर्मी वात्सल्य। हमारे धर्म की आराधना करने वाला मेरा बड़ा प्रेमी है। उसके प्रति दिल में एक जगह होनी चाहिए। यदि घर में जगह नहीं है तो चलेगा, पर दिल कभी छोटा नहीं होना चाहिए। एक नहीं, हजारों, लाखों स्वधर्मी आ जाएं, उन सभी के समाने की जगह दिल में हो, अपने दिल को इतना बड़ा बनाना पड़ेगा। उस समय माथा दुखने का बहाना नहीं हो। कहाँ मिलते हैं स्वधर्मी? उनसे यदि बात भी हो तो इतने प्रेम से, इतने प्यार से कि उन्हें लगे कि मैं शीतल छाँव में आ गया हूँ।

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।
मिलत एक दुख दारुन देहीं।।

रामचरितमानस में तुलसीदास जी कहते हैं कि एक व्यक्ति का बिछड़ना दुख देने वाला होता है तो एक व्यक्ति का मिलना।

हुआ कभी ऐसा? होता है कभी ऐसा? किसी के साथ हुआ होगा। सबके साथ नहीं होगा। जिससे अटैचमेंट हो गया, वह जाता है तो दिल टूटता है। कोई भी स्वधर्मी हो, ऐसा नहीं होना चाहिए कि दिल से अटैचमेंट नहीं हो। कोई कितना भी विरोधी हो सकता है, किंतु स्वधर्मी है तो कलेजे की कोर है। गले का हार है।

मैंने पूज्य गुरुदेव के मुखारविंद से सुना है कि राजस्थान के मुख्यमंत्री

मोहनलाल सुखाड़िया एक सभा में भाषण दे रहे थे तो कुछ लोगों ने उन्हें काले झंडे दिखाये। सभा सम्पन्न होने के बाद काले झंडे दिखाने वालों के पास जाकर मोहनलाल सुखाड़िया ने उनके कंधों पर हाथ रखा और उनके साथ चलने लगे। अब झंडे दिखाने वाले क्या करेंगे? अब वे काला झंडा किसको दिखाएं? उनके हाथों से झंडे छूट गए। ऐसा होगा तो झंडे छूटेंगे या नहीं छूटेंगे?

(श्रोता- हाथों से झंडे छूट जाएंगे)

यदि हमारे सामने कोई बंदूक तानकर खड़ा है और हम भी उसके सामने बंदूक तानकर खड़े हो जायें तो क्या होगा? उसका परिणाम आपको देखने को मिल जाएगा।

जो बढ़े कदम ना पीछे हटेंगे, महावीर के हम सिपाही बनेंगे...

आप भागने वाले बनेंगे या डटे रहने वाले बनेंगे। भागने वाला पीछे की ओर भागता है। उसके सामने कठिनाई आती है और वह भाग जाता है। डटे रहने वाले की गति चाहे धीमी हो जाये पर उसके कदम आगे की ओर बढ़ते रहते हैं। जो कदम उसने बढ़ा दिया, वह पीछे नहीं हटेगा। वे कभी पीछे हटने की बात नहीं करते हैं।

बंधुओ! बहुत सारी बातें कही जा सकती हैं, किंतु कहने और सुनने से सारी समस्याओं का समाधान नहीं है। हमारा जीवन व्यवहार हजारों बातों से बढ़कर है। हजारों मुँह से कही हुई बातें दिल को सुकून नहीं दे सकती हैं, किंतु हमारा एक व्यवहार दूसरों को सुकून देने वाला हो सकता है। हमें समीक्षा यह करनी है कि हम कहाँ से चले और क्या उद्देश्य रहा है? विचार करें कि अपने कर्तव्य और मिशन में सही दिशा की ओर चल रहे हैं या नहीं! विचार करें कि सही दिशा में आगे बढ़ते हुए कहाँ तक विकास करना है!

पिछले दिनों एक प्रोजेक्ट की बात कही थी। कहा था कि अपना एक प्रोजेक्ट बनाया जाए। एक पंचवर्षीय योजना बनाई जाए कि हमें अपने श्रम-स्वाध्याय व साधना को कहाँ तक आगे बढ़ाना है। किस रूप में आगे बढ़ाना है। उसके तीन घटक बताए गए थे। तीन घटक हैं- श्रम, स्वाध्याय और साधना। प्रोजेक्ट बनाना है कि संघ विकास में, स्वधर्मी विकास में स्वयं का कितना श्रम नियोजित करूंगा। कम-से-कम 15 मिनट स्वाध्याय करना है। उसके बाद आकलन करना है कि मेरे पास कितना समय है। स्वाध्याय में उपयोगी ग्रंथों का

चयन करना है। तीसरा साधना यानी दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक कौन-कौन-से धार्मिक अनुष्ठान करने हैं। जैसे सामायिक, पौषध, संवर, दया में से कौन-कौन-से अनुष्ठान करने हैं। इन सबकी एक रूपरेखा बनानी है।

साधना के दो बिंदु हैं। एक अनुष्ठान और दूसरा उपशमन। उपशमन का अर्थ है कि अपने क्रोध, लोभ, मान, माया को मैं कैसे शांत करूँ। हर तीन मास में समीक्षा होनी चाहिए कि मैंने जिस दिशा में कदम आगे बढ़ाये, मैंने जिस प्रोजेक्ट पर काम करना शुरू किया है, उसमें कहाँ तक पहुँचा हूँ। यह समीक्षा करनी है कि मेरा क्रोध कितना कम पड़ा। मान और माया कम हुए या भयंकर हो रहे हैं।

इस प्रकार इस पंचवर्षीय योजना को समझेंगे और उस पर योजनाबद्ध तरीके से काम करेंगे तो अपनी साधना को आगे बढ़ाते हुए अन्यों को भी साधना में सहयोग देकर मंजिल तय करने में समर्थ हो सकते हैं। अन्य भी बहुत सारे विचार हैं। उनका कोई अंत नहीं है।

यह अपने पर निर्भर है कि कितना विचार करें, कितना संयोजन करें। हजारों-हजारों व्यक्ति कार्य करने को तत्पर हैं उनको काम चाहिए। उपाध्याय जी ने बताया कि हमारे भीतर भावना छटपटा रही है। ये भावना कोरी नहीं रह जाए। आमंत्रण का इंतजार मत करो कि कोई बुलाये। कोई निमंत्रण दे कि आइए साहब, आपका स्वागत है। कोई बुलाए या नहीं, मौका देखना है। अवसर देखना है। अवसर देखते हुए कार्य में लग जाना है। काम गुरु होता है। काम अपने आप खींचकर ऊपर ले जाता है। इसलिए जो भी कार्य हो उसमें जुट जाना चाहिए। कार्य न हो तो इधर-उधर बिखरे हुए जूते-चप्पल को ठीक करने में लग जाएं। वह भी बहुत बड़ा काम है। यदि जूठे बरतन पड़े हैं तो उनको भी ठीक कर सकते हैं।

कामों की कोई कमी नहीं है। काम करनेवाला, कोई भी काम नजर आने पर कर लेगा। काम नहीं करनेवाले को केवल शिकायतें नजर आएंगी। वह कहेगा कि होना क्या है। कुछ नहीं हुआ। हमने तो पहले ही बता दिया था। चित्र बनाना कठिन है, किंतु उसमें हजारों गलतियाँ निकालना आसान है। एक लेख लिखना, निबंध लिखना, कविता लिखना बहुत दुष्कर हो सकता है किंतु यह कहना बहुत आसान है कि अरे, शब्द ठीक नहीं है। ऐसा नहीं होना चाहिए

था। वैसा नहीं होना चाहिए था। अरे, वह ठीक नहीं है। यह कागज पड़ा, इसको तुम ठीक करके दे दो। वह कहता है कि म्हारे से ओ काम हुवे कोनी।

ऐसी प्रतिक्रिया कभी भी आगे नहीं बढ़ाएगी। मंजिल नहीं दिलाएगी। प्रतिक्रिया पैरों को अटकाए रहेगी। वह भटका देगी। इसलिए ऐसी प्रतिक्रिया नहीं करना। यदि संशोधन कर सकें तो करना चाहिए। आप यदि संशोधन करते हो तो सुंदर बात होगी। थीम आपकी रहेगी और सोने में सुहागा हो जाएगा। जिसने लिखा है उससे आपकी आत्मीयता जुड़ेगी।

एक संशोधन आपको नजदीक ला सकता है और एक प्रतिक्रिया दूर हटाने वाली हो सकती है। प्रतिक्रिया में प्रतिष्ठा नहीं है। प्रतिक्रिया करेंगे तो प्रतिष्ठित नहीं होंगे। समाधान जीवन का अंग है। इसलिए समाधान में गतिशील बनें। संघ के लिए जीएंगे, संघ के लिए मरेंगे। मरने की आवश्यकता नहीं है। अभी जीने की आवश्यकता है। मौत आ गई तो मर जाएंगे, किंतु मर जाएंगे, तब भी संघ ही दिमाग में रहेगा। ज्ञान, दर्शन, चारित्र का विकास, उसका उत्थान ही थीम रहेगी। वही सोच रहेगी। मरते दम तक वही नजर आएंगे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र को मिशन बनाएं। लक्ष्य बनाएं।

इस तरह की बातें हम बहुत सुनते हैं। सुनने के साथ अब जीवन में कुछ शुरुआत करनी है। सुनने के बाद कुछ शुरुआत करनी है।

किसकी शुरुआत करनी है?

नये सिरे से जीवन जीने की शुरुआत करनी है। ऐसा करेंगे तो अपने आपमें धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

08 अक्टूबर, 21

8

समता सर्व मंगल

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

हम छोटे-से-छोटे प्राणियों को देखें, उनको किसी चीज की खोज रहती है। वे कुछ तलाशते रहते हैं। एक चींटी भी कुछ तलाशती रहती है तो एक मच्छर भी कुछ तलाशता रहता है। इसी तरह मक्खी भी कुछ खोजती रहती है, तलाशती रहती है। अमूमन हम किसी भी प्राणी को देखें तो वह खोज करता है, वह तलाशता रहता है। उसको कुछ आवश्यकता होती है। वह चाहता है कि उसे वह चीज मिले।

खोज दो प्रकार की होती है। पहली, इंद्रियों के अनुकूल और दूसरी, आत्मा के अनुकूल। दूसरे शब्दों में अर्थ होगा प्रेयार्थी और श्रेयार्थी। एक खोज इंद्रियों को प्रिय लगने वाली होती है। इंद्रियों की चाह वाली होती है। चाहे वह शब्दों से हो या रूप से या फिर आकर्षण से। चाहे वह गंध से प्रिय लगे या स्वाद से। इस प्रकार की खोज इंद्रियों को प्रिय लगने वाली होती है। कई लोग भोजन करते हुए नमक पास में लेकर बैठ जाते हैं। निवाला लेते समय लगा कि नमक कम है, स्वाद नहीं है तो वे नमक और ले लेते हैं। किसी को मिर्ची प्रिय होती है। घर में सबको मिर्ची उतनी नहीं सुहाती। जिसको मिर्ची प्यारी लगती है, वह थाली में रखे हुए खाद्य पदार्थों के ऊपर मिर्ची डाल लेता है। यह भी एक खोज है। यह भी एक चाह है।

दुनिया में जितनी भी खोज की जा रही हैं, उनमें से अधिकांश अपनी सुविधाओं के लिए हो रही हैं। वैज्ञानिक जितनी भी खोज कर रहे हैं उसका लक्ष्य है मनुष्य को सुख-साता मिलना। यह बात अलग है कि कुछ ऐसे रिएक्शन होते हैं, जिससे असाता भी हो जाती है, किंतु शोध का मूल उद्देश्य

जन-जीवन को साता पहुँचाने का रहता है।

श्रेय की खोज के लिए प्रथम चरण कठिन राह पर धरना पड़ता है। अपने आपको मुसीबतों में डालना पड़ता है। जिसमें रुचि नहीं है उसमें पहला कदम धरना पड़ता है। मन विरोध करता है कि मत जा उधर, फिर भी चलता है। मन कहता है कि यह मार्ग सुहाना नहीं है फिर भी चलता है।

सम्यक् दर्शन के आठ आचार हैं। उसके आठ अंग हैं। उनमें पहला है निश्शंक। इंद्रियों की खोज शंका वाली होती है। चींटी भी कुछ खोज करने से पहले आशंकित होती है कि कहीं मेरे पर आक्रमण होने वाला तो नहीं है। वह शोधती है कि कहीं आघात होने वाला तो नहीं है। जब उसको लगता है कि कोई आघात होने वाला नहीं है, मार्ग साफ है तो आगे बढ़ती है। यदि उसको आतंक जैसा कुछ लगता है तो वापस लौट जाती है। हम लोगों ने अनुभव किया है कि भोजन मंडली में जब बैठते हैं तो पहले इक्का-दुक्का चींटी आती है। उसको यदि हटा दिया जाए तो वह वापस चली जाएगी। पुनः आएगी नहीं। अन्य चींटियाँ भी नहीं आतीं, क्योंकि उन्हें सूचना चली जाती है कि यहाँ सुरक्षा नहीं है। उन्हें लगता है कि यहाँ हमारी दाल नहीं गलेगी। वहाँ असुरक्षा का भय रहता है, वे आशंकित रहती हैं।

सम्यक् दर्शन निश्शंक अवस्था है। उसमें शंका रहित होकर घुसो। बिना डाउट के अंदर चले जाओ, देखा जाएगा। कोई भय नहीं होना चाहिए। निर्भय होकर उसमें घुस जाओ। इस मार्ग पर डाँवाडोल मन वालों के लिए प्रवेश निषिद्ध है। डाँवाडोल मन वाला प्रवेश नहीं कर पाएगा। इसमें प्रवेश के लिए शंकारहित होना पड़ेगा, निर्भय होना पड़ेगा। छलाँग लगानी पड़ेगी।

दूसरी दृष्टि से विचार करते हैं तो जीवन दो प्रकार से जीया जाता है। एक निश्चय से और दूसरा व्यवहार से। व्यवहार, निश्चय से एकदम अलग नहीं है। कल मैंने कहा था कि अकेले चलो। भगवान ने कहा कि अकेले चलो। किसी से आशा नहीं रखना। जिनकल्पी, प्रतिमाधारी भिक्षुक व श्रावक स्वयं में अवस्थित होकर चलते हैं। वे न किसी को उपदेश देते हैं और न किसी को दीक्षा ही देते हैं। दूसरा तर रहा है या डूब रहा है, उससे उनको कोई लेना-देना नहीं होता। वे केवल आत्मलक्षी भावों से चलते हैं। वे सिर्फ इस उद्देश्य से चलते हैं कि मुझे क्या करना है।

दूसरा मार्ग व्यवहार का है। इस मार्ग का लक्ष्य होता है कि मैं भी चलूं और दूसरों को भी साथ ले चलूं। सुना है मैंने पूज्य जवाहरलाल जी म.सा. से एक बार किसी ने कहा कि म.सा. आपके विचार, आपकी गति बहुत द्रुत है। आप जिस समाज के साथ बैठे हो वह समाज आपको कभी उत्कर्ष पर नहीं चढ़ने देगा, ऊँचाइयाँ नहीं लेने देगा। उसने कहा कि म.सा. आप इससे हटकर कुछ क्रांति कर सकते हो। पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने कहा कि मैंने समाज की अंगुली पकड़ी है तो मैं समाज को साथ लेकर चलूंगा। मुझे समाज को साथ लेकर चलना है। यदि मेरी गति धीमी रहेगी तो भी कोई बात नहीं, किंतु समाज को छोड़कर मैं चाहे कितनी भी गति कर लूँ, विकास कर लूँ, वह सही नहीं होगा। सोच अलग-अलग हो सकती है, विचार अलग-अलग हो सकते हैं, किंतु यह व्यावहारिकता है कि सबको साथ लेकर चलूं।

अभी आप सुन रहे थे महासतियों और संतों को। मेरे लिए कई बार समीक्षा का विषय बन जाता है। कुछ बातें उठती हैं कि व्यक्ति को पद का मोह ज्यादा हो जाता है। व्यक्ति के मन में पद की लालसा पैदा नहीं होनी चाहिए। यह उचित है। मेरे मन में एक विचार पैदा हुआ कि जो व्यक्ति पद चाहता है, उसे पद दिया जाए। जो पद चाहता है उसे कोई-न-कोई पद देना चाहिए। अध्यक्ष, मंत्री या कोषाध्यक्ष कोई भी पद हो, सबको देना चाहिए। पद एक है और कइयों को चाहिए तो कई इकाइयाँ और भी बनाई जा सकती हैं। कुछ लोगों को कुछ अलग पद दे दिया जाए। सबको पद दे दिया जाए। पद देने में असुविधा कुछ भी नहीं है, किंतु शर्त केवल एक रहेगी, ताकि पद का मोह न बने। वह शर्त होगी कि दो साल बाद साधु बनना पड़ेगा। जिसको पद चाहिए, वह ले पर उसको दो साल बाद साधु जीवन स्वीकार करना पड़ेगा।

अब बताओ कौन-कौन पद लेना चाहता है? हाथ खड़े करो, किसको पद चाहिए?

(एक बच्चा खड़ा हुआ)

पोता खड़ा हुआ है। दादाजी ने कह दिया होगा कि हो जा बेटा खड़ा तो खड़ा हो गया। बोलो क्या बनना है आपको? अध्यक्ष बनना है, मंत्री या कोषाध्यक्ष बनना है या फिर साधु?

(बच्चा बोला- साधु मेरे दादाजी बनेंगे। मैं नहीं बनूँगा। बच्चा अपने

दादा का हाथ पकड़कर खड़ा कर रहा है)

आप विचार करो! अब आपको बहुत अच्छी तरह से अनुभव होगा कि पद लेने के लिए कितने तैयार हैं? कितने लोगों की तैयारी है, पद लेने के लिए? जिसको साधु बनना है उसको पद से कोई लेना-देना नहीं है और जिसको पद चाहिए उसको साधु बनने से कोई लेना-देना नहीं है। भावना जग जाए तो बात अलग है। जगने पर अलग बात होती है। कई बार मैं देखता हूँ कि जो भाई यहाँ सामायिक, पौषध करते हैं, वे देखते हैं कि कौन आ रहा है, कौन जा रहा है। कल भी देखा कि बहनों को कई भाई रोकने के लिए जा रहे थे कि सूर्योदय से पहले नहीं आना। वे देखें कि वे क्या कर रहे हैं।

पहले की बात है। ईश्वरचंद जी म.सा. विराज रहे थे। पास में श्री शांतिमुनि जी म.सा. विराज रहे थे। थोड़ी विनोद की बात चली कि म.सा. आपके उधर गाँवों के नाम हैं रासीसर, घड़सीसर, सुजासर, भामटसर आदि। सब गाँवों के पीछे सर लगा हुआ होता है। श्री ईश्वरचंद जी म.सा. ने कहा भदेसर। श्री शांतिमुनि जी म.सा. भदेसर के थे। मतलब हमें दूर का डूँगर जल्दी नजर आता है। नजदीक की वस्तु आँखों से ओझल हो जाती है। दूर की बातों पर दृष्टि अधिक जाती है। दूसरे की दृष्टि पर जितना हमारा ध्यान जाता है उतने ही हम अपने आपमें ओझल होते जाते हैं।

वे भाई सामायिक में रहे होंगे। उनकी पोशाक सामायिक की थी और बहनों से कह रहे थे कि अभी सूर्योदय नहीं हुआ है। यह उनको मालूम था इसलिए वे बहनों को बता रहे थे। वे बता रहे थे कि जब तक सूर्योदय नहीं होता है, तब तक आपको नहीं आना और उनका खुद का माथा खुला रह गया। प्रतिक्रमण के समय वे कहते हैं कि म.सा. मांगलिक सुनाओ। अरे भाई, पहले माथा तो ढको। यहाँ आ गए पच्चक्खाण करने और क्या हुआ? लोगों ने कहा कि माथा खुला रह गया।

अकल शरीरां उपजे डाम दियां तो आवे डास...

इसका मतलब क्या हुआ?

इसका मतलब है कि जो अभी ज्ञाता-द्रष्टा भाव में नहीं आया, उसको उपदेश की जरूरत है। उसके जगने की आवश्यकता है। वह अभी सोया हुआ है। उसे जागृत करना पड़ेगा। जागृत करने के अलग-अलग तरीके हो

सकते हैं। एक तो मधुरगान से उसको प्रेरित करके जगाया जा सकता है कि समय हो गया। जैसे राजा-महाराजाओं को शय्यापालक उठाया करते थे। मधुर तान सुनाकर उनको निद्रा का त्याग कराया करते थे। दूसरा तरीका होता है कि कोई हाथ पकड़कर उठा दे। दोनों तरीके उठाने के हैं, किंतु पहला तरीका आदमी के भीतर प्रेरणा देने वाला होता है और दूसरा तरीका प्रेशर पैदा करने वाला होता है।

यहाँ बैठने वालों में साधुमार्गी संघ के कितने लोग हैं, हाथ खड़े करना? ऐसे कितने हैं जिनको साधुमार्गी संघ की तरफ से कार्य मिला है? हाथ खड़ा करना। कम ही हैं जिनको काम मिला है। लक्ष्य यह होना चाहिए कि एक भी व्यक्ति जिम्मेदारी से रहित नहीं हो।

गौतम जी रांका देख लेना कि कितने हाथ खड़े हुए हैं। अब आपका दायित्व है कि साधुमार्गी संघ का एक भी सदस्य आपके द्वारा बिना जिम्मेदारी के न रहे। यह संघ की कमी है कि उसने सभी लोगों तक कार्य नहीं पहुँचाया। जिम्मेदारी का बँटवारा नहीं किया। जिम्मेदारी का संविभाग नहीं किया।

हमने सारे लोगों तक जिम्मेदारी का वितरण नहीं किया। सभी लोगों तक संघ का प्रसाद नहीं पहुँचाया। यह किसकी कमी रही रांका जी? यदि घर में कमाने वाला एक होगा और बाकी सब खाने वाले होंगे तो परिवार की सफलता कहाँ से होगी? और जितने खाने वाले हैं वे सब कमाने वाले होंगे तो घर में अभाव कहाँ से होगा? सद्भाव होगा या अभाव?

हम जिस संस्कृति में जीते हैं, वहाँ अधिकांशत: कमाने वाला एक होता है और खाने वालों की लाइन लगी होती है, किंतु अब युग बदल गया है। अब श्रीमान ड्यूटी पर हैं तो श्रीमती भी ड्यूटी पर है। ऐसा नहीं कि एक ही कमाने वाला है। संघ में भी ऐसा वातावरण होना चाहिए। जितने खाने वाले हों उतने ही कमाने वाले होने चाहिए। अर्थात् एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं होना चाहिए, जिस पर कोई जिम्मेदारी नहीं रहे।

ये बताओ कि कितने लोगों ने गौतम जी से बोला है कि मुझे संघ का काम दो? किसने कहा कि हमको संघ का कार्य सौंपें?

(कुछ लोग हाथ खड़े करते हैं)

इतने ही हाथ खड़े हो रहे हैं। बाकी लोग क्या करेंगे? संघ के काम के

लिए मनुहार किसलिए? संघ के काम के लिए मनुहार की आवश्यकता क्यों होनी चाहिए? घर में भोजन के लिए मनुहार की जाती है या भूख लगने पर अपने आप चले जाते हो? वहाँ कहना नहीं पड़ता कि पधारो-पधारो, भोजन का समय हो गया। भूख लगने पर अपने आप चले जाते हो, अपने आप जाकर कहते हो कि रोटी बन गई हो तो मेरे को परोस दो। मेरे लिए थाली लगा दो। खाना परोस दो। यदि कहा जाता है कि अभी थोड़ी देर है तो थोड़ा इंतजार भी कर लेते हो। वही स्थिति अपने संघ की होनी चाहिए। संघ पराया नहीं है। संघ अपने घर के समान है।

दो साल पहले की बात है। सकारात्मक अनन्यकार सेवा से भी बहुत-से लोग वंचित रह गये। इस महोत्सव में सबके लिए एक ईंट लाकर रखनी थी। उस महोत्सव में सबको जिम्मेदारी दी गई थी। उसको भी यदि कर पाने में समर्थ न बन पाए तो जिम्मेदारी उठाएंगे कैसे। पहले अपने भीतर जिम्मेदार बनने की शक्ति पैदा करनी चाहिए कि मैं जिम्मेदार हूँ। मैं जो भी कार्य हाथ में लेता हूँ उसे पूरा करता हूँ। उसको बीच में नहीं छोड़ता हूँ। उसे अधूरा नहीं छोड़ता हूँ। हमारे जीवन का रिकॉर्ड ऐसा होना चाहिए कि जो भी कार्य हमने हाथ में लिया, उसे बीच में नहीं छोड़ा। उसे अधूरा नहीं छोड़ा। यदि ऐसा नहीं होगा तो आप जहाँ से रवाना हुए और जहाँ पहुँचना था वहाँ नहीं पहुँचे। बीच में ही ठिठक गये। इसका मतलब हुआ कि जहाँ खड़े थे अब भी वहीं के वहीं खड़े हैं।

गुलेच्छा जी! आपका ज्ञान भंडार कहाँ खड़ा है? कितना आगे बढ़े? श्रीचंद जी कोठारी ने दिया उतना ही है या उससे आगे बढ़े?

(गुलेच्छा जी- आगे बढ़ा भगवन्)

कितने आगे बढ़े? कितनी किताबें पढ़ ली?

(गुलेच्छा जी- किताबें तो नहीं पढ़ी भगवन्)

अलमारियाँ तो बढ़ी होंगी पर, वाचने वाले नहीं बढ़े।

तो हमने क्या विकास किया? हमने कितनी जिम्मेदारी निभाई? मैं एक-एक व्यक्ति की समीक्षा नहीं करना चाहता। ये तो मुझे सामने दिख गए इसलिए बात आ गई। एक-एक की समीक्षा करना मेरी प्रवृत्ति भी नहीं है। केवल संयोजक बनकर नहीं रह जाएं। संयोजन की विधि भी आनी चाहिए। जिम्मेदारी हमारी सशक्त होनी चाहिए।

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में एक कहानी है कि एक ससुर ने अपनी पुत्रवधुओं को अन्न के पाँच-पाँच दाने दिए। एक पुत्रवधू ने उन दानों को फेंक दिया। दूसरी ने ससुर जी का प्रसाद समझकर खा लिया। तीसरी ने उसको सुरक्षित रख दिया। चौथी पुत्रवधू ने उसको खेत में बोवा दिया। उससे जो अनाज पैदा हुआ उसे पुन: बोवाया। इस प्रकार पाँच साल में अनाज खूब बढ़ गया। पाँच साल के बाद जब ससुर जी ने अपनी पुत्रवधुओं से कहा कि मेरे दाने मुझे वापस दे दो तो पहली पुत्रवधू ने कहा कि मेरे पास नहीं है। ससुर ने कहा कि कहाँ चला गया तो उसने कहा कि मैंने उन दानों को उसी दिन फेंक दिया। दूसरी पुत्रवधू से वे दाने माँगे गए तो उसने कहा कि मैंने प्रसाद समझकर खा लिया। ससुर जी ने तीसरी पुत्रवधू से पूछा कि वे दाने कहाँ है तो वह दौड़ी-दौड़ी गई और एक डब्बी लेकर आई। उस डब्बी के अंदर बहुत सुंदर मखमल का कपड़ा बिछा हुआ था। पुत्रवधू ने उन दानों को उसी में अंवेर कर रखा था। उसने दानों को लाकर ससुर जी को सौंप दिया। चौथी पुत्रवधू से पूछा गया तो उसने कहा- दानों को लाने में समय लगेगा। पूछने पर उसने उसे स्पष्ट किया।

आप जानते हो कि जिम्मेदारी किसको सौंपनी चाहिए?

(लोगों ने कहा- चौथी बहू को)

अर्थात् जो विस्तार कर सके उसको सौंपनी चाहिए।

ससुर जी ने दाने फेंकने वाली से कहा कि तुम घर का कचरा साफ करो। दूसरी से कहा कि आज से भोजन की व्यवस्था तुमको संभालनी है। तुमने दानों को प्रसाद समझकर खा लिया इसलिए रसोई के काम की जिम्मेदारी तुम्हारी है। उन्होंने तीसरी पुत्रवधू को कोष की चाबी दी क्योंकि वह सम्पत्ति को अंवेर कर रख सकती है। वह संपत्ति को सुरक्षित रख सकती है। चौथी पुत्रवधू को इन तीनों की जिम्मेदारी का कार्य सौंपा गया। उससे कहा गया कि इन सबकी देखरेख करना तुम्हारा काम है। इस प्रकार सबको कार्य सौंपा गया।

राम झरोखे बैठ के सबका मुजरा लेय।
जाकी जिसकी चाकरी वैसा ही फल देय।।

जिसकी जैसी क्षमता हो, जिसकी जैसी योग्यता हो उसके अनुसार उसको जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। यदि खाने वाले को आपने दूसरा काम दे दिया तो न उसका पेट भरेगा और न दूसरा काम कर पाएगा। झाड़ू निकालने

वाले को यदि तिजोरी की चाबी दे दी तो उसमें रही चीजों को निकाल कर फेंक देगा। वह उन चीजों को सुरक्षित नहीं रख पाएगा। इसलिए सबसे बड़ी बात है कि योग्य स्थान पर योग्य व्यक्ति की योजना होनी चाहिए। यदि यह दृष्टि हो गई तो आने वाले समय में संघ की कैसी रौनक बनेगी और वह कितना ऊँचा उठेगा, उसका अनुभव हो सकता है।

पंचवर्षीय प्रोजेक्ट के बारे में आपके सामने कई बार बोल चुका हूँ। एक और बात जो बहुत अच्छी भी है और महत्त्वपूर्ण भी; वह है यतना। श्रावक वर्ग को यतनाशील होना चाहिए। साधुओं के महाव्रतों के सम्यक् पालन में श्रावक-श्राविका की महत्त्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। पर श्रावक वर्ग यदि यतनालीन नहीं होगा तो वह साधुओं के लिए सुरक्षा घेरा कैसे साबित हो पाएगा।

मेरे खयाल से कुछ घरों को छोड़ दें तो अधिकांश घरों में नौकर-चाकर अवश्य होंगे। कोई बरतन माँजने वाला, कोई कपड़े धोने वाली तो कोई फैक्ट्री चलाने वाला होगा। उनमें से कितने लोगों को हमने यतना से काम करने के लिए सिखाया। बरतन माँजने वाली, कपड़े धोने वाली, रसोई बनाने वाली, झाड़ू-पोंछा लगाने वाली बहनों में से कितनों को यतना से काम करने का तरीका सिखाया? यह देखें कि वे चींटियों को घिसती जा रही हैं या उनकी रक्षा करती हैं। उसको मारकर कचरे के साथ बाहर तो नहीं फेंक रही हैं? इन सबसे बचने के लिए उनको ट्रेनिंग दी या नहीं? यदि ट्रेनिंग नहीं दी और वे जीवों की विराधना कर रही हैं तो उस पाप के भागी आप भी हो रहे हैं। ऐसा नहीं है कि उस पाप के भागी आप नहीं होंगे।

आप कितने लोगों को यतना की सीख देंगे?

यतना वाले कार्य ऐसे लोगों को नहीं सौंपे, जो जीवों का घमासान करते हों, घात करते हों। ऐसा होगा तो भीतर सामायिक उतरेगी, यतना आएगी। बिना पूंजनी नहीं चलेंगे। रात्रि को सामायिक में अछाया वाले (खुले) स्थान में खुला सिर नहीं चलेंगे। वंदना करते समय डांडियाँ, पूजनी ऊपर से नहीं गिराएंगे। ऊपर से क्यों गिराई जाती है? क्योंकि ज्ञान नहीं है। ज्ञान है तो झुकने को तैयार नहीं हैं। ज्ञान करें, झुकना सीखें। कोई भी वस्तु रखें झुककर हाथ से जमीन पर रखें। ऊपर से गिराने का मतलब क्या है? वर्षों से सामायिक कर रहे

हैं, वर्षों से पौषध कर रहे हैं, पर यतना से नहीं जुड़ पाए। यह बात ध्यान में रखना, सारी बातें सिखाने से नहीं आतीं। सीखने को तैयार होंगे, भीतर सीख घुसेगी तो जीवन में परिवर्तन होगा। जब तक सीख घुसेगी नहीं, तब तक कुछ नहीं होने वाला। चाहे जितने समय तक दूध के पास दही पड़ा रहे, वह दही नहीं बनेगा। पास में रख देने मात्र से दही नहीं जमता। दही भी विधि से जमता है। उसी प्रकार विधि से किया हुआ कार्य सफल होता है और परिणाम देने वाला होता है। अविधि से किया गया कार्य कभी सफल नहीं होगा। हो भी गया तो वह सफलता का मापदंड नहीं है।

यहाँ बैठने वाले ऐसे कितने लोग हैं जिनके घर, फैक्ट्री, ऑफिस या अन्य जगह कहीं-न-कहीं कर्मचारी काम कर रहे हैं? दुकान में, फैक्ट्री में, कहीं-न-कहीं कार्य अवश्य कर रहे होंगे। कई लोग ऐसे भी हैं जो अपने हाथ से काम करना ज्यादा पसंद करते हैं। जिनको नौकरों का काम सुहाता नहीं है, वह अपने हाथों से किए हुए काम को बढ़िया समझते हैं। मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि जिन घरों में, दुकानों में, ऑफिसों में और फैक्ट्रियों में कर्मचारी काम करते हैं वे सभी यतना से करते हैं क्या? विमल जी खड़े हो जाएं, आपकी फैक्ट्री में कितने आदमी हैं?

(विमल जी सिपानी ने कहा- तीन हजार हैं)

उनमें से नवकार मंत्र कितनों को आता है?

(विमल जी सिपाणी ने कहा- भगवन् बहुत कम को आता है। जो जैन लोग हैं उनको आता है। वह भी सभी को नहीं)

आप तो अनन्य महोत्सव के संयोजक हैं, आप तो चेयरमैन हैं, तीन हजार लोग नवकार मंत्र नहीं सीख पाए? आपने उनको सिखाया होगा कि मशीन किस तरह चलाना चाहिए। आपने उनको ट्रेनर से ट्रेनिंग दिलाई होगी। एक विमल जी की बात नहीं है। अलग-अलग हर श्रावक से पूछ लूँ कि उनके यहाँ जितने लोग कार्य कर रहे हैं उनमें से नवकार मंत्र कितनों को आता है। क्या जो हमारे काम कर रहे हैं उनको धर्माभिमुख करने की जिम्मेदारी हमारी नहीं है?

(श्रोतागण- हमारी जिम्मेदारी है भगवन्)

पिपलिया के सेठ प्रेमचंद जी बोहरा के वहाँ जितना भी स्टाफ था,

उन्हें ऑफिस में सामायिक करना अनिवार्य होता था। ध्यान रहे, स्टॉफ और वर्कर में फर्क होता है। मशीनों पर काम करने वाले को वर्कर बोला जाता है और ऑफिस में काम करने वाले को स्टाफ कहते हैं। उनके सारे कर्मचारियों को सामायिक करना अनिवार्य होता था।

गौतम जी रांका! आपके ऑफिस में कितना स्टॉफ है? कितने लोगों को सामायिक करना अनिवार्य है? सोचने में ही दिक्कत हो रही है। ऑफिस का स्टाफ यदि ड्यूटी के समय में ही सामायिक कर ले तो क्या फर्क पड़ता है। ऑफिस के समय में ही 48 मिनट सामायिक करवानी है। हमने केवल सुना है कि 52 डूंगरी धन सामायिक की दलाली में पूरा नहीं था, पर विश्वास कम होता है। विश्वास होता तो कितनी सामायिक होती?

यह बात समझ में धीरे-धीरे आएगी। आपने पुराने समय की कहानियाँ सुनी होंगी कि कौटुंबिक पुरुषों की विकास यात्रा की जिम्मेदारी व्यक्ति की होती थी। आपके वहाँ काम करने वाले कुटुंब के समान हैं। वे कौटुंबिक हैं। उनके लिए हम चाहते हैं कि उनके आते ही पहले मंगल हो, उसके बाद कार्य गति करे, कुछ विकास रेखाएं उनके लिए भी हों। उसमें हमको जागृत होना चाहिए, हमें प्रयत्न करना चाहिए। कोई बड़ी बात नहीं है दस मिनट, पंद्रह मिनट का समय लगाना। हमारे बच्चे जिस स्कूल में जाते हैं वहाँ वे प्रार्थना करते हैं। वहाँ जो प्रार्थना करायी जाती है वे करते हैं। चाहे वह हमारे सिद्धांत से मिलती हो या नहीं। प्रार्थना इंग्लिश में करवाई जा रही है या हिंदी में करवाई जा रही है उनके अनुसार ही उनको प्रार्थना करनी पड़ती है।

वैसे ही प्रत्येक ऑफिस, प्रत्येक फैक्ट्री, घर या दुकान पर कार्य करने वाले सभी लोगों को नवकार मंत्र बोलवाएं। शिफ्ट छह बजे, आठ बजे या दस बजे से बदलती है। शिफ्ट बदलने के साथ ही सबसे पहले दस मिनट का समता सर्व मंगल का कार्यक्रम प्रत्येक जगह आयोजित होना चाहिए। उससे आप अनेक लोगों को धर्म से जोड़ने वाले बन जाओगे। वे नहीं करें तो उनको समझाना कि यह मंगलाचरण रूप है जो अवश्य होना चाहिए। समता सर्व मंगल कोई जाति और पार्टी को बढ़ावा देना नहीं है, अपितु सर्व जीवों के मंगलार्थ है। ऐसा दस मिनट का मांगलिक कार्यक्रम प्रत्येक फैक्ट्री में, ऑफिस में, घर में हो। समता सर्व मंगल का फॉर्मूला इस प्रकार है-

नमो अरिहंताणं,
नमो सिद्धाणं,
नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं,
नमो लोए सव्वसाहूणं

इसे पाँच बार बोलें, जैसे आप लोग जाप करते हैं।

नमो लोए सव्वेसाहूणं तक पाँच बार बोलना है। यदि किसी को नहीं आता है तो एक व्यक्ति आगे बोले, दूसरे पीछे बोलें।

एसो पंचनमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं

उसके बाद

होवे धर्म प्रचार प्यारे भारत में, हाँ होवे धर्म प्रचार प्यारे भारत में...

जो मीठी और रसदार वाणी वाला हो, वह बोलवाए। रसदार वाणी सुनने में प्रिय लगती है। मीठी हो, किंतु रस नहीं हो तो कोई मतलब नहीं है। रस वाली वाणी सुनने के लिए सभी तैयार रहेंगे। इसमें कोई जाति और सांप्रदायिक बात नहीं है।

तजकर निंदा झूठ बुराई, गले मिलें सब भाई-भाई,
बहे प्रेम की धार प्यारे भारत में...

समता सर्व मंगल कार्यक्रम करने वाला सोचेगा कि मैं निंदा नहीं करूँ, बुराई नहीं करूँ। ये बातें जब अच्छी लगने लगेंगी तो वहाँ प्रेम की धार बहती रहेगी। बात अच्छी है इसलिए सारे लोग साथ मिलकर दस मिनट का कार्यक्रम करें।

नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी ना कहा करूँ...

मेरे खयाल से सभा में आज गौतम जी पारख होंगे। गौतम जी पारख आज यहाँ होंगे तो बड़े खुश हो रहे होंगे। उनकी बड़ी तमन्ना रहती थी कि मेरी भावना पर कार्यक्रम होना चाहिए। समता सर्व मंगल में कई पद्य स्वीकार किए गए हैं, जो हर फैक्ट्री में, हर इकाई में गुंजायमान हो।

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे...

यहाँ तक करना है। उसके बाद कोई छोटा-सा प्रत्याख्यान किया

जाए। प्रत्याख्यान याद नहीं आवे तो एक कागज पर लिखना। मंगल पाठ सुनाने के बाद कार्यक्रम पूरा किया जाए।

इस कार्यक्रम को एक जनवरी से चालू करना है। जो अपने-अपने ऑफिस में चालू करना चाहते हैं वे खड़े हो जाएं। एक जनवरी से सब जगह होना चाहिए। फैक्ट्री में भी करें। जो भी समय सुटेबल हो उसी समय करें। पहले मंगल काम। बाकी सब काम बाद में। यदि अपना मंगल चाहते हैं तो मंगल कार्यक्रम पहले हो। उसके बाद अन्य कार्य प्रारंभ हो।

जो भी खड़े हुए हैं वे एक जनवरी से अपने-अपने प्रतिष्ठानों में दस मिनट का समता सर्व मंगल कार्यक्रम चालू करेंगे। अप्पाणं वोसिरामि। इस विषय को यहीं विराम देता हूँ।

09 अक्टूबर, 2021

9

तज दे निंदा, झूठ, बुराई

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

होवे धर्म प्रचार गीत में एक कड़ी है– तजकर निंदा, झूठ, बुराई।

इसमें कितने शब्द हैं?

(श्रोतागण– पाँच)

पाँच नहीं, चार ही है।

यदि निंदा, झूठ और बुराई तीन दुर्गुण हमारे भीतर से निकल जाएं तो हम मंगल बन जाएंगे। हमारा जीवन मंगल हो जाएगा।

मंगल क्या है? यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मंगल हो। वैसे कुछ भौतिक पदार्थों को मंगल माना गया है। वह औपचारिक है। भाव मंगल पापों को नष्ट करता है। उन्हें समाप्त करता है, गला देता है। जब पाप गल जाएंगे तो हम मंगलमय बन जाएंगे। स्वर्ण मिट्टी में मिला हुआ होता है, मिट्टी के साथ रहा हुआ होता है। कुछ प्रक्रिया के द्वारा सोना अलग किया जाता है और मिट्टी अलग की जाती है। आभूषण बनाने में खाद मिलाई जाती है। उसको पुन: जब अग्नि में डाला जाता है तो खाद अलग हो जाती है और स्वर्ण अलग।

यही प्रक्रिया हमारे जीवन की है। हमारी आत्मा कर्मों के मैल के साथ अनादिकाल से पड़ी हुई है। अनादिकाल से कर्मों का संग इस आत्मा ने कर रखा है।

कब से है? इसकी कोई शुरुआत नहीं है। अनादिकाल से हम मिट्टी रूप कर्म में मिले हुए चले आ रहे हैं। कर्मों की मिट्टी से सने हुए चले आ रहे हैं। अब तक हम अपने आपको धो नहीं पाए। कपड़े पर थोड़ा दाग लग जाए, कपड़े मैले हो जाएं तो उसको पहनने की इच्छा नहीं होती। कपड़ों को धोकर

पहनने की इच्छा होती है। हाथ-पाँव कीचड़ से सन जाने पर खाना खाने से पहले हाथ धोने का विचार करेंगे। सोचेंगे कि मिट्टी-कीचड़ से भरे हाथों से भोजन कैसे करूँ। मेरे खयाल से यहाँ बैठे हुए लोगों में से जिनके भी हाथ कीचड़ से भरे होंगे, वे हाथ धोकर ही खाना खाने बैठते होंगे।

(श्रोतागण- हाँ भगवन्!)

जहाँ तक हम सोचते हैं कीचड़ से भरे हुए हाथ से खाना नहीं खाना चाहिए। हाथ को धोकर ही खाना खाना चाहिए। इसी तरह पैर कीचड़ से भरा हो तो आसन पर बैठने से पहले कीचड़ को हटाएंगे।

बाहर के कीचड़ को हटाने की प्रक्रिया हम शीघ्र करते हैं। हम तत्परता से उसको हटाते हैं, किंतु भीतर अनादिकाल से कर्मों का जो मैल लगा हुआ है, कर्मों की जो मिट्टी लगी हुई है, उसको दूर करने का प्रयत्न कम करते हैं।

यह प्रश्न खड़ा होता है कि उसे दूर करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते?

प्रश्न खड़ा होता है तो उसका समाधान भी है। वह समाधान है- मेरेपन की बुद्धि को हटाना।

किंतु जब हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ हाथों और पैरों में पड़ी हों, तब वह क्या करे, कैसे करे। हम बेड़ियों में बंधे हुए हैं, हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हैं। ऐसी स्थिति में हमारी शक्ति क्रियान्वित नहीं हो पाती। मोह की बेड़ियाँ, मेरेपन की हथकड़ियाँ हमारे साथ जब तक रहेंगी, तब तक हम जैसा चाहें, वैसा पुरुषार्थ करने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। यह निश्चित है कि मोह की बेड़ियाँ हमें ही काटनी पड़ेंगी। इन्हें काटने के लिए न तो कारीगर आएगा और न ही कोई लोहार आएगा। उनको हमें ही काटना होगा। हथकड़ी भी हमें ही काटनी है। अन्य कोई काटने में समर्थ नहीं होगा। जब तक वे नहीं कटेंगी, तब तक हमें अपना पुरुषार्थ जारी रखना पड़ेगा। अतः तजकर निंदा, झूठ, बुराई, गले मिले सब भाई-भाई...

एक बार ये तीनों दुर्गुण हटें तो हमारे पर लगी कर्मों की बेड़ियाँ शिथिल हो पाएंगी।

भगवान महावीर से पूछा गया कि बंधन को शिथिल कैसे किया जा सकता है?

भगवान ने उत्तर दिया कि यदि 18 पापों से निवृत्ति होती है, हिंसा-झूठ से निवृत्ति होती है तो पाप शिथिल होने लगता है। इसके विपरीत मोह का पोषण करते रहेंगे तो पापकर्म को शिथिल नहीं कर पाएंगे। अग्नि में ईंधन डालने पर अग्नि प्रज्वलित होती है। थोड़ा-थोड़ा ईंधन डालते रहेंगे तो अग्नि जलती रहेगी। वह बुझेगी नहीं। एक दिन, दो दिन, पाँच दिन, दस दिन तक भी नहीं बुझेगी। यदि अग्नि प्रज्वलित रखनी है तो थोड़ा-थोड़ा ईंधन डालते रहना होगा। ईंधन डालते जाएंगे तो वह प्रज्वलित होती रहेगी। कई लोग नवरात्रि के दिनों में अखंड ज्योत जलाया करते हैं। अखंड ज्योत का दीपक बुझने नहीं देते। उसमें जैसे ही तेल कम होता है और तेल डाल दिया जाता है। ज्योत जलाने वाले की मान्यता के अनुसार अखंड रहेगी, अर्थात् बुझेगी नहीं। हम चाहें तो वर्षों तक उस अग्नि में ईंधन डालते रहेंगे और वह जलती रहेगी। अग्नि प्रज्वलित होती रहेगी, वह बुझेगी नहीं।

वैसे ही जब तक मोह कर्म का पोषण करते रहेंगे, उसको खुराक देते रहेंगे, तब तक वह शिथिल नहीं होगा। मोह शिथिल करने के लिए निंदा, झूठ, बुराई को छोड़ना होगा। निंदा, झूठ और बुराई सारे अपराधों की जड़ है। सारे दुर्गुणों के सरदार हैं। ये तीनों पापों को शिथिल होने से रोकने वाले हैं और आत्मा को अमंगल बनाने वाले हैं। निंदा, आत्मगुणों की बहुत क्षति करती है। वह भीतर ही भीतर उनको जला देती है। उसके कारण हम कभी किसी की अच्छाइयाँ देखने के लिए तैयार नहीं हो पाते। निंदा करने में बहुत रस आता है। निंदा सुनने में भी बड़ा रस आता है। किसी का निंदा पुराण चल जाए तो रात सहज रूप से जागरण में बिताई जा सकती है। उस समय नींद नहीं आएगी, बल्कि मन चाहेगा कि थोड़ी और निंदा हो जाए। थोड़ी और निंदा चले। निंदा का परिणाम बहुत भयंकर होता है।

एक बात ध्यान में रखें कि वैसा कोई कार्य नहीं करना है, जिसका परिणाम अवसादजनक हो। जिसका रिजल्ट अवसाद के रूप में मिले। निंदा का परिणाम अवसाद देने वाला है। खिन्नता देने वाला है, इसलिए हमें निंदा नहीं करनी है। बहुत कम लोग होंगे जो निंदा करने या सुनने से बचकर रहते हों। मैं तो जहाँ तक विचार करता हूँ वहाँ तक लगता है कि यदि निंदा की बात होती है तो हमारे कान उसे सुनने के लिए तैयार हो जाते हैं। दूसरी बातों को सुनने के

लिए तैयार हो या नहीं हो, किंतु निंदा के लिए कान खड़े हो जाते हैं। जिसको कम सुनाई देता है उस आदमी को भी निंदा की बात सुनाई देने लगती है। वह कहता है कि एक बार वापस बोलना तो वह भी सुनने के लिए आतुर होता है। अच्छी बात सुनी या नहीं, किंतु निंदा की बात सुनने के लिए वह भी तैयार हो जाता है।

लगभग 20 वर्ष पहले की बात है। मैं सांगरिया मंडी में था। जब वहाँ से मेरे विहार की तैयारी चल रही थी, तो मैंने लोगों से कहा कि धर्मस्थान आबाद रहना चाहिए। धर्म स्थानों के लिए पैसे तो बहुत बर्बाद होते है। बर्बाद होते हैं क्या?

(श्रोतागण- नहीं, बर्बाद नहीं होते। वह पैसे सही जगह काम लिए जाते हैं। पैसे सफल होते हैं, सार्थक होते हैं, उपयोग में आते हैं)

आपने अच्छी तरह खोजबीन की? धर्मस्थानों की हालत देखी कि कितने कबूतर जातीय पक्षी मरे हुए पड़े मिलते हैं? कितने जीवों की हिंसा होती है? आपने उन स्थानों को देखा कि उनका रख-रखाव सही है या नहीं? उसका सही उपयोग हो रहा है या नहीं हो रहा है?

धर्मस्थान बन गए, किंतु धर्म करने वालों को कहाँ से लाएं। पैसे हैं इसलिए धर्मस्थान बन जाते हैं। पैसे हैं तो धर्म स्थान बना देंगे कि हमारा नाम लेंगे। नाम हमारा स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा। सोने से नहीं भी लिखा जाएगा तो सोने के रंग से तो लिखा जाएगा।

सोने से लिखा जाएगा या रंग से लिखा जाएगा?

(श्रोतागण- रंग से लिखा जाएगा)

गोल्ड तो नहीं है, किंतु गोल्डन रंग से नाम लिखते हैं।

(लोगों ने कहा कि सोने से नाम लिखेंगे तो नाम ही गायब हो जाएगा। गोल्डन कलर से लिखते हैं तो वह नाम पड़ा रहता है)

इसका मतलब क्या है?

इसका मतलब यह हुआ कि हमको नकली चीज ज्यादा प्रिय है। तभी तो सोने के अक्षरों से नहीं, नकली कलर से लिखा जाता है। हमें नकली चीजें बनाते रहना है और हमें बने रहना है। भले नकली ही क्यों न हो पर स्थानक बन जाना है, किंतु धर्म स्थान का उपयोग करने वाले कितने मिलेंगे? उपयोग करने

वाले कितने मिलते हैं?

(श्रोतागण- कम ही मिलेंगे)

शहरों में 10, 15, 20 लोग मिल जाएंगे। ज्यादा मिल गए तो बड़ी बात है। छोटे गाँवों में कुछ ज्यादा लोग धर्म स्थान में जाकर धर्मध्यान कर लें अलग बात है, बाकी तो बहुत कम मिलते हैं।

सांगरिया मंडी की बात चल रही थी। सांगरिया मंडी में मैंने कहा कि धर्मस्थान आबाद रहना चाहिए। निरंतर सामायिक करेंगे तो धर्मस्थान खुलेगा। नहीं तो ताले लग जाएंगे। कभी साधु-साध्वी आएंगे तो फिर झाड़ा-झपटा होगा। एक बार संतों को सूचना दी कि जहाँ भी आप विचरण करें, वहाँ की रिपोर्ट भेजनी है।

उस समय गौतम मुनि जी का विचरण श्री धर्मेश मुनि जी म.सा. के साथ हो रहा था। उन्होंने रिपोर्ट भिजवाई कि संत अमुक गाँव में पहुँचे। वहाँ के लोगों को जब मालूम पड़ा कि म.सा. पधार गए तो लोगों में खलखली मच गई कि अरे-अरे चाबी लाओ, चाबी लाओ। सब इधर-उधर दौड़े और कहने लगे बावजी, चाबी ला रहे हैं, थोड़ा रुकना। लोग दौड़ते रहे। कभी किसी के पास गये तो कभी किसी के पास। बहुत दौड़े तो कहीं जाकर चाबी मिली। चाबी मिली और कहने लगे बावजी थोड़ा झाड़ू लगाना है। झाड़ा-झपटा शुरू हुआ तो संतों ने कहा कि रहने दो। आप जितना आरंभ करोगे उतना हमें रुकना नहीं है। इससे अच्छा हम किसी दूसरे स्थान पर रुक जाएंगे। वे दूसरे स्थान पर रुके। उन्होंने रिपोर्ट ऐसी भाषा में बनाई जो आसानी से समझ आ सके। कहने का आशय है कि क्या फायदा हुआ धर्मस्थान का? धर्मस्थान में धर्म ध्यान होता रहे तो उसका उपयोग है अन्यथा आरंभ का काम है।

मैं सांगरिया में प्रत्याख्यान करवाने लगा तो एक भाई ने कहा कि गुरुदेव मैं धर्म स्थान में सामायिक नहीं करूंगा। मैंने कहा, क्यों? क्या आपका घर दूर है, तो उसने कहा- नहीं! मेरा घर तो नजदीक ही है। हकीकत बात यह है कि यहाँ निंदा बहुत होती है। यहाँ लोग सामायिक और धर्म ध्यान करने के लिए बैठते हैं, किंतु वे एक-दूसरे की निंदा चालू कर देते हैं।

मैंने कहा कि ठहरो, रुको। यह बात आप सुनी-सुनाई कर रहे हो या आपने अपने कानों से सुनी तो उसने कहा कि मैंने अपने कानों से सुनी। मैंने

कहा कि आपने अपने कानों को खुला ही क्यों रखा? मैंने पूछा कि दूसरे से सुना या अपने कानों से सुना तो उसने बड़े गर्व से कहा कि मैंने अपने कानों से सुना। मैंने जब कहा कि आपने क्यों सुना। स्थानक में दूसरी जगह बहुत है। आप वहाँ से उठकर चले जाते। अब उनके पास उत्तर नहीं था। यह नानेश रत्नम् इतना बड़ा पड़ा है कहीं भी बैठा जा सकता है। वहीं बैठे रहना कोई जरूरी नहीं है। सामायिक कहीं भी हो सकती है। कहीं कोने में भी हो सकती है। जहाँ निंदा हो रही है वहाँ बैठना जरूरी नहीं है, पर जब निंदा में रस आ रहा होता है तो वहाँ से उठ पाना भी कठिन लगता है। अन्यथा वहाँ बैठने की कोई आवश्यकता नहीं। कहीं और बैठकर धर्म ध्यान किया जा सकता है।

मैंने वहाँ पर प्रत्याख्यान कराया। मैंने कहा कि बोलने वालों का मुँह पकड़ना अपने वश की बात नहीं है, किंतु सुनना न सुनना अपने वश में है। आप चाहो तो सुन सकते हो नहीं तो वहाँ से उठ के जा सकते हो। मैंने वहाँ पर कहा कि यह नियम ले लो कि किसी की निंदा सुननी नहीं। अब निंदा करने वाला कहाँ करेगा। अगर किसी की निंदा करनी ही है तो वह दीवार के आगे जाकर सुना दे।

निंदा किसको सुनाई जाती है?

(श्रोतागण- निंदा सुनने वालों को सुनाई जाती है)

निंदा सुनने वाला जब सुनता है तो सुनाने वाले का मन निंदा सुनाने के लिए बढ़ता है। यदि सुनने वाला उत्सुक नहीं रहे, वह उबासियाँ ले, उसे नींद की झपकी आने लगे तो सुनाने वाले का मन भी खट्टा हो जाएगा। इसलिए मैंने वहाँ प्रत्याख्यान कराया कि निंदा सुननी नहीं है।

यह भी बहुत बड़ी तपस्या है। मासखमण करना आसान हो सकता है, किंतु निंदा का त्याग करना बहुत कठिन है। 30 दिन तक निंदा का त्याग करना कि निंदा सुननी नहीं और निंदा करनी नहीं।

कौन-कौन तैयार है 30 दिन के लिए निंदा का त्याग करने को? हाथ खड़े करो। कौन तैयार है बताओ? सोच-समझकर हाथ खड़े करना। 30 दिन का त्याग करना है। वैसे तीस दिन ही नहीं, जीवनपर्यंत निंदा का त्याग करना चाहिए। पहले सात दिनों का प्रयोग करें। उसके बाद 30 दिनों तक निंदा नहीं करें।

बहनें क्या करेंगी?

बहनों को एक घंटा निंदा करने के लिए छूट है। आप सब हँस रहे हो। इसमें हँसने की क्या बात है। आप इतने खुश हो रहे हो कि एक घंटा दिया वह बहुत है, क्योंकि सामायिक में बैठे निंदा करेंगे तो सामायिक भी हो जाएगी और लोककथा भी हो जाएगी। तो ठीक है एक घंटा दिया जाए आपको।

(श्रोतागण- नहीं ऐसा नहीं है)

तो कितना घंटा दूं? आधा घंटा ठीक रहेगा! समझ लेना छूट में लूट है। जितने लोग खुले-खुले बैठे हैं, वे सब भी त्याग कर लें तो अच्छी बात है। बाकी तो लूट ही लूट है। छूट ही छूट है। जब निंदा, झूठ, बुराई तज देंगे, तब कहना नहीं पड़ेगा कि गले मिलें सब भाई-भाई। पर यह निंदा का मनभावन रस छूटता कहाँ है! आज वाट्सएप का युग है। एक बात करो, उसे फैलते हुए देर नहीं लगेगी। ऐसी बातें बहुत बार विवाद का कारण भी बनती हैं।

पूज्य गुरुदेव जयपुर पधारे थे। वहीं होली चातुर्मासी का कार्यक्रम था। सुबोध कॉलेज के चुनाव को लेकर वहाँ संघ में एक-दूसरे के प्रति तनाव था। तनाव ही नहीं था कोर्ट-कचहरी भी चालू थी। कोर्ट-कचहरी का रिजल्ट कई वर्षों में मिलेगा। वह कोई राजनैतिक पार्टी का केस नहीं है जिसको सुप्रीम कोर्ट हाथों-हाथ सलटा दे। वह तो दो पक्षों के बीच का तनाव था। ऐसा केस कई वर्षों तक चलता रहेगा। आगे खिंचता रहेगा। केस करने वाले जब तक नहीं थकते, तब तक वे जल्दी से समझौता भी नहीं करते। कोर्ट दोनों पक्षों को मौका देता है कि आपस में समझौता कर लो। उसी में फायदा है क्योंकि वहाँ तो आप जाते रहोगे और पेशी पड़ती रहेगी।

दोनों पक्षों ने मिलकर कहा कि गुरुदेव आप हमें निर्णय सुना दो। आप जो निर्णय सुनाएंगे वह हमें मंजूर है। आपका जो भी निर्णय होगा वह हम स्वीकार कर लेंगे। उन लोगों ने कई बड़े-बड़े संतों के नाम बताते हुए कहा कि वे पधारे, वे पधारे, किंतु हमारा फैसला नहीं हुआ। अब आप सुना दो फैसला, हम मान लेंगे।

गुरुदेव ने कहा कि केवल बातों की बातें होती हैं तो उसको आपस में मिलकर सलटा देते हैं। यदि आपको सलटारा करना है तो आप किसी तीसरे-चौथे आदमी की अपेक्षा क्यों करते हो। तीसरे आदमी को पता है क्या कि आपकी क्या स्थिति है और क्या नहीं है? उन्होंने कहा कि ठीक है।

जैसे ही गुरुदेव ने ऐसा कहा, वैसे ही वे एक कोने में बैठकर आपस में बातें करने लगे। बातें होने के बाद उन लोगों ने आकर गुरुदेव से कहा कि गुरुदेव हमारी 60 प्रतिशत समस्याओं का समाधान हो गया।

विवाद क्या था?

केवल सुनी-सुनाई बातें। 'ए' कहता है कि तुम मेरे विषय में ऐसा-ऐसा बोले तो 'बी' कहता है मैंने सुना है कि तुम मेरे लिए ऐसा-ऐसा बोले। परस्पर बात करने से स्पष्ट हो गया कि बहुत-सी बातें भ्रामक थीं। सुनी-सुनाई बातों से बहुत बार मन में ऐसा आ जाता है कि अमुक व्यक्ति मेरे लिए ऐसा सोचता है, ऐसा कह रहा है। इस प्रकार मन में विषाद पनप जाता है।

यह बहुत विचित्र बात है कि हम अच्छाइयों पर जल्दी विश्वास नहीं करते हैं, किंतु बुराइयों पर जल्दी विश्वास कर लेते हैं। बुराइयाँ मन में जल्दी असर कर देती हैं। यदि मेरे मन में बुराइयाँ नहीं हैं तो मेरे को चोट नहीं लगनी चाहिए, किंतु मेरे मन में बुराई है तो वह मेरे को चोट कर जाती है। क्यों चोट कर जाती है, बात समझ में आई या नहीं आती है। यदि मन बुराई में है तो चोट अवश्य लगेगी।

आपने कभी अपने शरीर पर मिर्ची लगा के देखी? मिर्ची या नमक कभी आपके हाथ की चमड़ी पर लग जाये तो शरीर में थोड़ी जलन होगी, छींक आएगी। कभी अपनी चमड़ी उधेड़ कर उस जगह पर मिर्ची और नमक लगाकर देखना कि कैसा लगेगा। प्रयोग करके देखना।

(श्रोतागण- संभव ही नहीं होगा)

एक बार चमड़ी सहित मिर्ची लगाना, दूसरी बार थोड़ी चमड़ी को उधेड़ कर या चमड़ी को खींचकर नई चमड़ी पर अच्छी तरह से रगड़ के लगाना। हाथ थमा हुआ रह जाए। यदि मिर्ची लगाकर हाथ को खंभे से बाँध दिया जाये तो शायद उछल-कूद मचाने लग जाए। वैसी उछल-कूद चालू हो जाएगी, जैसी बंदर भी नहीं करता होगा। उस समय हाथ एक जगह स्थिर रहना मुश्किल है। कांई समझ में आई बात!

ये बातें मैं क्यों बोल रहा हूँ आपको क्या समझ में आई? इसका मतलब क्या निकलता है?

इसका मतलब है कि दूसरों के प्रति बुराई के भाव छिपे हुए होंगे तो

हमारे भीतर घाव रूप होंगे। उस स्थिति में हमें चोट लगती है, हमें जलन होती है, दर्द होता है। यदि हमारे भीतर घाव होता है तो चोट लगती है, जलन होती है, दर्द होता है। यदि भीतर घाव नहीं होते तो हमें दर्द होता ही नहीं, जलन नहीं होती और भीतर चोट भी नहीं लगती।

जिसको अल्सर की बीमारी होती है वह कोई खट्टी चीज खाये तो उसको जलन होगी। उसको ऊपर से कौन-सी गोली खानी पड़ती है? किसी जमाने में डाइजिन की गोली चलती होगी। अब तो हाई पॉवर गोलियाँ आ गई हैं। वह गोली खानी पड़ेगी, जो एसिड को शांत करती है। जिसके भीतर घाव है उसने खट्टा खा लिया तो वह एसिड पैदा करेगा। एसिड शरीर में रहे हुए घाव में जलन करने वाला बन जाएगा। वैसे ही वह बुराई हमें दर्द देने वाली होती है। हमको लगता है कि अमुक हमारी बुराई क्यों करता है? इसकी दवा है अपने भीतर बसे निंदा, झूठ और बुराई को दूर करना।

निंदा, झूठ, बुराई हट जाएगी तो मंगल बन जाएंगे। भीतर के बहुत सारे घाव समाप्त हो जाएंगे। उस स्थिति में कोई हमारे बारे में कितनी भी झूठी बातें करें, कितनी भी हमारी बुराई करे, हमपर उसका कोई असर नहीं हो पाएगा।

यह हमने बहुत बार सुना है कि महावीर भगवान को चंडकौशिक ने डस लिया। उसने पहले आँखों से विष का प्रक्षेप किया। इससे भगवान महावीर को कुछ नहीं हुआ। ऐसा देखकर चंडकौशिक का गुस्सा और भड़का। उसके भीतर जहर व्याप्त हुआ और उसने भगवान को डस लिया। भगवान के पैर के अँगूठे को डस लिया। डसने के बाद चंडकौशिक ऊपर देखता है तो भगवान महावीर वैसे ही अडोल खड़े हैं। जैसे उनको कुछ हुआ ही नहीं। तो उसने सोचा कि मैं हार कैसे जाऊँ! वह फिर फुफकारा।

तब भगवान महावीर ने कहा कि चंडकौशिक सम्बोधि को प्राप्त करो। यह गुस्सा, यह जहर जितना फैलाओगे उतना ही फैलता जाएगा। इसका कोई अंत नहीं है। इसका समाधान नहीं है। यह समस्याएँ पैदा करता रहेगा। इस गुस्से के कारण ही तुम चंडकौशिक बने हो। तुम्हारा स्वभाव गुस्से का नहीं है। तुम्हारा स्वभाव समभाव का है। समाधान का है।

भगवान के इस बोध से चंडकौशिक को पूर्व जाति का ज्ञान हुआ।

वह अपनी पिछली अवस्थाओं को जानने लगा यानी उसको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह देखने लगा कि मैं पहले तापस था। उसके पहले देवगति में और उसके पहले साधु। साधु के भव में गुस्सा किया, मरकर देवलोक में गया। वहाँ से चवकर तापस बना। वहाँ मैं बहुत गुस्से में रहता था। वहाँ मेरे तप क्षेत्र में कोई मेरे से विपरीत कुछ करता तो मैं उसको भस्म कर देता। वहाँ से मरकर मैं सर्प योनि में आया हूँ।

यह किसका परिणाम था?

यह क्रोध का परिणाम था। इसलिए मैंने कहा कि ऐसा कोई कार्य नहीं करें जिसका परिणाम इस रूप में मिले। वह कार्य करना चाहिए कि स्वयं खुश रहें और सबको प्रसन्नता देने वाले बनें। इस तरह का कार्य बार-बार करना चाहिए। जब-जब मौका मिले तब-तब कार्य करना चाहिए, जिससे खुशी मिले। जो कार्य भीतर खिन्नता पैदा करे वह नहीं करना है।

सांगरिया में मैंने प्रतिज्ञा करवा दी। लोगों को पच्चक्खाण करा दिए। जयपुर के लोग भी आचार्य पूज्य गुरुदेव के पास आये और बोले कि हमारा 60 प्रतिशत झगड़ा मिट गया। थोड़ा रहा है, अब आप निर्णय दे दो तो आचार्यश्री ने कहा कि नहीं, आप किसी एक व्यक्ति को चुन लो जो दोनों तरफ की बातें सुन लेगा। वह जो निर्णय दे आप उसको मंजूर कर लेना। लोगों ने आचार्यश्री के निर्देशानुसार एक एडवोकेट को चुना। उसने दोनों पक्षों की बातें सुनी। उसके पश्चात् उसने जो निर्णय दिया उसे दोनों पक्षों ने स्वीकार किया। उससे दोनों पक्षों का आपस में समझौता हो गया। उस पर हस्ताक्षर हो गया। लोग आकर गुरुदेव से निवेदन करने लगे कि अब आपको जयपुर में ही चातुर्मास करना पड़ेगा। गुरुदेव ने कहा कि अभी कुछ नहीं कह सकते। होली चातुर्मास के बाद बता सकते हैं कि आगे क्या होता है, किंतु उन लोगों ने जयपुर में चातुर्मास के लिए जोर पकड़ लिया कि आपको यहीं चातुर्मास करना पड़ेगा। पहले हम अलग-अलग थे, अब एक हो गये हैं। अब हम धर्म ध्यान से वंचित नहीं रहेंगे। एकजुट होकर धर्मध्यान करेंगे।

सड़क पर डिवाइडर होता है। उसके दोनों तरफ रोड होती है। उस रोड पर चलने वाले वाहन एक तरफ जाते हैं और दूसरी तरफ चलने वाले वाहन दूसरी तरफ। दोनों के बीच में डिवाइडर होता है। ये तो सबको पता ही होगा कि

इधर की गाड़ी उधर नहीं जा सकती है और उधर की गाड़ी इधर नहीं आ सकती। दोनों गाड़ियाँ नजदीक से गुजरती हैं, पर डिवाइडर के कारण उनमें दूरी बनी रहती है। जैसे सड़क के बीच में डिवाइडर होता है, वैसे ही हमारे बीच में दरार पड़ जाती है। वह डिवाइडर का काम करती है। जरूरी नहीं है कि पास-पास में बैठे हों तो डिवाइडर नहीं हो। जैसे गौतम जी चौधरी और रांका जी पास-पास बैठे हैं, उनके बीच कोई डिवाइडर नहीं है। उनके भीतर दरारें होंगी तो पता नहीं। बहनों की तरफ डिवाइडर है। डिवाइडर है या नहीं है?

(श्रोतागण- डिवाइडर है)

वह मन ही मन में बना रहता है। जब तक वह बना रहता है तब तक दूरियाँ बनी रहती हैं।

तजकर निंदा, झूठ, बुराई...

ये तीनों चीजें छोड़ देंगे तो गले मिले सब भाई-भाई शब्द कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी। गले मिल गये, लेकिन बीच में दरार पड़ी हुई है तो गले मिलना सार्थक नहीं होगा। जैसे राम और भरत गले मिले, वैसे मिलना बहुत कठिन है।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ जाय

कैसा है हमारा मन! कभी खट्टा पड़ जाता है और कभी बहुत जुड़ जाता है। क्या करें बातें बहुत याद आ जाती हैं। नाना गुरु रायपुर में चातुर्मास कर रहे थे। उस समय मुसलमान समाज का ताजिया निकला। सदर बाजार रायपुर से गुजर रहा था। सड़क पर आचार्य पूज्य नानालाल जी के नाम के बैनर लगे हुए थे। ताजिया सड़क से निकल रहा था। किसी भाई ने बैनर को फाड़ दिया। बैनर फाड़ना हुआ कि वैद जी (भीकमचंद जी) आगे आये और ताजियों के सामने सो गये कि ताजिया आगे नहीं बढ़े। उन्होंने कहा कि मेरे गुरु की तौहीन कर दी। वहाँ एकदम से तहलका मच गया, पुलिस सक्रिय हो गई। पुलिस वाले आ गये कि क्या हुआ। वैद जी ने कहा कि इन्होंने मेरे गुरु का बैनर फाड़ दिया तो पुलिस वालों ने कहा कि तुम्हारे गुरु कहाँ विराज रहे हैं? वैद जी ने कहा कि हमारे गुरु सुराणा भवन में विराज रहे हैं। पुलिस वालों ने कहा कि हम उनसे क्षमायाचना करेंगे। फिलहाल किसी तरह ताजिया निकाला गया।

दूसरे दिन पुलिस महकमे के पदाधिकारी डीआईजी, डीएसपी जो भी होते हैं वे सभी लोग वहाँ पहुँच गये। मुसलमानों के मुखिया लोग नया बैनर लाये थे। वे व्याख्यान में खड़े होकर कहते हैं कि गुरुदेव हम आपसे क्षमायाचना करते हैं। यह नया बैनर है, आप इसे स्वीकार करें। उन्होंने यह भी कहा कि हमारे बच्चों ने आपकी तौहीन कर दी, इसलिए हम आपसे क्षमायाचना करते हैं। बैनर के बदले आपको नया बैनर सुपुर्द करते हैं।

फिर गुरुदेव की देशना चालू हुई। गुरुदेव ने उसी बात पर फरमाया कि-

ताँबा सोना सुघड़ नर, टूटे जुड़ै सौ बार।
मूरख हाँडा कुम्हार का, जुड़े न दूजी बार।।

सोने का आभूषण टूट जाता है तो सोनार उसे वापस जोड़ देता है। अच्छा आदमी भी जुड़ जाता है। सोना एक बार नहीं, सौ बार वापस जुड़ जाता है, किंतु कुम्हार का हाँडा टूटता है तो वापस जुड़ नहीं पाता है। आचार्यश्री बहुत अच्छी तरह से व्याख्यान दे रहे थे कि मैं यहाँ दिलों को तोड़ने के लिए नहीं अपितु जोड़ने के लिए आया हूँ। उनकी देशना सुनकर पुलिस अधिकारियों ने सोचा कि आचार्यश्री की देशना जन-जन में प्रीति बढ़ाने वाली है। प्रेम बढ़ाने वाली है। उन्हें लगा कि यहाँ पर इतना शोर होना ठीक नहीं है। यह सोचकर उन्होंने वहाँ के ट्रैफिक को वन-वे बना दिया। यानी जब तक व्याख्यान चलेगा तब तक वन-वे रहेगा।

कुछ दिन बाद गुरुदेव ने कहा कि अब शोर इतना कम कैसे हो रहा है तो लोगों ने कहा कि पुलिस अधिकारियों ने वन-वे कर दिया। यह सुनकर गुरुदेव ने कहा कि देखो भाई अपने कारण से दूसरों को तकलीफ नहीं होनी चाहिए। हमारे कारण से कोई भी परेशान नहीं होना चाहिए।

मुसलमान परिवार ने नया बैनर लाकर दिया तो आचार्यदेव ने कहा कि मुझे बैनर की जरूरत नहीं है। बैनर के फट जाने से मैं नहीं फट गया। कोई बैनर लगाये या नहीं लगाये, मुझे क्या फर्क पड़ता है। ये होती है समझ। ये उत्तम सोच होती है।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. थलीप्रान्त में विचरण कर रहे थे तो किसी भाई ने कहा कि ''मैं थारी मुंहपत्ती खींच लेवा।'' इस पर आचार्यश्री

ने फरमाया कि खींच लो भाई, हम थारे घरां सु कपड़ा लाया फिर ले आएंगे। उन्होंने कहा कि हमें क्या फर्क पड़ता है। इससे भलीभाँति समझा जा सकता है कि भीतर घाव नहीं होगा तो ऐसे वाकये दर्द पैदा नहीं करेंगे। पर हाँ, यदि भीतर घाव होंगे तो दर्द पैदा करेंगे। भीतर घाव नहीं होंगे तो गर्व पैदा नहीं होगा।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार...

नमिराज ऋषि दाह से, ज्वर से जर्जर हो रहे थे। उनका शरीर तप रहा था। वे बहुत असुविधा महसूस कर रहे थे, किंतु जैसे ही ज्ञानकिरण जगी, ज्ञानकिरण प्रकट हुई, उनका सारा दु:ख-दर्द दूर हो गया। वे शांत हो गए। उन्हें ताप नहीं लग रहा। क्योंकि भीतर के भाव पर मरहम पट्टी हो गई। इस प्रकार जब अपने मन को समझा लें तो दुनिया समझ सकती है। यदि मन को नहीं समझा सके तो किसी भी व्यक्ति को समझाना बहुत कठिन होता है। जब तक हमारा मन नहीं समझे, तब तक दूसरे को क्या समझ पाएंगे। जब तक हमारा मन नहीं समझेगा, तब तक दुनिया को समझाने की आवश्यकता नहीं है। खुद को समझना है या नहीं? अपना मन यदि समझने को तैयार है तो सारी दुनिया को समझाया जा सकता है।

आज का दिन ए-वन इलेवन एकासन का है। ब्यावर वाले बड़े धर्मसंकट से गुजर रहे होंगे।

(व्याख्यान में उपस्थित कई व्यक्ति एक साथ बोल उठते हैं- ऐसा नहीं है)

चेहरे पर वह चमक नजर नहीं आ रही जो सामायिक सघोष के समय थी। वह चमक मुझे नजर नहीं आ रही है।

सामायिक सघोष की तरह यदि आपका हृदय बुलंद है तो अच्छी बात है। एक और भी कार्यक्रम दिया जा सकता है। आप परेशान नहीं हो रहे हो न कि बावजी बार-बार परेशान कर रहे हैं।

(श्रोतागण- ऐसी बात नहीं है)

तो आगे आसोज की पूनम आ रही है। सामने शरद पूर्णिमा आ रही है...

(बात पूरी होने से पहले किसी श्रावक ने कहा कि 20 तारीख को है)

उस दिन क्या करना है बोलो?

(श्रावकों ने कहा कि भगवन् जो आपका आदेश होगा, जो आप कहेंगे उसी पर हम चलेंगे)

आप लोगों को 15-15 सामायिक करनी है। बहनों की 15-15 सामायिक अलग और भाइयों की 15-15 सामायिक अलग। ये तो बहुत आसान है। पहले 25 रंगी हो गई, तो अब परेशानी की कोई बात नहीं है। खाना खाना हो तो नीवी का तप करें। अब तो घाटियाँ पार कर ली हैं। अब क्या डर है। अर्थात् अब कोई डर नहीं है।

तो इस असोज पूनम, शरद पूनम को 15-15 सामायिक का कार्यक्रम होगा।

(एक व्यक्ति ने कहा कि भगवन् रात को करना है या दिन में करना है)

समय खुद निर्धारित कर लो। जो आप सबके लिए सुटेबल हो, जिस समय आपको मौका मिले, वह समय रख लो। जो समय सबके लिए अनुकूल हो, जैसा भी आप सबके लिए जमे। 12 घंटे का काम है। जैसा भी आपका मन बने।

बहनों के लिए 15-15 सामायिक अलग और भाइयों के लिए 15-15 अलग। अपने आपको निंदा, झूठ और बुराई से हटाने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से भीतर के घाव पर मरहम पट्टी होगी, जिससे मिर्ची नहीं लगेगी, दर्द नहीं होगा। वैक्सीनेशन यदि हो गया तो कोरोना नहीं होगा। जैसा कि डॉक्टर कहते हैं कोरोना की बीमारी नहीं लगेगी। ऐसा अपना लक्ष्य बनाएंगे तो धन्य होंगे। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

10 अक्टूबर, 2021

10

जैनत्व की यात्रा जीतने की

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे...

वासुपूज्य जिन स्वामी क्या है?

वैसे तो 'जिन' शब्द में केवल दो अक्षर हैं, किंतु इन दो अक्षरों में तीन भुवन पर विजय प्राप्त करने की ताकत है।

प्रश्न हो सकता है कि किसको जीतने वाला? जीतने की बात करते हैं, तो सामने एक बात खड़ी होती है कि जीतें किसको?

(श्रोतागण- राग-द्वेष, क्रोध, मान-माया, लोभ को जीतें)

हाँ, राग-द्वेष को जीतना है। राग-द्वेष को जीतना है, किंतु जीतें तब मालूम पड़े। कभी-कभी आप कहते हैं कि जो दूसरों को जीतता है, वह वीर होता है और जो स्वयं को जीतता है, वह महावीर होता है। अपने आपको क्या जीतें, कैसे जीतें। अपने आप तो आत्मा का रूप है। राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ अपने नहीं हैं। इन सब ने मेरे घर में घुसकर अपना आसन जमा लिया है। इन्होंने आसन जमा लिया और हमने उनको आशियाना दे दिया। उन्हें जगह दे दी। वे अपने बनकर रह गए। इनकी स्थिति कुछ वैसी हो गई कि मान न मान मैं तेरा मेहमान। वे हमें यह दिखाते हैं कि हम तो आपके ही हैं। हम भिन्न नहीं हैं, किंतु हकीकत में वे न तो कभी अपने हुए न कभी होने वाले हैं, बल्कि उनके लिए या उनके कारण हमारी आत्मा बहुत दुःख, कष्ट, कठिनाइयाँ झेलती है।

किसके कारण से कठिनाइयाँ झेलती हैं?

(श्रोतागण- राग-द्वेष, मोह, माया, लोभ के कारण से)

हाँ, इन्हीं की वजह से आत्मा कठिनाइयाँ झेलती है। ज्ञाता-द्रष्टा भाव

आत्मा के अपने हैं। ज्ञाता-द्रष्टा यानी जानना-देखना। जब आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा भाव में रहती है तो उसे कठिनाइयाँ घेर नहीं पातीं, किंतु जैसे ही राग-द्वेष की परिणति में आत्मा आती है, कठिनाइयों से घिर जाती है। वे कठिनाइयाँ कर्मों के आधार पर हो रही हैं। वे कर्म हमने ही किए। हमने वे कर्म किए तो राग-द्वेष के अधीन होकर किए। यदि हम राग-द्वेष से छूट गए होते तो न ही ये कर्म होते और न मान-माया, लोभ और मोह होता। जब तक राग-द्वेष, क्रोध, माया, लोभ बने रहेंगे तब तक जन्म-मरण के चक्र चलते रहेंगे।

सी.बी.आई. कहाँ किस प्रकार से घुस जाती है, किसी को पता नहीं चलता। कई बार व्यक्ति को भी पता नहीं चलता। एक घटना सुनी थी हमने कि कर्नाटक में एक व्यक्ति को पकड़ना था। सी.बी.आई. का एक व्यक्ति वहाँ जाकर नौकरी करता है। वह पूरे समर्पण के साथ, पूरी भावना से काम करता है। वह पूरे मन से काम कर रहा है, जोरदार काम कर रहा है, किंतु उसकी निगाह अन्य पर भी लगी हुई है। उसकी नजर एक-एक व्यक्ति पर है कि कौन आ रहा है, कौन जा रहा है। वह देख रहा है कि कौन क्या कर रहा है। वहाँ क्या हो रहा है। वहाँ क्या कुछ चल रहा है। लंबे समय तक वहाँ रहकर वह गोपनीय बातों को हस्तगत करता है। सारी बातें जान लेने के बाद सी.बी.आई. उस पर अटैक करती है।

जैसे सी.बी.आई. का व्यक्ति वहाँ घुसा हुआ था, वैसे ही राग-द्वेष हमारे भीतर घुसे हुए हैं। वे हेतु बनकर रह रहे हैं। ऐसे ही संसार का चक्र चलता रहता है और हमारी आत्मा का जन्म-मरण होता रहता है। राग-द्वेष, क्रोध, मान-माया, मोह, लोभ को जीतना ही सच्ची जीत है। किसी व्यक्ति को जीतना कोई बड़ी बात नहीं है। किसी की कमजोरी से उसे जीता जा सकता है। अपने से ताकतवर को भी जीता जा सकता है। अपने से ज्यादा शक्तिशाली को भी जीता जा सकता है। कैसे?

सामने वाला बेपरवाह है, वह सजग नहीं है तो अपने से सशक्त शत्रु को भी जीत सकते हैं। अपने से बलशाली को भी जीत सकते हैं, किंतु वह जीत ज्यादा मायने नहीं रखती। क्रोध, मान-माया, लोभ को जीतना बड़ी बात होती है। जो राग-द्वेष, क्रोध, मान-माया, लोभ रूपी कषायों को जीत लेता है, वह जिन होता है। वह जिनेश्वर होता है। वह तीर्थंकर होता है या अरिहंत होता है।

वह तीन भुवन का स्वामी होता है।

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी...

वासुपूज्य भगवान ने अपने राग-द्वेष, क्रोध, मान-माया, लोभ को जीत लिया। वे जिन बन गए। तीर्थंकर बन गए। जब वे तीर्थंकर बन गए, जिन बन गए तब भगवान से पूछा गया कि भगवान! आप तीन भुवन के स्वामी बन गए। उसके नाथ बन गए। हमें भी उपाय बताइए कि हम भी तीन भुवन के स्वामी बन सकें।

सभी चाहते हैं कि मुझे अधिकार मिल जाए। मुझे ओहदा मिल जाए। मुझे पद मिल जाए। अधिकार मिल भी जाएगा। ओहदा या पद भी मिल जाए, किंतु उसकी गरिमा को बनाए रखने के लिए हमारे पास वैसी सोच-समझ है या नहीं है! शास्त्रकार बताते हैं कि किसी साधु को स्वतंत्र विचरण करना कब कल्पता है। यहाँ स्वतंत्र का मतलब अकेले की बात नहीं है। सिंघाड़ापति बनकर विचरण करना अभीष्ट है। दूसरे साधु को साथ लेकर विहार करना कब कल्पता है। उसके लिए बताया गया कि उसे गीतार्थ होना जरूरी है। गीतार्थ यानी जिसे उत्सर्ग-अपवाद का ज्ञान हो, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का ज्ञाता हो, कारण-अकारण का ज्ञाता हो। किस समय क्या परिस्थिति बनती है, उनका ज्ञान होना चाहिए। यदि कोई स्थिति सामने आ गई और घबरा जाए तो साथ वाले की क्या स्वयं की भी रक्षा कैसे कर पाएगा। उस समय घबराने से काम नहीं चलेगा। यदि घबरा जाएंगे तो साथ चलने वाले भी घबरा जाएंगे। इसलिए सामान्यतया सारी अवस्था की समझ होनी चाहिए। सभी अवस्थाओं का ज्ञान होना चाहिए। ऐसा ज्ञाता ही समुदाय को साथ लेकर विचरण कर सकता है। जैसे साधना के क्षेत्र की बात बताई गई, वैसे ही व्यावहारिक जगत में बात बताई गई है कि व्यक्ति का अधिकार ऐसा होना चाहिए जो अपने अधिकार का सम्यक् प्रकार से पालन कर सके, अन्यथा अधिकार का 'अ' हट जाएगा और उसके लिए धिकार शब्द बना रह जाएगा अर्थात् वह सही तरीके से अपने अधिकार का इस्तेमाल नहीं कर पाया।

प्रश्न या निवेदन किया गया था कि भगवान कोई सरल उपाय बताइए कि 'जिन' कैसे बना जाए, राग-द्वेष को कैसे जीता जाए।

भगवान ने इसका उत्तर दिया कि 'घननामी परनामी रे...' यानी अपने

आपको घननामी बना लो।

मतलब समझ में नहीं आया क्या? बोलो समझ में नहीं आया क्या? अगर समझ में आया तो क्या आया और यदि समझ में नहीं आया तो क्या नहीं आया? बताओ।

(व्याख्यान में उपस्थित लोगों ने समवेत स्वर में कहा कि भगवन् हमें कुछ समझ में नहीं आया)

घन किसको कहते हैं?

(श्रोतागण- जिसके ऊपर लोहे को रखकर कूटा जाता है, उसे घन कहते हैं)

जिस पर लोहे को कूटा जाता है, सोने को कूटा जाता है, उसको घन कहते हैं।

घन पर कितनी चोटें पड़ती हैं?

(श्रोतागण- असंख्यात, अनगिनत)

घन पर सुबह से शाम तक चोटें पड़ती रहती हैं। यदि कभी बीच में विश्राम मिल जाए तो बात अलग है। उस पर चोट पड़ती ही रहती है। भगवान कहते हैं कि वैसे ही तुम्हारे ऊपर भी कितनी भी चोटें पड़ें, पड़ने दो। चोटें तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ पाएंगी। वे अपना परिणाम देकर हट जाएंगी।

एक न्यायाधीश किसी अपराधी को दंडित करता है, सजा सुनाता है। दंड के साथ सश्रम कारावास की सजा भी सुनाता है यानी कि उससे श्रम कराया जाए, इसे काम दिया जाए और समय-समय पर दंड भी दिया जाए। वर्तमान में शायद ऐसी व्यवस्था नहीं है कि शारीरिक पीड़ा दें। पहले के जमाने में कोड़े लगाए जाते थे। प्रतिदिन 100, 200, 500 कोड़े। जल्लाद जैसा आदमी होता था। वह कोड़े तैयार रखता और खींचकर कोड़ा लगाता। कोड़े मारने वाले के मन में कभी-कभी रस पैदा हो जाता था कि आने दो, आने दो और आने दो। उसको मजा आता था। वह मजा उसके लिए सजा का काम करती है। उसको उसकी सजा भुगतनी पड़ती है।

किसी को दंड सुनाया गया, सजा सुनाई गई। उसे जेल भेज दिया गया। जेलर, जेल अधीक्षक उससे श्रम कराता है। ऐसे में अपराधी जेलर पर गुस्सा करे कि कैसा आदमी है जो मेरे से इतना परिश्रम करा रहा है। उससे

परिश्रम जेलर करा रहा है या कोई और करा रहा है बताओ?

(श्रोता– न्यायाधीश के आदेशानुसार जेलर करा रहा है)

जेलर केवल न्यायाधीश के आदेश का पालन कर रहा है। वैसे ही हमारे कर्म जज के आदेश का पालन कर रहे हैं। कोड़ा लगाने वाला कोई दूसरा नहीं है। अपने कर्म ही कोड़े लगा रहे हैं। बस निमित्त किसी दूसरे को खड़ा कर दिया कि तुम इसको कोड़े लगाओ। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई और कोड़े लगा रहा है। अपना कर्म ही कोड़ा लगा रहा है।

हमने एक कहानी सुनी होगी। एक बार नहीं, बहुत बार सुनी होगी। अनेक बार सुनी होगी। बार-बार सुनी होगी। चित्र भी देखे होंगे। श्री गजसुकुमाल श्मशान में ध्यानस्थ खड़े हैं। एक व्यक्ति आता है, उसे देखता है। उसका नाम सोमिल ब्राह्मण है। सोमिल जैसे ही गजसुकुमाल को देखता है वह भूल जाता है कि ब्राह्मण का अर्थ ऊँचा होता है। बड़ा होता है। किंतु जन्म से ब्राह्मण और कर्म से ब्राह्मण में बहुत फर्क है। इसी तरह जन्म से जैन और कर्म से जैन में बहुत बड़ा अंतर होता है। जन्म हमने जैन समाज में ले लिया, जैन कुल में ले लिया इसलिए जैनी कहलाते हैं।

हमारे कर्म जैनत्व के अनुरूप हैं या नहीं? जैन का कर्म कैसा होता है, कैसा होना चाहिए, कौन बताएगा? किसी को मालूम नहीं है क्या? आप जैन नहीं हो क्या?

(श्रोतागण– हम जैन ही हैं भगवन्!)

हम सभी जैन हैं तो इतनी जानकारी होनी चाहिए कि जैन का कर्म कैसा होता है।

ये क्या है? (हाथ में एक कपड़ा लेकर लोगों को दिखाते हुए)

(श्रोतागण– कपड़ा है)

अब क्या है? (इस बार कपड़े में गाँठ लगाकर लोगों को दिखाया)

(श्रोतागण– कपड़े की गाँठ है)

कपड़ा है या नहीं है?

(श्रोतागण– गाँठ भी है और कपड़ा भी है)

अभी भी आप सही जगह पहुँचे नहीं हो। सही जगह पहुँच नहीं रहे हो। देख लो अच्छी तरह से। आप गाँठ को देख रहे हो, किंतु यह नहीं देख रहे

हो कि दोनों हाथ तने हुए हैं। दोनों हाथ वस्त्र के दोनों छोरों को पकड़े हुए हैं।

अब क्या है, बोलो अब क्या है? (फिर से दिखाते हुए)

हाथ 63 के अंक की तरह है। यानी दोनों एक-दूसरे के नजदीक हैं। अब गाँठ को खोलने का उपक्रम कर रहे हैं। अब समझ में आ रहा है। गाँठ वापस खुल गई। आपने वस्त्र की तीन अवस्थाएँ देखीं, उनका अर्थ क्या हुआ? पहली अवस्था गाँठ लगाने वाली थी, दूसरी गाँठ खोलने वाली व तीसरी अवस्था गाँठ खुल जाने पर बनने वाली। समझ में आई कुछ बात?

(श्रोतागण- हाँ भगवन्)

आप सभी बोल रहे हो कि समझ में आ गई। जब तक जीवन में गाँठ घुलाते रहेंगे, तब तक जैन नहीं हैं। जब तक गाँठें घुलती रहेंगी, जब तक उसे घुलाते रहेंगे, गाँठ को खींचते रहेंगे, तब तक जैन कुल में जन्म लेने के बावजूद जैन नहीं हैं। वह अवस्था सामान्यजन की है। दूसरी अवस्था कैसी थी? गाँठ खोलने के उपक्रम रूप। ऐसी मनोवृत्ति, ऐसे विचार जब बनते हैं, तब वह अवस्था जैनत्व को दर्शाती है। तीसरी अवस्था गाँठ खुलने पर बनी, वह जिनत्व का प्रतीक है।

जीवन में गाँठे घुलती जाएंगी तो उसका क्या परिणाम आएगा ये बताओ? और गाँठ खोलने का उपक्रम करनेवाले का परिणाम क्या होगा? जीव यदि जैनत्व में काल करे तो देव गति में जाएगा। जैनत्व से युक्त सच्चा जैन वी.आई.पी. है। वह किसी भी समय काल करे देव गति में जाएगा, नरक में नहीं जाएगा। जैन कुल में जन्मा हुआ व्यक्ति यदि वह जैनत्व से रहित है तो वह तिर्यंच में भी जा सकता है और नरक में भी जा सकता है। मनुष्य और देव गति में भी जा सकता है। पर सच्चे जैन के लिए एक ही रास्ता खुला है। या यों कहें कि दो रास्ते खुले हैं। दूसरा मार्ग देवगति से मनुष्य गति में आने का है। जो गाँठ खोलकर जिन बन गया उसके लिए मोक्ष का, सिद्ध गति का एक ही रास्ता है। उसके लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

अभी हमारे कितने रास्ते खुले हैं बताओ?

(श्रोतागण- दो)

यह साफ है कि जो गाँठों को घुलाने की कोशिश करता है वह सामान्य आदमी है। जो गाँठे खोलने की कोशिश करता है वह होता है जैन और

जिसने राग-द्वेष को हटा दिया, जो अपने आपको मूल स्वभाव में ले आया वह हो गया जिन। जिन की अवस्था लाने के लिए घननामी बनना होगा अर्थात् बहुत सारी समस्याएँ झेलनी पड़ेंगी। बहुत कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी। कठिनाइयाँ और समस्याएँ झेलने के बाद जिनत्व की प्राप्ति होगी। अनेक चोटें पड़ने पर भी मन में प्रतिशोध का भाव नहीं जगे। ध्यान रखना, मन में प्रतिक्रिया भी पैदा नहीं हो कि मुझे इतनी चोटें क्यों सहनी पड़ रही हैं, मेरे पर इतनी चोटें क्यों पड़ रही हैं। ऐसी प्रतिक्रिया जिनत्व प्रकट नहीं होने देगी? जिनत्व के लिए जरूरी है-

सहना, सहना और सहना...

वासुदेव त्रिपृष्ट शय्यापालक, शय्या की रक्षा करने वाले से कहते हैं कि अभी गीत-नाट्य चल रहा है। मुझे नींद आ जाये तो उसको बंद करवा देना, पर वह उस गीत में मुग्ध हो गया। गीत ऐसी चीज है कि आदमी सुनता है तो उसका मन झूम जाता है। उसमें प्रेम की धारा बहने लगती है। शय्यापालक उसी में झूम गया। सम्राट को नींद आ गई, पर शय्यापालक को पता नहीं चला। वह गीतों में झूमता रहा। संयोग से वासुदेव की नींद खुल गई। उसने देखा कि गीत अभी भी चल रहे हैं। नाट्य चल रहा है, जबकि मैंने कहा था कि मुझे नींद आ जाए तो बंद करवा देना।

शय्यापालक को वासुदेव सम्राट के सामने हाजिर किया गया। उससे कहा कि तुमको बोला गया था कि मुझे नींद आने के बाद ये गीत-नाट्य बंद करवाना है। तुमको आदेश दिया गया था। तुम्हें आज्ञा दी गई थी। तुमने मेरी आज्ञा की अवहेलना कर दी।

शय्यापालक ने कहा कि क्षमा कीजिए, मेरा मन उन गीतों को सुनने में मुग्ध हो गया। वासुदेव ने ठहाका लगाते हुए कहा कि अच्छा, तुम्हारा मन मुग्ध हो गया। सम्राट ने उसे दंड सुनाया। तदनुसार उसके कानों में गर्म-गर्म सीसा डाला गया। उसको बहुत कष्ट हुआ। उसके मन में प्रतिशोध के भाव आए कि यदि मेरा वश चले, मेरे में ताकत हो तो मैं इसका बदला लूं और इसके साथ ऐसा ही व्यवहार करूँ!

वैरानुबंधी वैर की भावना में उसकी मृत्यु हुई। आगे की बात यह है कि वह भी संसार में घूमा और त्रिपृष्ट का जीव भी इस संसार में घूमता हुआ

भगवान महावीर के रूप में अवतरित हुआ और वह एक किसान के रूप में। भगवान महावीर ध्यान में खड़े थे। उन्हें देखकर उसका पूर्व का वैर जागृत होने लगा। उसने भगवान महावीर के कानों में कीलें ठोंकी। कहानी बहुत लंबी है। यह प्रतिशोध का परिणाम है। जिसके भीतर भी प्रतिशोध का भाव होगा वह उसका दुष्परिणाम पाएगा। यदि हम जैन हैं तो हमारे भीतर प्रतिशोध का भाव नहीं होना चाहिए। हम तीर्थंकर के उपासक हैं तो हमारे भीतर प्रतिशोध का भाव नहीं आना चाहिए। प्रतिशोध का भाव आने से निकाचित कर्मों का बंध हो सकता है। निकाचित कर्मों का बंध कर लिया तो जब तक उनका भोग नहीं करेंगे, तब तक संसार में जन्म-मरण का चक्र चलता रहेगा, चलता रहेगा।

बात मैं बता रहा था सोमिल ब्राह्मण की। वह गौर से देखता है कि यह वही है जिसने मेरी पुत्री के साथ बहुत बड़ा विश्वासघात किया है। इसको साधु बनना था तो मेरी पुत्री के साथ विवाह करने की बात क्यों की। वह बहुत गुस्से में हो गया। गुस्से में वह भूल गया कि मैं क्या कर रहा हूँ। वह तालाब की गीली मिट्टी लाकर गजसुकुमाल के सिर पर पाल बाँधता है और श्मशान से अंगारे ला, सिर पर डाल देता है।

किसने डाले अंगारे?

सोमिल ब्राह्मण ने। यह वैर 99 लाख भव पहले का था, जब सौतेली माँ के रूप में एक छोटे-से बच्चे के सिर पर गर्म बाटा रखवाया था। इससे उसका मरण निश्चित था। ऐसा ही वह चाहती थी। वह नहीं चाहती थी कि मेरी सौत की संतान रहे। बच्चे की मृत्यु हो गई। जो बीज उस समय बोया गया था, उसका परिणाम 99 लाख भवों के बाद मिला।

बोवोगे जैसा बीज, तरु वैसा लहराएगा।
जैसा करोगे, वैसा ही फल आगे आएगा।।

जो जैसा बीज बोएगा वह वैसा ही फल पायेगा। बोये गये बीज के अनुसार ही फल मिलेगा। कोई बबूल का बीज बोयेगा तो उसे क्या मिलेगा?

(श्रोतागण- बबूल ही मिलेगा)

पड़ोसी ने आम का बीज बोया। उसमें आम लगने के बाद किसी के मन में यदि यह हो कि उसके पेड़ को काट दूँ या उसके साथ छीना-झपटी करूँ तो ये उसकी नादानी है। मैंने जैसा बीज बोया वैसा लाभ मुझे मिल गया। वैसा

फल मुझे मिल गया। गजसुकुमाल को उसकी आत्मा के कृत्यानुसार परिणाम मिला। भगवान महावीर ने जैसा बीज बोया वैसा ही फल भोगा। वैसा फल उन्हें मिला।

हम यदि अपनी पहचानपूर्वक घन की तरह बने रहेंगे तो हमारा जैनत्व निश्चित है। यदि प्रतिशोध की भावना में चले गये तो जन्म-मरण हमारा ही होना है। उस स्थिति में जिनेश्वर पथ को सुरक्षित रखना कठिन होगा।

घननामी परनामी रे...

घननामी बनें। जो घन के समान बन जाता है, वह जिन अवश्य बनता है और जो जिन बनता है, वह सर्वज्ञ होता है। एक छोटी-सी घटना जीवन को बहुत बड़ी प्रेरणा देने वाली हो जाती है। वहीं छोटी-सी घटना जीवन को नरक ले जाने वाली भी होती है। एक छोटा-सा बदलाव जीवन में बहुत बड़ी क्रांति घटित कर देता है, किंतु वह बदलाव यदि विपरीत दिशा में हो जाए तो शतमुखी पतनकारक भी बन जाता है।

हम कैसा बदलाव करना चाहते हैं ये सोचने की आवश्यकता है। दोनों हाथों को नजदीक लाना है या खींचे रखना है? दोनों हाथ खिंचे रहते हैं तो दोनों की दूरियाँ बढ़ती जाती हैं। अर्थात् गाँठ बनी रहेगी। उसे खोलने में देर लगेगी। हाथ नजदीक आएंगे तो गाँठ खुलते देर नहीं लगेगी। हाथ वही है और कपड़ा भी वही है। एक अवस्था में कपड़ा खींच रहा है और दूसरी अवस्था में कपड़े की गाँठ ढीली पड़ने लगती है। आपके सामने यह केवल कपड़े की पिक्चर है। इस पिक्चर के आधार पर परिवार व समुदाय (संघ) के धरातल पर देखना है कि वहाँ क्या चल रहा है।

अब विचार हमें करना है कि हम कौन-से स्तर पर जी रहे हैं। साथ ही निर्णय करना है कि हमें कौन-से स्तर पर जीना है।

नमिराज की चर्चा हुए बहुत दिन हो गए। बात भूल गई होगी कि वे क्या कर रहे होंगे।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार...

सम्राट को नींद आ गई थी। उन्होंने नींद में एक अद्‌भुत स्वप्न देखा था। क्या किसी को स्वप्न आता है?

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सपने सभी व्यर्थ हुआ करते हैं। सपने

काम के नहीं होते हैं, जबकि कुछ लोग सपने देखने में मशगूल रहते हैं। हेमगिरी जी म.सा. कभी-कभी फरमाया करते थे कि आँखों पर चश्मा लगा कर सोना चाहिए। चश्मा टूट जाएगा तो नया ले आएंगे पर रात में सपने देखेंगे तो साफ दिखेगा। हम सोचते हैं कि सपने देखकर करना क्या है। नमिराज ने सपना देखा कि वह एक श्वेत हाथी पर चढ़कर मेरु पर्वत की ओर जा रहे हैं। क्या अद्भुत दृश्य था। ऐसा दृश्य पहले कभी नहीं देखा गया।

कार्तिक पूनम की रात थी। शुभ भावना का रंग नजर आ रहा था। उसीके कारण वे विचाराधीन बन गए। बाद में उनको वैराग्य आता है और वे साधु जीवन अर्थात् चरित्र को स्वीकार करने वाले बनते हैं। वे जब प्रात: उठते हैं तो रात के स्वप्न पर विचार करने लगते हैं। वे विचार करते हैं कि ऐसा तो मैंने पहले कहीं देखा है। स्वप्न में देखे गये श्वेत हाथी को पहले भी मैंने कहीं देखा है। पहले भी मैंने वैसा हाथी, वैसा दृश्य देखा है। उन्हें सारी चीजें देखी हुई नजर आने लगीं।

चिंतन करते-करते ज्ञानावरणीय कर्म के तथाविध क्षयोपशम से उनको जातिस्मरण ज्ञान प्रकट हो जाता है। अब वे साक्षात् अपने पूर्व भव को देख रहे हैं। वे देख रहे हैं कि मैंने इस भव के ठीक पहले वाले मनुष्य भव में साधु जीवन स्वीकार किया था। साधु जीवन स्वीकार कर आराधना की थी और साधु जीवन की आराधना से देवलोक में देव बना। उन्हें देवलोक का दिव्य नजारा वहाँ से नजर आ रहा था।

उसी नजर से वे देख रहे हैं कि एक बार कई देव भ्रमणार्थ जा रहे थे तो मेरे मन में जिज्ञासा हुई, उत्सुकता पैदा हुई कि मैं भी उन देवों के साथ क्रीड़ा करने, मनोरंजन करने जाऊँ। मैं उनके साथ नंदन वन में गया।

बताओ कहाँ पर है नंदन वन?

(कुछ लोगों ने कहा- मेरु पर्वत पर)

आप संघ समर्पण गीत में गाते हो- नंदन वन सा महक रहा। नंदन वन सुगंध देता है। वैसी सुगंध, वैसी महक कहाँ पर प्राप्त हो रही है। संघ में प्राप्त हो रही है।

नमिराज ऋषि साक्षात् अपने पूर्वभव को देख रहे हैं। वे देख रहे हैं कि देव भव में श्वेत हाथी पर चढ़कर नंदन वन में गए। वही साक्षात् दृश्य स्वप्न में देखा।

नमिराज के पास धन-वैभव के भंडार भरे थे। उन्हें सब अनुकूलताएँ थीं, किंतु विरक्ति आई, वैराग आया और सोच लिया कि नहीं रहना संसार में। उन्होंने निर्णय कर लिया कि अब मुझे साधु जीवन स्वीकार करना ही है। ऐसा निर्णय कर वे भोगों को लात मारते हैं। कहानी में ऐसा बताया गया है कि वे अपने पुत्र का राज्याभिषेक करते हैं और स्वयं दीक्षा के लिए उद्यान की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

बंधुओ! जातिस्मरण ज्ञान बहुत बार बोध देने वाला बन जाता है। दुनिया की घटना सुनकर बोध जगे या नहीं जगे, किंतु स्वप्न देखकर किसी-किसी के भीतर बोध जग जाता है। अपनी घटना जानकर उसके मन में वैराग आ जाता है। एक दिन पहले ही चंडकौशिक की बात कही थी कि उनको जातिस्मरण ज्ञान से सद्बोध प्राप्त हो गया। भगवान महावीर का उपदेश उनको लग गया।

हे भव्यो! सद्बोध को प्राप्त करो। बोध प्राप्ति दुर्लभ है, किंतु जब तक हम अपनी तैयारी नहीं करेंगे, उसके उपभोक्ता नहीं बन पाएंगे। सुनने वाले बन जाएंगे, किंतु जीवन में रमण करने वाले, आचरण करने वाले नहीं बन पाएंगे। जीवन में कोई घटना रम जाए, कोई सूत्र रोम-रोम में उतर जाए तो जीवन की दिशा भिन्न हो जाएगी।

कल या परसों के दिन शायद सुमित मुनि जी ने कहा था कि धैर्य रखना जरूरी है। पर नाना गुरु फरमाते थे कि हमारा धर्म रोकड़ा धंधा है। हमारे यहाँ उधार का काम नहीं है। यहाँ एक हाथ देना और दूसरे हाथ लेना है। तत्काल परिणाम है। हाथों-हाथ परिणाम है।

घर में पुत्र का जन्म हुआ और राजा को दासियों ने सूचना दी कि महारानी की कोख से दिव्य बालक का जन्म हुआ है। राजा को यह सूचना कौन दे रही है? बताओ।

(श्रोतागण- दासियाँ दे रही हैं)

और कौन सुन रहा है?

(श्रोतागण- राजा सुन रहा है)

आप नहीं सुन रहे हैं?

(श्रोतागण- हम आपकी बातों को सुन रहे हैं)

राजा ने सुना तो उसे खुशी उसी समय होगी या साल भर बाद होगी? क्या उसे अपने पुत्र के जन्म की खुशी साल भर बाद होगी?

खुशी का परिणाम हाथों-हाथ दिखता है। राजा ने राजकुमार की खुशी में कहा कि भंडार के द्वार खोल दो। 12 दिन तक कोई भी आए तो खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। जो कैदी सामान्य अपराधी हो उन सबको मुक्त कर दो।

ऐसी खुशी क्यों होती है? क्यों ऐसा किया जाता है? प्रतिदिन की खुशी और नई आने वाली खुशी में फर्क होता है। नई खुशी परिणामदायक हुआ करती है। राजा द्वारा भंडार खोलने पर बहुत सारे लोगों को अर्थ लाभ हुआ। वे कहने लगे कि धन्य हो राजकुमार, मेरे जीवन की सारी समस्या दूर हो गई। मेरी दरिद्रता दूर हो गई। बहुत सारे लोग राजकुमार को दुआएं दे रहे हैं, आशीर्वाद दे रहे हैं। यदि ये खुशी नहीं मनाई जाती तो राजकुमार को दुआएं नहीं मिलतीं। केवल दौड़कर तीन मंजिल पर जाते और काँसे की थाली बजा देते। इतने मात्र से क्या होगा? खुशी ऐसी हो, जिसमें आपके हृदय का द्वार खुल जाए, घर का भंडार खुल जाए। भंडार खुलेंगे तो क्या मिलेगा?

(श्रोता- दुआ मिलेगी)

पर हमें दुआ चाहिए कहाँ? हम अस्पताल में, मेडिकल हाउस में न जाने कितने पैसे खर्च कर देते हैं, किंतु दुआ नहीं चाहिए। वह भी एक समय था जब किसी सेठ-साहूकार के घर बच्चे का जन्म होता था तो वह कुछ ऐसा कार्य करता था, जिससे बच्चे को दुआएं प्राप्त होती थीं। उनका हृदय खुला रहता था तो दुआ आती थी। अब हमारा हृदय कंजूस हो गया। अब हमारे हृदय का द्वार नहीं खुलता तो दुआ आएगी कहाँ से?

भगवान से पूछा गया कि भगवान क्षमा करने से और क्षमा भाव में जीने से जीव को क्या फल प्राप्त होगा, तो भगवान ने कहा कि उसको प्रसन्नता प्राप्त होगी। जीवन में प्रसन्नता व्याप्त रहेगी। यह परिणाम हाथों-हाथ मिलता है।

नमिराज की कहानी आगे किस प्रकार मोड़ लेती है, वह हम समय के साथ सुनेंगे, किंतु इतना अवश्य है कि हमने जैन कुल में जन्म लिया है। जैन कुल में जन्म लेकर अपने स्वभाव के अनुरूप नहीं जी पाये तो क्या होगा, यह आप सोच लो। यदि जैनत्व का सद्भाव मिला है तो पुण्य योग में उसका उपयोग करें। धन से धन बढ़ता है।

यहाँ व्यापारी लोग बैठे हैं। उनको सब पता होगा कि चाय वाला कितना कमाएगा, व्यापारी कितना कमाएगा, छोटा-मोटा काम करने वाला कितना कमाएगा और जौहरी कितना कमाएगा। सब की कमाई में फर्क पड़ेगा। वैसे ही जैनत्व के संस्कारों व अन्यों में फर्क होना चाहिए। जैनत्व के संस्कार महत्त्वपूर्ण हैं। वे ही संस्कार जिनत्व की ओर ले जाने वाले बनेंगे। जनसामान्य से ऊपर उठेंगे तो वही शिखर पर जाने वाले होंगे। जीवन में उन संस्कारों को पालेंगे तो अपने आपमें धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

11 अक्टूबर, 2021

11

जैनत्व की महत्ता

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे...

भगवान वासुपूज्य की स्तुति करते हुए उनको त्रिभुवन स्वामी कहा गया है। उन्हें तीन भवों का स्वामी कहा गया है।

लोग चाहते हैं कि हमें अधिकार मिले। व्यावहारिक क्षेत्र में छह खंड से अधिक का अधिकार किसी को प्राप्त नहीं है। छह खंडों का अधिकार भी चक्रवर्ती को होता है। वासुदेव को तीन खंड का ही अधिकार मिलता है। किंतु तीन लोक का अधिकार, तीन लोक का स्वामित्व तीर्थंकर भगवंतों को ही प्राप्त होता है।

यदि जनसमुदाय में कोई सशक्त है तो मैं कहूँगा कि जैन सशक्त है। क्या हम अपने आपको सशक्त समझ रहे हैं? हमारी सोच बहुत ओछी है। हम सोचते रहते हैं कि हमारी क्या क्षमता है, हमारी क्या औकात है। इस प्रकार हम ओछी सोच में उलझे रहते हैं। उससे उपरत नहीं हो पाते। कभी हम सोचते हैं कि हमारा संख्या बल कम है। हम तो अल्पसंख्यक हैं। पर ध्यान रखना, पत्थरों की खदान में हीरे कम ही होते हैं। भारत ही नहीं, पूरे विश्व में रत्नों की खदानें ज्यादा है या पत्थरों की। उसी प्रकार लोहे की खदानें ज्यादा हैं या सोने की? कीमती लोहा है या सोना?

(श्रोतागण– सोने की कीमत ज्यादा है)

क्यों ज्यादा है? कम होने की वजह से उसकी कीमत ज्यादा है।

ऐसा नहीं है। किसी भी धातु का मूल्य उसकी गुणवत्ता के आधार पर है। जैसे सोना मूल्यवान है, वैसे ही जैनत्व बहुत मूल्यवान है। हम उसके महत्त्व को नहीं समझ पा रहे हैं या नहीं समझते हैं तो इससे जैनत्व के मूल्य में कोई

कमी नहीं पड़ जाती। साग-सब्जी बेचने वाला कोहिनूर की कीमत नहीं आँक पाएगा। आपमें ऐसे बहुत सारे लोग हैं जो कोहिनूर हीरे की कीमत नहीं आँक पाएंगे। हममें से बहुत-से लोग उसकी सही कीमत नहीं बता पाएंगे।

क्या कीमत है कोहिनूर हीरे की?

ऐसा कहा जाता है कि कोहिनूर हीरे की कीमत सात जूते है। कोहिनूर सबसे पहले पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के पास था। बताया जाता है कि एक बार किसी ने उनसे पूछ लिया कि इसकी कीमत क्या है तो उन्होंने कहा कि इसकी कीमत सात जूते के बराबर है। यानी जिसके पास ताकत हो, वह सात जूते मारे और उसको छीन कर ले जाए। वैसे ही जैसा कि कहा जाता है 'जिसकी लाठी उसकी भैंस।' उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि उसके बराबर मूल्य की कोई चीज नहीं है। वाकई ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे देकर उसको खरीदा जा सके।

वैसे ही अनंतानंत मिथ्यात्वियों की अपेक्षा एक सम्यक् दृष्टि की सोच बहुत महत्त्वपूर्ण है। मासखमण की तपस्याएं महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। महत्त्वपूर्ण है व्यक्ति की दृष्टि। आगमिक दृष्टि से जब तक दृष्टि बदली नहीं है, तब तक मास, मासखमण की कितनी भी तपस्याएँ कर लें, सार्थक नहीं होंगी। वे पुण्य बढ़ाने वाली हो सकती हैं। उसके बदौलत देवलोक मिल सकता है, किंतु आध्यात्मिक क्षेत्र में उसका कोई मूल्य नहीं है। अज्ञानी अज्ञानपूर्वक जिस तप से तपते हैं, उस तप का आध्यात्मिक जगत में कोई मूल्य नहीं है। उस तप का कोई मोल नहीं है। उस तरह की तपस्याएँ व्यर्थ हैं। वैसे ही भौतिक संपत्ति वस्तुत: व्यावहारिक जीवन तक ही काम आने वाली है। परलोक में इसका कोई सरोकार नहीं है। आप कहीं दूसरे देश में चले गए तो क्या भारत की करेंसी हर देश में चल जाएगी?

(श्रोतागण- नहीं बावजी)

यदि डॉलर है तो परलोक में भी चल जाएगा। डॉलर परलोक में भी चल जाएगा क्या?

(श्रोतागण -नहीं बावजी)

हम परलोक की चिंता क्यों करें। परलोक से पहले इस लोक की चिंता कर लें। यहाँ तो पहले पेट भर जाए। वहाँ पेट नहीं भरेगा तो उस समय

विचार करेंगे। पहले वहाँ की चिंता क्यों करनी? हाँ, परलोक है अवश्य। वहाँ निश्चित जाना होगा। वहाँ जाना निश्चित है। कहते हैं कि यहाँ कमाई करके जाएंगे तो वहाँ आराम से रह पाएंगे। यहाँ पुण्य नहीं करेंगे तो वहाँ कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है। इसमें बहुत बड़ा भाव दृष्टि का है। सम्यक् दृष्टि की सोच बदल जाती है। उसका एक-एक कार्य निर्णायक हो जाता है। उसकी सोच केवल वर्तमान तक ही नहीं, बल्कि भविष्य की, परलोक की उसकी सोच सार्थक हो जाती है।

एक सम्राट बहुत दुःखी हो रहा था। उसके पास बहुत संपत्ति थी। जिसके पास संपत्ति नहीं हो वह कभी सम्राट हो नहीं सकता। संपत्ति होगी तभी सम्राट बनेगा। लोकतंत्र में भी खजाना खाली नहीं मिलता है, तो सम्राट का खजाना खाली कहाँ से मिलेगा। फिर भी सम्राट दुःखी था। वह किसलिए दुःखी था?

कोई कह सकता है कि उसके कोई संतान नहीं होगी, इसलिए दुःखी होगा। कोई कहेगा कि जनता उसकी बात को स्वीकार नहीं कर रही होगी, इसलिए दुःखी होगा। कोई कह सकता है कि लोग कानून-कायदे का पालन नहीं कर रहे इसलिए दुःखी होगा, लेकिन उसको ये सब चिंता नहीं थी। उसको चिंता थी भविष्य की। उसके दुःख का कारण भविष्य की चिंता थी। उसके दुःख का कारण वहाँ के संविधान की व्यवस्था थी। वहाँ के संविधान में ऐसी व्यवस्था थी कि 65 वर्ष की उम्र के बाद कोई राजगद्दी पर नहीं रहेगा। जिस राजा की उम्र 65 साल हो जाएगी, उसको जंगल में छोड़ दिया जाएगा। उस व्यवस्था के तहत गाजे-बाजे के साथ बड़ी शान से सम्राट को जंगल में पहुँचाया जाता। राजा को जंगल में अकेले छोड़ दिया जाता। उसी बात से वह बड़ा दुःखी था। उसके 65 वर्ष पूरे होने के नजदीक आ रहे थे। 65 साल में साल-दो साल ही बाकी थे। वह चिंता में था कि अब मैं क्या करूँ, कैसे करूँ। वह दुविधा में जी रहा था।

एक दिन दीवान राजा के पास पहुँचा और कहा, राजन् आपके दुःख का कारण क्या है? आप दुःखी क्यों हो रहे हैं?

सम्राट ने कहा कि मेरे दुःख का कारण बहुत स्पष्ट है कि साल दो साल के बाद मुझे जंगल में छोड़ दिया जाएगा। वहाँ मेरे जीवन की क्या स्थिति

रहेगी। मेरा क्या होगा, कैसे होगा। दीवान ने कहा कि राजन् उसका उपाय मेरे पास है, किंतु उसमें खर्चा लगेगा। राजा ने कहा कि खर्चे की मुझे चिंता नहीं है। कोष अभी मेरे अधिकार में है, खजाना मेरे अधिकार में हैं। खर्चे की चिंता नहीं है। राजा ने दीवान से कहा कि कोई सुरक्षा का उपाय हो और किया जा सकता हो तो करो।

दीवान ने कहा कि हुजूर हो जाएगा। आप निश्चिंत रहिए, पर खजाने से धन लेने की अनुमति मिलनी चाहिए ताकि मैं कार्य संपन्न कर सकूँ।

राजा सोचने लगा कि क्या करना चाहिए। दीवान पूरी गारंटी के साथ बात कर रहा हूँ। जवाबदारी की बात है कि उससे आपकी सुरक्षा होगी। आपकी सुरक्षा में कोई खामी नहीं रहेगी। राजा ने दीवान पर विश्वास किया और उसको खजाने से धन लेने की अनुमति दे दी। राजा ने दीवान से कहा कि आपको जितना धन चाहिए उतना ले सकते हो।

देखते ही देखते समय निकलता गया। समय निकलने में क्या देर लगती है। चौमासे के कितने दिन निकल गए?

क्या आपको मालूम पड़ता है कि मेरी जिंदगी के 65 साल निकल गये? उस पर कुछ विचार करते हो। धन जाता है तो चिंता लगी रहती है। सोचते हैं कि घाटा नहीं होना चाहिए। हर साल मुनाफा होना चाहिए। ये देखो कि हमारा जीवन कितने घाटे में गया। आप कह सकते हैं कि हम यह क्यों सोचें! सोचो या मत सोचो लेकिन यह जीवन की सच्चाई है। सच्चाई एक दिन जरूर सामने आएगी। आपके सोचने से फर्क पड़ने वाला नहीं है।

देखते ही देखते दो साल पूरे हो गए। बड़े ठाठ-बाट से गाजे-बाजे से सम्राट के विदाई की तैयारी हुई। सम्राट, दीवान जी की तरफ देखता है। दीवान भी इशारा करके राजा से कह रहा है कि सब ठीक है। गाजे-बाजे के साथ राजा को जंगल में ले जाकर छोड़ा गया। राजा अब दु:खी नहीं है। वह सुखी हो गया। दीवान ने जंगल में आलीशान मकान बनवा दिया था। वहाँ पहुँचते ही दीवान ने कहा कि हे राजन्, ये आलीशान महल आपके निवास के लिए है। अब आपको चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

सम्राट यह देखकर खुश हुए कि वहाँ न केवल आलीशान महल है, बल्कि नगर बसाने की पूरी योजना है। योजना नहीं समझ लीजिए कि बसा

दिया गया। राजा को बहुत खुशी हुई। उसे चिंता नहीं रही। वह निश्चिंत हो गया कि अब मैं आराम से जिंदगी जीऊँगा। आराम की जिंदगी भी आराम की कहाँ हो पाती है, उसमें भी कुछ चिंताएँ रहती हैं। कुछ समस्याएँ रहती हैं। लोग समस्याओं में घुलते रहते हैं। समस्याएँ हैं तो उनका समाधान निकालना होता है। उनका समाधान किसको निकालना होगा?

(श्रोतागण- स्वयं को निकालना होगा)

या तो अपने आप निकालो या आपका कोई विश्वासपात्र है तो वह निकाले। जिस पर आप विश्वास करते हो, उसकी राय लेनी पड़ेगी अथवा जो जिस विषय का विशेषज्ञ है उसकी राय लेनी पड़ेगी। कोर्ट-कचहरी की समस्या है तो विश्वासपात्र से पूछने से काम बनेगा नहीं। किसी वकील से बात करनी पड़ेगी। इनकम टैक्स की कोई समस्या है तो किसी सी.ए. के साथ वार्ता करनी पड़ेगी। वही आपको समाधान बता पाएगा। कोई शारीरिक समस्या है, कोई बीमारी है, कोई वेदना है तो डॉक्टर के पास जाना पड़ेगा।

(उपस्थित लोगों की तरफ से भी आवाज आती है कि डॉक्टर को दिखाना पड़ेगा)

आप लोग पहले ही समझ गए। बीमारी होने पर बीमारी के स्पेशलिस्ट समस्याओं का समाधान कर पाएंगे अन्यथा व्यक्ति भीतर ही भीतर घुलता रहेगा। उसकी समस्या का समाधान नहीं हो पाएगा तो वह दु:खी होता चला जाएगा।

एक बात ध्यान में लेना! समस्या से भले ही कोई पीड़ित हो जाए, किंतु समस्या से अलग भी स्थान है। दो स्थानों पर समस्या नहीं है। एक तो वीतरागी को कोई समस्या नहीं होती है और दूसरा कब्रिस्तान में कोई समस्या नहीं रहेगी। जहाँ पर अमीर को दफनाया जाता है वहीं पर गरीब को भी दफनाया जाता है। जहाँ पर गरीब को जलाया जाता है, वहीं पर अमीर को जलाया जाता है। वहाँ समस्या अपने आप खत्म हो जाती है।

श्मशान में जाने की तैयारी करनी है या वीतरागता में जाने की?

दो ही जगह है। या तो वीतराग बनें या श्मशान में जाने की तैयारी करें। श्मशान में जाने का मन नहीं है! आप किसी को पहुँचाने जाते हैं तब तो बड़ी खुशी-खुशी से जाते हैं कि आज मौका मिला अर्थी उठाने का। वैसे ही आज

मौका मिला है राम नाम सत्य है सुनने का।

राम नाम सत्य सुना दो। आप श्मशान में जाना चाहो या नहीं जाना चाहो पर लोग आपको पहुँचाने जरूर जाएंगे। छोड़ेंगे नहीं। ये बात निश्चित है कि लोग श्मशान पहुँचाने के लिए छोड़ेंगे नहीं। दो ही रास्ते हैं। या तो वीतरागी बन जाएं या श्मशान में जाने की तैयारी कर लें।

सम्राट का दीवान समझदार था। उसने समस्या का समाधान कर दिया। राजा को अब कोई टेंशन नहीं थी, अब कोई रुकावट नहीं थी। अब वह जिंदगी भर महल में रहेगा, किंतु ध्यान रखना, मृत्यु से कोई बचा नहीं पाएगा। दीवान हो या कोई और, कोई भी मौत से बचा नहीं पाएगा। मृत्यु से नहीं बचेंगे, किंतु मौत के भय से बचा जा सकता है। मौत खतरनाक नहीं है, वह एकदम टाइम पर ही आती है। हम टाइम भले ही चूक जाएं, वह कभी भी टाइम नहीं चूकती। वह तो एक सेकेंड भी नहीं चूकती।

कोरोना जैसी महामारी पहले भी आती थी। प्लेग, माता, बड़ी चेचक। अब तो कई महामारियाँ आ गईं। एक किंवदंती है कि एक बार एक महामारी दौड़ी जा रही थी। रास्ते में उसे यमदूत मिल गया। यमदूत ने उससे पूछा कि तुम कहाँ जा रही हो तो उसने कहा कि मैं अपने भक्ष्य को लेने जा रही हूँ। यमदूत ने कहा कि तुम कितने जीवों का भक्षण करोगी तो उसने कहा कि पाँच सौ जीवों का भक्षण करके वापस लौट जाऊंगी। वह वापस लौट रही थी तो यमदूत पुन: मिल गया और कहा कि तुम झूठ क्यों बोली। तुमने कहा था कि पाँच सौ जीवों का भक्षण करूंगी पर मेरे यहाँ पाँच हजार लोग आए हैं। महामारी ने कहा कि मैंने तो पाँच सौ का ही भक्षण किया बाकी लोग मेरे भय से मर गए।

अभी कोरोना के समय में कई लोगों को सामान्य बुखार आया तो उनके हाथ काँपने लगे। कहीं कोरोना हो गया तो क्या होगा, अब मेरा क्या होगा। खाँसी हो गई तो कहने लगे कि जल्दी डॉक्टर को बुला लो, कहीं कोरोना न हो गया हो। आदमी भयभीत ज्यादा हो जाता है। वैसे ही अनेक मौतें महामारी के भय से हो जाती हैं। मौत के नाम से आदमी भयभीत हो जाता है। एक दिन मौत आनी निश्चित है। चाहे डर कर रहो या निर्भय होकर, मृत्यु आयेगी।

मृत्यु का भय वीतरागियों को नहीं होता। जो वीतराग होते हैं, सर्वज्ञ हो जाते हैं, सर्वदर्शी हो जाते हैं, शरीर उनका भी छूटेगा या नहीं छूटेगा?

(श्रोतागण- शरीर तो सबका छूटेगा)

किंतु हमारे मन में मौत का भय रहता है। वीतरागी के मन में मृत्यु का भय नहीं होता। जिसने जीवन की सच्चाइयों को बहुत अच्छी तरह से जान लिया उसे भी मृत्यु का भय नहीं सताता है। क्योंकि वह जानता है कि मेरी आत्मा का नाश होने वाला नहीं है। उसे पता है कि शरीर कभी अमर रहने वाला नहीं है। वह जानता है कि शरीर एक दिन छूटेगा, और छूटेगा ही। चाहे कितने ही प्रबंध कर लो, कितने ही जाब्ते कर लो। इसका कोई उपाय किसी के पास नहीं है कि वह शरीर को बचा ले। चाहे किसी भी प्रकार की दवा का उपयोग कर लो, चाहे आयुर्वेदिक दवाइयाँ, रस-रसायन कुछ भी सेवन कर लो, शरीर छूटेगा ही। हो सकता है कि अपना शरीर एकदम वृद्ध नहीं बने, एकदम तंदुरुस्त बना रहे फिर भी एक दिन मौत के रास्ते से गुजरना ही पड़ेगा। उस चौराहे से बचने का कोई चांस नहीं है। निकलना तो उसी चौराहे से पड़ेगा। ज्ञानियों को भय नहीं रहता। वे ज्ञाता-द्रष्टा बन जाते हैं। अत: वे निर्भय हो जीते हैं।

शादी से पहले दुलहा सजावट करता है। बड़ी सजावट के साथ वह शादी करने के लिए जाता है। जैसे दुलहा, दुलहिन को लाने के लिए सज-धज कर जाता है, वैसे ही मौत को वरने के लिए हमारी तैयारी होनी चाहिए। आगमकार, उस तैयारी को संलेखना कहते हैं। संलेखना अर्थात् कषायों को पतला करना। क्षुधा जीतने का प्रयत्न करना। इस प्रकार से जो मृत्यु का वरण करता है, उसके भव निश्चित रूप से सीमित हो जाते हैं। बार-बार उसका जन्म-मरण नहीं हो पाता। अपने आपसे मरण को प्राप्त होना चाहिए। अपने आपसे मरण बहुत विरल व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है। ऐसा भाव एकमात्र जैनियों को प्राप्त होता है। यहाँ जन्म से जैन का कोई मतलब नहीं है।

मैंने एक दिन पहले भी बताया था कि जन्म से जैन नहीं, कर्म से जैन होना है। जो कर्म से जैन होगा, वही उस मृत्यु का वरण करने में समर्थ हो पाएगा।

एक बात ध्यान में रखना, स्वयं को कभी कमजोर मत समझो। तीनों

लोक पर अधिकार जैनियों का है। अधोलोक-ऊर्ध्वलोक के इंद्र, भगवान के भक्त हैं। उनका अपने क्षेत्र में तो अधिकार है ही तिरछे लोक पर भी इंद्रों का अधिकार है।

प्रश्न होता है कि अधिकारों से तात्पर्य क्या है? वे जब चाहें तब वर्षा कर सकते हैं और जब रोकना चाहें, तब रोक सकते हैं। यह सारा अधिकार इंद्रों के हाथ में है। कई बार वर्षा अपने आप भी होती है और देवों के द्वारा भी की जाती है। उसके अलग-अलग कारण बताए गए हैं, किंतु उसके कारणों को मैं नहीं छूना चाहता। पर यह बात अवश्य है कि वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी थे घननामी, और परनामी थे।

तीनों लोक पर सम्यक् दृष्टि जैनियों का कब्जा है। सम्यक् दृष्टि होने का मतलब ही जैन है। सम्यक् दृष्टि जैन या अजैन है। एक परिभाषा तो कल मैंने बताई थी कि जन, जैन और जिन।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'जिनस्य इदमं' अर्थात् जो जिसका फॉलोवर होता है वह उसकी संतान के रूप में माना गया है। जिन के अपत्यरूप से जैन शब्द बनता है। इसका तात्पर्य है जो जिनेश्वर देवों को मानने वाला है। सामान्य भाषा में हम कहते हैं कि जो राग-द्वेष को जीतता है, वह जिन है। जो जिनेश्वर देवों की मान्यता लेकर चलता है एवं राग-द्वेष को जीतने के लिए उपक्रम करता है, वह जैन है। सम्यक् दृष्टि भी राग-द्वेष को जीतने के लिए उद्यत है। उसकी तैयारी में है, अत: वह भी जैन है, चाहे वह किसी भी परिवेश में हो।

वर्तमान में जितने भी इंद्री हैं वे सारे सम्यक् दृष्टि हैं। इतना ही नहीं वे सारे एकाभवतारी भी हैं। यानी वे आने वाले समय में मनुष्य भव पाकर मोक्ष जाने वाले हैं। मनुष्य गति में आएंगे और साधना करके मुक्त हो जाएंगे। अब बोलो सत्ता किसके हाथ में है? मोदी जी के हाथ में है या किसके हाथ में है?

(कई लोग कहते हैं- अमेरिका के हाथ में है)

सारी सत्ता हमारे हाथ में है। हमारी आत्मा सर्वशक्तिमान है। उसी के हाथ में पूरे विश्व की सत्ता है। हम अपने आपको कमजोर नहीं समझें। इंद्री कभी भी बनेंगे तो सम्यक् दृष्टि ही बनेंगे। मिथ्या दृष्टि को वह पदवी मिलना नामुमकिन है। सारी सत्ता सम्यक् दृष्टि के हाथ में क्यों है? क्योंकि वे सहसा किसी का बुरा नहीं करते। करेंगे तो भलाई ही करेंगे। ऐसे भले आदमियों के

हाथ में विश्व की सत्ता होती है।

वे सहसा किसी का बुरा नहीं करते। किसी की बुराई नहीं करते। इसलिए तीर्थंकर भगवान की धारा तीनों लोक में प्रवाहित होती है। भगवान की आज्ञा के खिलाफ इंद्र कोई कार्य नहीं करते। इसलिए तीनों लोक में तीर्थंकर की आज्ञा अनवरत जारी है।

इसलिए वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी थे। आगे कहा गया है कि वे घननामी, परनामी, निराकार, साकार उपयोग सहित सचेतन हैं। इन शब्दों की व्याख्या भी सामान्य नहीं है। व्याख्या बड़ी गंभीर है। यदि दार्शनिकों को लाकर खड़ा कर दें तो बहुत गंभीर चर्चा चालू हो जाएगी कि निर्वाण के बाद उनमें उपयोग रहता है या नहीं रहता है। इसके अलग-अलग मत हैं। दार्शनिक अलग-अलग मान्यताएँ लेकर चलते हैं।

आनंदघन जी की इस कविता ने आगमिक धरातल पर यह साबित कर दिया कि जैनिज्म की मान्यता कहीं से भी खंडित होने वाली नहीं है। वह अखंडित है। तीर्थंकरों ने जो सिद्धांत दिए हैं वे अबाधित हैं। उनको कोई बाधित नहीं कर सकता। कोई खंडित नहीं कर सकता। इसलिए उनका महान उपकार रहा है। हमारा भी सौभाग्य है कि ऐसे कुल में हमें जन्म मिला है जहाँ पर सहज ही वे सिद्धांत प्राप्त हो गए। हमारा सौभाग्य है कि हमें तीर्थंकर देवों की आराधना, साधना करने का अवसर मिला है। आप ध्यान दें, महान पुण्य का योग होता है तो मनुष्य जन्म मिलता है। वैसे मनुष्य जन्म अनेक को मिला होगा, किंतु जो सौभाग्य हमें प्राप्त है वैसा सौभाग्य सारे मानवों को नहीं है। आप उस दृष्टि से विचार करें कि हम कहीं से भी कम पड़ने वाले नहीं हैं। हम जीते हैं। जीत हमारे हाथ में है। बस जीतने के लिए तैयारी करनी होगी।

हमें सारा वातावरण मिल गया। उत्तम मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल, पाँच इंद्रियों का योग, जिनेश्वर देवों की वाणी सुनने का योग, श्रद्धा का योग मिले हुए हैं।

आटा है, घी, शक्कर और पानी भी है। साथ-साथ अग्नि और ड्राई फ्रूट्स भी हैं। अब केवल हलवा बनाने की जरूरत है। यदि बिल्ली आए और आटा-शक्कर आदि चाटकर चली जाए, तो हलवा बनना मुश्किल है। फिर संभव नहीं होगा हलवा बनना। जब तक हाथ में सारी चीजें मौजूद हैं, तब तक

हलवा बना लेना चाहिए। अपना काम कर लेना चाहिए। मौत रूपी बिल्ली आए, उससे पहले अपना काम कर लेना है।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार...

उत्तम त्यागी वह कहलाता है जिसके पास सारे भोग उपलब्ध हों, सारी सुविधाएँ उपलब्ध हों और लात मारकर उन सब को ठुकरा दे। वह कहे कि मुझे इन सब चीजों की कोई जरूरत नहीं है। अब मुझे ये नहीं चाहिए। वह कहे कि मैंने इन सब का बहुत भोग किया। कभी उनसे तृप्ति आई नहीं।

हम खाना खाते हैं तो एक बार लगता है कि तृप्ति आ गई। लगता है कि भूख मिट गई, किंतु सुबह या शाम को जब नजर खाने पर चली जाती है तो लगता है कि भूख लग गई। लगता है कि नहीं खाऊँगा तो शरीर कमजोर पड़ जाएगा। फिर खाने के प्रति नजर दौड़ने लगती है। ऐसे में तृप्ति का गुण नहीं है। तृप्ति अलग है। वह बहुत भिन्न है। तृप्ति त्याग है। त्याग से आत्मा जितनी संतुष्ट होती है उतना भोग से कभी भी नहीं हो सकती।

त्याग करने वाले मुड़कर पीछे नहीं देखते कि मैंने त्याग क्यों कर दिया। वे यह भी नहीं सोचते कि मुझे त्याग करना था या नहीं करना था। जो त्याग दिया वह त्याग दिया। ऐसे वीरों की कहानियाँ हमें सुनने को मिलती हैं। वीरों की कहानियों से प्रेरणा मिलती है कि भोग में लिप्त रहते हुए मैं मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाऊँ। अत: समय रहते हुए सारे भोगों का त्याग कर दूँ। कल मैंने बताया था कि छोड़ना तो पड़ेगा। मौत आने पर छोड़ो या पहले छोड़ो।

एक घर में डाका पड़ा। डाकू 50 करोड़ रुपये ले गए। धन-संपत्ति ले गए। दूसरी तरफ किसी ने एक दिन में 50 करोड़ रुपये दान में दे दिए। जिसके घर में डाका पड़ा उस व्यक्ति को बहुत दु:ख हुआ। वह बहुत पीड़ित हुआ होगा, किंतु जिसने 50 करोड़ रुपये दान मे दे दिये उसके मन में कोई दु:ख नहीं होगा। उसे कोई वेदना नहीं होगी। कोई पीड़ा नहीं होगी। जिसने दान दिया उसका मन बहुत शांत है, संतुष्ट है। यह जीवन की सच्चाई है।

जो दु:खी हुआ उसकी संपत्ति कहाँ से आई। संपत्ति उसकी है या वह संपत्ति से है? बताओ।

(श्रोता- वह संपत्ति उसकी है)

संपत्ति पास है या संपत्ति पास नहीं है कोई मतलब नहीं है। आज का

जमाना संपत्ति का है। व्यक्ति सोचता है कि संपत्ति है तो पूछ है। संपत्ति नहीं है तो कौन किसको पूछने वाला।

माया से माया मिले कर-कर लंबे हाथ...

चमचमाती कार मिले। क्या बोलते हैं उसको?

(श्रोतागण- बीएमडब्ल्यू)

चमचमाती हुई बीएमडब्ल्यू कार में कोई अधिकारी आने वाला हो। उसके आने की सूचना आपको पहले से मिल जाए तो उस दिन सामायिक होगी या नहीं? आपको सूचना मिल जाये कि 9.45 पर मुख्यमंत्री आने वाले हैं तो उस समय सामायिक होगी क्या? उस दिन सामायिक शायद न हो। क्योंकि 9.45 पर मुख्यमंत्री आने वाले हैं तो उसके लिए तैयार रहना है। उसको क्या कहते हैं, मैं कभी-कभी भूल जाता हूँ।

(सभा में बैठे लोगों की तरफ से अलग-अलग आवाज आती है। किसी ने कहा वेलकम तो किसी ने कहा कि स्वागत करना)

उनका वेलकम करने में पीछे नहीं रहेंगे। ऐसा मौका चूकना कांई है। उनके साथ फोटो खिंच जाए तो जन्म सफल हो जाए।

उनका क्या नाम है जो स्वतंत्रता आंदोलन में शहीद हुए थे? ऐसा बताया जाता है कि राजगुरु। उनकी एक ही फोटो है। उनकी अलग-अलग फोटुएँ हैं ही नहीं। केवल एक फोटो है। उनको फोटो से कोई लेना-देना नहीं था। उन्होंने काम किया। उनकी केवल एक फोटो उपलब्ध है। हम फोटो के आगे नम जाते हैं, किंतु फोटो रहेगी कहाँ पर। एल्बम में बंद करके रखी रह जाएगी या एक दिन अखबारों में आएगी और दूसरे दिन रद्दी में बेच देंगे।

आपकी वह फोटो कितने में बिकी?

(श्रोतागण- दस रुपये किलो)

आपको मिला क्या। दस रुपये में तो कई अखबार बिके। आपकी फोटो का दो पैसा भी मिलेगा या नहीं मिलेगा। हमारा मन चाहता है कि कोई मेरी फोटो खींच लें। भले ही मन राजी कर लो, किंतु वह काम आने वाली नहीं है। केवल दो पैसे मिलने वाले हैं आपकी फोटो के।

बादशाह अकबर ने एक दिन बीरबल से पूछा कि संसार में सबसे बुद्धिमान कौन है, तो बीरबल ने कहा कि बाणिया सबसे बुद्धिमान होता है।

गौतम जी चौधरी जैसे सज्जन वहाँ बैठे होंगे, तो बादशाह ने कहा कि खड़े हो जाइए। गौतम जी खड़े मत होना। मैं खड़ा नहीं कर रहा हूँ। बादशाह खड़े कर रहे हैं। उसके बाद शहजादे को बुलाया गया और उससे कहा गया कि इसकी कीमत आँकिए। शहजादे की कीमत आँकने की बात सुनकर वणिक को दुविधा हो गई कि उसकी क्या कीमत आँके। यदि कम आँके तो बादशाह खफा और ज्यादा आँक दे तो चापलूसी होगी। उसने कहा कि हुजूर मुझे थोड़ा समय चाहिए। बादशाह ने उसको 7 दिन की मोहलत दी और कहा कि एक सप्ताह बाद आपको यहीं पर जवाब देना है।

बाणिया मन ही मन सोच रहा है कि क्या जवाब दूंगा। जवाब नहीं सूझने से वह परेशान हो गया। वह घर आया। उसको खाने के लिए कहा गया तो उसने कहा कि मुझे नहीं खाना है। मने भूख कोनी। उसको भूख कांई की लगे। चिंता में उसकी भूख चली गई।

एक जमाने में गाँव के बीच में हथाई होती थी। वहाँ पर सारे लोग बैठते थे। यदि कोई वहाँ नहीं जाए तो लोग बुलाने के लिए आ जाते थे। सेठ जी वहाँ जाकर किनारे बैठ गए। वे बैठ गये किंतु उनका मन नहीं लग रहा था। एक बुजुर्ग की निगाह उन पर चली गई। उसने पूछा कि सेठ आज कांई बात है थे बोलो कोनी। उसने कहा कि भाई चुपचाप क्यों बैठे हो, तो उसने कहा कि आज मेरा दिमाग काम नहीं कर रहा है। बुजुर्ग ने कहा- ऐसी क्या बात है कि दिमाग काम नहीं कर रहा है। बुजुर्ग के पूछने पर उसने कहा कि बहुत भारी समस्या है। बजुर्ग ने कहा कि पहेलियाँ मत बुझाओ, तुम्हारी समस्या क्या है उसे बताओ। बुजुर्ग ने कहा कि समस्या सामने आये तो उसका समाधान निकले। उसने बादशाह की बात बता दी तो बुजुर्ग ने कहा कि इसकी चिंता तुम छोड़ दो। यह चिंता की बात नहीं है। इसका समाधान हो जाएगा। तुम मेरे को बादशाह के वहाँ साथ लेकर चलना। मैं अपने आप समाधान कर दूंगा। बाणिया थोड़ा आश्वस्त तो हुआ पर उसे पूरा विश्वास नहीं हो रहा था। वह डर रहा था कि मैं फँसा हुआ तो नहीं रह जाऊँगा।

आठवें दिन सेठ जी गये। उनके साथ बुजुर्ग भी गया। दोनों बड़े ठाठ-बाट से पहुँचे। ठीक समय पर दरबार लगा। लोग अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। बादशाह पहुँचे, अपने सिंहासन पर आरूढ़ हुए। पेशकार दरबार में

आया और ऐलान किया कि शहजादा की कीमत आँकी जाने वाली है। सेठ से कहा गया कि आप उसकी कीमत आँकिए तो उसने कहा कि हमारे बुजुर्ग बैठे हुए हैं और बड़ों के सामने मुझे बोलना ठीक नहीं है। शहजादा की कीमत का समाधान ये ही देंगे तो बादशाह ने कहा कि मुझे तो समाधान चाहिए।

बुजुर्ग खड़ा हुआ। उसके हाथ में डंडी थी। उसको टेकता हुआ वह शहजादा के पास गया और इधर-उधर, आगे-पीछे से शहजादे को देखा। उसने अपनी गरदन ऊपर उठाकर देखा। थे बोलो कि मैं बोलूं, निहाल जी? थे बोलो या मैं बोलूं?

(उन्होंने कहा कि भगवन् आप ही बताओ)

उस बुजुर्ग ने कहा कि हुजूर इनके भाग्य का तो मैं कह नहीं सकता। शहजादा की कीमत दो टका है।

पारा गिर गया। शेयर मार्केट एकदम डाउन हो गया। शहजादा की कीमत दो टका हो जाये तो शेयर बाजार कहाँ से उठे। बादशाह ने कहा कि दो टका कीमत कैसे आँकी। उसने इशारे से बताया यानी भाग्य की बात तो मैं कह नहीं सकता बाकी शाहजहाँ की कीमत दो टका है। उनको बाजार में भेज दिया जाये तो दो टका से अधिक उनकी कीमत नहीं है। यह कीमत भी मैंने सुंदर कपड़े और आभूषण की आँकी है।

(श्रोतागण हँसने लगते हैं)

हँसने की बात नहीं है। समझ लें जो भी बात समझ आई हो। बात स्पष्ट है, किसका भाग्य, किसकी पुण्यवानी कब जग जाए, कहना कठिन है। पर हमारे शरीर की क्या कीमत है? मरने के बाद दस मन लकड़ी उसके लिए खर्च करनी पड़ेगी? उसका पैसा किसको देना पड़ेगा? घर का ही पैसा होगा। ज्यादा से ज्यादा चंदन की लकड़ी से जला देंगे, पर पैसा तो घर का ही लगने वाला है।

मानव तन का मोल, प्यारे इक कौड़ी...

यदि भाग्य प्रबल नहीं है तो इस तन की कोई कीमत नहीं है। धर्म की आराधना करके अपने जीवन को सफल कर सकते हैं। मनुष्य जन्म सफल हो जाएगा। अन्यथा सूने घर का पावणा जिम आए तिम जाए।

किसी सूने घर में मेहमान बनकर गये तो वहाँ क्या मिलने वाला है?

वहाँ जाकर खाली ही आना पड़ेगा। वहाँ कुछ मिलने वाला नहीं है। जिस घर में कोई रह रहा है उस घर का मेहमान बनकर जाएंगे, पावणा बन जाएंगे तो वहाँ मीठा भोजन मिलेगा। वहाँ पर मान-सम्मान होगा। वह धर्म की आराधना से संभव है।

इसलिए साथियो! खाली पैसे के पीछे नहीं भागें। धन के पीछे मत दौड़ें। पैसा यहीं रह जाने वाला है। पैसों से थोड़े दिनों के लिए नाम और यश मिल जाएगा। मिल ही जाये कोई जरूरी नहीं है। धर्म रहेगा तो उसकी ऊर्जा आपको मिलती रहेगी। उससे सबसे पहला लाभ यह होगा कि नाम और यश की कामना खत्म हो जाएगी। इनकी चाह नहीं रहेगी। जो नाम और यश की चाह नहीं रखता, उसको वर्षों ही नहीं पीढ़ियों तक लोग याद करते हैं।

जैसे राम को आज भी याद कर रहे हैं। भगवान महावीर को याद कर रहे हैं। हरिश्चंद्र को याद कर रहे हैं। नाम के बल पर राजा तो कितने ही हो गये, ऐसे राजाओं की कमी नहीं है। राजाओं की लाइन लगी हुई है। राम को जान रहे हैं। उनके पिता दशरथ को भी जान रहे हैं। राम के पीछे दशरथ को जान रहे हैं। यदि राम न होते तो दशरथ हमारी आँखों से ओझल हो गए होते। राम के कारण ही दशरथ का नाम हमारे कान सुन रहे हैं। राम ने अच्छा कार्य किया तो पीढ़ियों तक उनको याद किया जा रहा है।

अरे परदेशी जरा काम कर जा, जाते-जाते पैदा यहाँ नाम कर जा।

ऐसा काम करो कि जाते-जाते नाम पैदा हो जाए। अभी नाम पैदा नहीं हुआ है। अभी तो किसी ने नाम रख दिया है। नाम पैदा कब होगा? महावीर नाम पैदाइशी नहीं है। रखा हुआ नाम नहीं है। उनका नाम रखा गया था वर्धमान। उनकी महावीरता ने उनको महावीर बना दिया। वह नाम पैदा हुआ। इंद्रभूति नाम रखा हुआ है। गोत्र गौतम है, किंतु गौतम नाम पैदा हो गया। नाम वर्षों तक तब जिंदा रहेगा, जब नाम पैदा होगा। रखा हुआ या लिखा हुआ नाम अमर नहीं होगा। जो नाम पैदा हो जाएगा वह अमर होगा। इसलिए हम भी कुछ ऐसा करें जिसे हमारा भी नाम अमर हो। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

12 अक्टूबर, 2021

12

यह जन्म हारें नहीं, जीतें

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे...

घननामी का तात्पर्य है कि जो बहुत ठोस हो। सुदृढ़ हो। उसके अंदर एक कील गाड़ना भी संभव नहीं हो। घननामी का एक तात्पर्य यह भी है कि कर्मबंधन से रहित अवस्था होना। सिद्ध भगवान घननामी हैं। उनके आत्मप्रदेशों को कोई खिसकाने में, हिलाने में समर्थ नहीं है। इस प्रकार घननामी अवस्था का तात्पर्य सुदृढ़ता से है।

शरीर के हर अवयय में आत्मप्रदेश व्याप्त है। उसी से देह में क्रियात्मकता दृष्टिगत होती है। सर्वज्ञ भगवान जब योग निरोध करते हैं, उस समय आत्मप्रदेशों को घनीभूत किया जाता है। शरीर के भीतर पेट, मुँह आदि में जो पोलार है, उस पोलार वाले भाग को आत्मप्रदेशों से भरने पर शरीर के दो तिहाई भाग जितनी अवगाहना में आत्मप्रदेश घनीभूत हो जाते हैं।

भगवान से पूछा गया कि भगवन्! सिद्ध भगवान कहाँ पर अवस्थित हैं, कहाँ पर विराजमान हैं तो भगवान से उत्तर मिला कि शरीर को यहाँ छोड़कर सिद्ध क्षेत्र में पहुँचकर लोकाग्र में स्थित हो जाते हैं, वहीं पर सिद्ध भगवान अवस्थित हो जाते हैं। क्या हम सिद्ध होने का तात्पर्य अटल अवगाहना रूप अवस्थित होना समझें? ऐसा समझा जा सकता है। वे वहाँ सिद्धत्व प्राप्ति के साथ अटल अवगाहना रूप अवस्थित हो जाते हैं। वे इतने सुदृढ़ हो जाते हैं कि न उनको हिलाया जा सकता है, न खिसकाया ही जा सकता है। संसार की किसी भी ताकत से उन्हें खिसकाया नहीं जा सकता।

हाथी में खूब बल माना गया है किंतु हजारों, लाखों और करोड़ों हाथी मिलकर भी सिद्ध भगवान के आत्मप्रदेश को हिलाने में समर्थ नहीं हो

सकते। चक्रवर्ती को बहुत सामर्थ्यवान माना गया है। उनमें इतनी ताकत मानी गई है कि वे हीरे को भी हाथ से मसलकर चूर सकते हैं। उसको एक चुटकी में पीस देते हैं। चूर देते हैं। लेकिन ऐसे बहुत सारे चक्रवर्ती भी एक साथ मिलकर उनके आत्मप्रदेशों को हिलाने का प्रयत्न करें तो वे उसे प्रकंपित करने में भी समर्थ नहीं होते। वे उसको हिलाने में सफल नहीं होते हैं। ऐसी अटल अवगाहना में, घनीभूत अवस्था में जिनका विराजना हो जाता है, वह होता है घननामी।

उनको ये घननामी अवस्था प्राप्त कैसे हुई?

घननामी, परनामी रे...

उन्होंने पर को नमा दिया। श्रीमद् आचारांग सूत्र में कहा गया है कि जो एक को नमा लेता है वह सबको नमा लेता है। उदाहरण के रूप में बहुत आसानी से समझ सकते हैं कि जिसने एक अहंकार को नमा लिया वह सारे कषायों को नमा सकता है। अहंकार उपलक्षण है। उसके कथन से क्रोध, माया, लोभ भी स्वीकृत है। यदि हमने इनको नमा लिया तो अहंकार भी नमेगा और उसके साथ माया, क्रोध व लोभ भी नमेंगे। यदि हमने किसी एक कषाय को संपूर्ण रूप से नमा लिया तो सभी कषायों को नमाने में समर्थ होंगे।

क्रोध, मान-माया और लोभ के भी चार-चार भेद हैं। अनुंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानवरण और चौथा संज्वलन। इन्हें चौकड़ी कहते हैं। चौकड़ी यानी चार। अनंतानुबंधी आदि चारों के क्रोध, मान-माया, लोभ के भेद से चार गुणित चार के हिसाब से 16 भेद हो जाते हैं। जब कोई अनंतानुबंधी चौकड़ी की बात करता है तो उसका अर्थ अनंतानुबंधी क्रोध, मान-माया, लोभ से होता है। 'जे एगे नामे से सव्वे नामे' के अनुसार यह बात निश्चित है कि जिसने एक अनंतानुबंधी को हिला दिया, उसको नमा लिया वह अन्य सारे कषायों को नमा लेगा। दूसरी सभी चौकड़ियों को नमाकर वह उन पर अपनी प्रभुता हासिल करने में समर्थ हो जाएगा। वह अपनी चेतना को, स्वयं को जानने में समर्थ हो जाएगा। पर क्रोध, मान-माया और लोभ चाहे अनंतानुबंधी रूप हो चाहे अप्रत्याख्यानी या प्रत्याख्यानवरण अथवा संज्वलन रूप हो, ये चारों बहुत बारीक हैं। एक छोटा-सा कंकड़ गेहूं के साथ पिस जाए तो वह पूरे आटे में किरकिरी पैदा कर देगा। कर देगा या नहीं?

(श्रोतागण- कर देता है)

कंकड़ चाहे छोटा भी क्यों न हो, उससे तो किरकिर होती है। वैसे ही कषाय चाहे कितना भी कम हो, कमतर हो, उससे निखालिस अवस्था नहीं आएगी। एकदम परिशुद्ध अवस्था नहीं आएगी। एकदम पारदर्शी अवस्था नहीं आएगी।

निर्ग्रंथ के कई भेद किए गए। कषाय कुशील निर्ग्रंथ की परिभाषा करते हुए बताया जाता है कि जो किसी प्रकार के दोषों का सेवन नहीं करता हो, वह कषाय कुशील निर्ग्रंथ होता है। कषाय कुशील निर्ग्रंथ न मूल गुण-दोषों का सेवन करता है और न उत्तर गुण-दोषों का ही सेवन करता है।

आपको आज विषय भारी तो नहीं पड़ा रहा है? समझ तो आ रहा है न? किसको कहते हैं कषाय कुशील निर्ग्रंथ?

जो किसी प्रकार के दोषों का सेवन नहीं करते हों, उन्हें कषाय कुशील निर्ग्रंथ कहते हैं। तीर्थंकर दीक्षा लेने के बाद से छद्मस्थावस्था तक हमेशा कषाय कुशील निर्ग्रंथ बने रहते हैं। कषाय कुशील यानी कषाय के कारण से जिसका शील कुशील बना हुआ है। अर्थात् कषाय की मौजूदगी बनी हुई है। कषाय के कारण उनका शील चारित्र अभी परिपूर्ण, निर्मल नहीं बन पाया होता है। अभी भी क्रोध आदि सूक्ष्म रूप से मौजूद है। वह आत्मप्रदेशों में मिला हुआ है। जब तक क्रोध, मान-माया, लोभ आत्मा से लगे रहेंगे, बने रहेंगे, तब तक चारित्र की परिपूर्ण पवित्रता नहीं हो सकती।

10वाँ जीव स्थान सूक्ष्म लोभ का है। बहुत थोड़े समय के लिए एकदम हल्की-सी झांई उसकी होती है। वह भले ही दिखती नहीं है, किंतु आत्मा में रही हुई होती है। जब तक वह सूक्ष्म झांई भी बनी रहती है, तब तक जीव वीतरागी नहीं बन सकता। अपने शुद्ध स्वरूप को उपलब्ध नहीं कर सकता। यह कितनी बारीक बात है, कितनी सूक्ष्म बात है। हम तो मानते हैं कि छोटा-मोटा क्रोध कर लिया तो क्या फर्क पड़ता है, किंतु छोटा-मोटा क्रोध भी कर्मों के बंध का कारण बनता है। जैसे गाय का पोटा जमीन पर गिरता है तो नीचे से थोड़ी मिट्टी लेकर उठता है, वैसे ही छोटा-मोटा क्रोध भी कर्मों का बंध करके उठता है। वह उनसे छूटने वाला नहीं है। वह नये कर्मों का उपार्जन कराने वाला होता है।

11वाँ और 12वाँ जीव स्थान वीतरागता का है। वहाँ पर क्रोध नहीं है। मान नहीं है। माया और लोभ भी नहीं है। वहाँ इन कषायों में से किसी का भी उदय नहीं है। उस समय के चारित्र का नाम यथाख्यात है। यथाख्यात का तात्पर्य आत्मा का जैसा स्वरूप बताया गया है, वैसा प्रकट हो जाना है। आत्मा का जैसा शुद्ध स्वरूप बताया गया है, वैसी शुद्धता अपने भीतर प्रकट हो जाना यथाख्यात होता है। यथाख्यात चारित्र भी दो प्रकार का होता है। एक उपशम यथाख्यात चारित्र दूसरा क्षायिक यथाख्यात चारित्र।

गंदे पानी में फिटकिरी घुमा देने से थोड़ी देर बाद कचरा नीचे जम जाता है, ऊपर का पानी साफ रहता है। ऊपर का पानी एकदम साफ हो जाता है। जो उपशम से यथाख्यात चारित्र प्राप्त होता है, उसमें कचरा यानी कषाय भीतर दबा हुआ पड़ा रहता है। क्रोध आदि उदय में नहीं होते। ऊपर से एकदम साफ, पूरा साफ, क्लीयर, पारदर्शी बन जाता है। क्षायिक यथाख्यात चारित्र में कोई कषाय रहता ही नहीं, वह जीव निश्चित रूप से सर्वज्ञ बनेगा।

पानी में कचरा नीचे पड़ा हुआ होगा तो हवा के झोंके से वह पानी में घुल जाएगा अथवा एक निश्चित समय के बाद कचरा पानी में घुलकर पानी को पुन: गंदा बना देगा। वैसे ही उपशम यथाख्यात चारित्र में जो कषायों के कचरे को उपशमित किया गया था, वह एक अवधि के बाद पुन: उभर जाता है, जिससे जीव पुन: रागी, सकषायी बन जाता है। परिणामस्वरूप लंबे समय तक वह संसार में रह सकता है, किंतु यथाख्यात चारित्र में अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानवरण और संज्वलन ये चारों प्रकार के कषाय व मोह कर्म का समूल क्षय हो जाता है। इसे यूँ समझना चाहिए कि उक्त कर्मों के संपूर्ण नष्ट होने पर ही क्षायिक यथाख्यात चारित्र का प्रकटीकरण होता है। जिससे उस जीव को कभी उन कर्मों का उदय होगा ही नहीं। उसी स्थिति में उसका चारित्र दर्पण के समान पूर्णतया पारदर्शी बन जाता है। उसका जीवन काँच जैसा बन जाता है। फिर थोड़े ही समय में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अंतराय कर्मों का क्षय करके वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अवस्था को प्राप्त कर लेता है। कहने में कितनी देर लगी और उस अवस्था को प्राप्त करने में कितना समय लगेगा? उस अवस्था को प्राप्त करने में कितना समय लगेगा?

(श्रोतागण– कुछ भी नहीं)

जो बातें हमने सुनी हैं उस अवस्था को प्राप्त करने में बहुत लंबा समय भी लग सकता है और जितना समय कहने में लगा, उससे कम समय में भी वह अवस्था प्राप्त हो सकती है।

तुलसीदास जी कहते हैं-

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की कटे कोटि अपराध।।

उस अवस्था को प्राप्त करने में एक सामायिक जितना भी समय नहीं चाहिए। आधी सामायिक जितना भी नहीं, आधी से आधी सामायिक का भी समय नहीं चाहिए। उससे भी बहुत कम समय में सारे कर्मों का क्षय करने की शक्ति हमारी आत्मा में रही हुई है। हम इतनी शक्ति के मालिक हैं फिर भी भिखारी बने हुए हैं। भिखारी की तरह भीख माँग रहे हैं। इसका कारण है कि हम अपने भीतर की शक्ति की पहचान नहीं कर पाए। यह मनुष्य जन्म हमें पहचान कराने के लिए बहुत आसान स्थान है। ये बहुत आसान जगह है। बहुत आसानी से अपनी पहचान कर सकते हैं कि मैं कौन हूँ।

भगवान महावीर की आत्मा भी नयसार के भव में मनुष्य रूप में थी, किंतु उस समय उसने जाना कि मैं कौन हूँ। जो कर्म बँधे हुए थे उनको चुकाना जरूरी था। उनको भोगना जरूरी था। जब तक जीव संसार में रहता है, तब तक कुछ नये कर्मों का उपार्जन भी होता रहता है। जैसे स्नान करने के बाद आँधी आने से शरीर पर धूल लग जाती है, वैसे ही कितना भी कुछ उपाय कर लो परिपूर्ण कर्म बंधन की प्रक्रिया रुकती नहीं है। मन से, वचन से व काय योग से प्रवृत्त होते रहते हैं। उस प्रवर्तन से कर्मों का बंधन भी आत्मा के साथ होता रहता है।

भगवान महावीर की यात्रा चली और चलती रही। कभी उनका गुस्सा कम हुआ और कभी हटा। फिर कभी थोड़ा कम हुआ। जैसे कुश्ती में पहलवानों के बीच उठा-पटक चलती रहती है, वैसे ही उनके साथ होता रहा। कभी कोई जीत जाता कभी कोई हार जाता। उठा-पटक चलती रही। कभी आत्मा का उत्कर्ष होता तो कभी कर्म उनको दबोच लेते। हमारी कहानी भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की है। उसका हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं कि कभी-कभी विचार बहुत अच्छे आते हैं और थोड़ी देर में चले जाते हैं। उसके

बदले बुरे विचार आ जाते हैं। आप देख सकते हैं कि कभी सूर्य खूब चमकता है और कई बार उसके सामने बादल आ जाते हैं। बादल सूर्य की किरणों को छिपा लेते हैं। किरणों को अपने से आवृत कर लेते हैं। सूर्य का दर्शन भी नहीं होने देते। कई बार किरणें भी नहीं दिखतीं। ऐसी हालत हमारी भी कई बार हुई है। हम भी कर्मों से आवृत होते रहे हैं। कई बार हमारे भीतर जोश भी जगा, मन तैयार भी हुआ, पर कई बार निढाल भी हो गए। हम अपने वर्तमान जीवन में देख सकते है कि कई बार हमारा जोश ऐसा होता है कि व्याख्यान में अभी खड़ा हो जाऊँ, गुरुदेव से अभी दीक्षा पच्चक्ख लूँ और थोड़े समय के बाद उत्साह ढीला पड़ जाता है। साधु बन भी गए तो जो उत्साह अभी आपके भीतर हो रहा है वैसा परिणाम आगे सदा बना रहेगा, यह कहना बहुत कठिन है।

यदि उत्साह बना रहता तो भगवान महावीर को कहना नहीं पड़ता कि ''जाए सद्धाए निक्खंतो तमेव अणुपालेज्जा'' अर्थात् हे साधक! तुम जिस उत्साह से, जिस उमंग से, जिन उत्कर्ष भावों से साधु बन रहे हो, त्याग-प्रत्याख्यान स्वीकार कर रहे हो, वह उत्साह, उमंग अंतिम समय तक बना रहना चाहिए। बहुत-से साधु उत्साह में रहते भी होंगे, पर कई साधु अप-डाउन भी होते रहते हैं। सबकी अध्यवसाय अवस्था एक समान नहीं रहती।

धन्ना अणगार जिस दिन दीक्षित हुए उसी दिन से उन्होंने बेले-बेले की तपस्या करते हुए पारणे में आयंबिल करने की प्रतिज्ञा ली। आयंबिल के पारणे में जो आहार मिलता उसको ग्रहण करते। ऐसा करते हुए अंतिम समय तक उनका उल्लास वैसा बना रहा।

एक बार भगवान महावीर से मगध सम्राट श्रेणिक ने पूछा कि भगवन् 14 हजार साधुओं में से कर्मों की महान निर्जरा करने वाला साधु कौन है? भगवान ने गौतम स्वामी और सुधर्मा स्वामी का नाम नहीं बताया। वे गणधर थे फिर भी भगवान महावीर ने धन्ना अणगार का नाम बताया। कहा कि धन्ना अणगार कर्मों की महान निर्जरा करने वाले हैं।

गौतम स्वामी के लिए ऐसा बताया जाता है कि उन्होंने कुछ साधुओं को दीक्षा दी। मार्गवर्ती पड़ाव में उनको शिक्षा दी कि देखो, अब हम बहुत जल्दी भगवान महावीर के वहाँ पहुँचने वाले हैं। वहाँ बैठने का ध्यान रखना, क्योंकि वहाँ नवदीक्षित साधुओं के बैठने का स्थान अलग होता है और 14

पूर्वी मुनियों के बैठने का स्थान अलग होता है। इसी तरह सामान्य साधुओं के बैठने का स्थान अलग होता है और केवलियों के बैठने का स्थान भी अलग होता है। तुम सबको नवदीक्षित मुनियों की बैठक में बैठना है और अनुशासन से बैठना है।

हम लोग कैसे बैठते हैं? जैसा मन में आये वैसे बैठ जाते हैं। एक दिन अपनी लाइन को देखो कि पीछे सपाट तो नहीं है। तीर्थंकरों के वहाँ सब अनुशासित होते थे। उनके वहाँ यह बहुत सामान्य बात थी। हमें भी इन सब बातों के लिए बार-बार कहे जाने की अपेक्षा नहीं होनी चाहिए। यह हमारी स्वाभाविक प्रक्रिया होनी चाहिए।

स्कूल में एक के पीछे एक बच्चे बैठ जाते हैं। जब स्कूल में प्रार्थना होती है तब वे एक के पीछे एक अपने आप खड़े हो जाते हैं। आपने कभी देखा की नहीं!

(श्रोतागण- देखा है)

हम लोग बड़े हो गये। अनुभवी हो गये, ज्ञानी हो गये। हमें जानना चाहिए कि कैसे बैठना है और कैसे व्याख्यान सुनना है। कई लोग ऐसी सोच वाले भी होते हैं कि कैसे भी बैठे कांई फर्क पड़े। सुनना तो व्याख्यान ही है। यह बात ठीक हो भी सकती है कि सुनना तो व्याख्यान ही है, किंतु बाहर का कोई आदमी आकर आपकी सभा को देखेगा तो सोचेगा कि यहाँ बैठने की भी सभ्यता नहीं है। यहाँ धर्मसभा में जैसे-तैसे लोग बैठे हुए हैं। वह सोचेगा कि यहाँ के लोग कैसे हैं, जिनको सही तरह से बैठना भी नहीं आता है। एक इस तरफ बैठा हुआ है और दूसरा उस तरफ बैठा हुआ है। ऐसा दृश्य देखकर उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा? ध्यान रहे, छोटी-छोटी बातें भी दूसरों को प्रभावित करने वाली होती हैं।

रुचि के 10 भेद बताये हैं। उनमें एक तो क्रिया रुचि भी है, जिसके माध्यम से सम्यक् दृष्टि की प्राप्ति होती है। क्रिया रुचि का अर्थ यह है कि श्रावक और साधुओं की क्रिया देखकर प्रभावित हो जाना। साधुओं और श्रावकों की चर्या देखकर, उनके चलने, बैठने के रूप को देखकर, उनके बात करने के तरीके को देखकर प्रभावित होना। उससे जो विशुद्ध भाव बनते हैं, उसमें समकित प्रकट होना, क्रिया रुचि कहलाता है। हम सब अपने आपको

तौलते रहें और दर्पण में देखते रहें कि हमारे चलने व बोलने का तरीका कैसा है! स्थानक का आसन है तो सामायिक से उठने के बाद उसका उपयोग किस प्रकार से किया! उसको वहीं छोड़कर चले गये या समेटकर उस स्थान पर रखा जिस स्थान से लाये थे! घर के आसन जैसा ही उसको समेटते हैं या कैसे भी रख देते हैं! घर के आसन को ठीक से समेटने की कोशिश करते हैं। धर्मस्थान का है तो जहाँ बैठे वहीं छोड़कर तो नहीं चले गये!

यह समीक्षा केवल यह देखने के लिए कि भीतर विचार प्रवाह कैसा चल रहा है! ऐसा नहीं हो कि संघ ने व्यवस्था कर दी तो हम उसको क्यों समेटें। ऐसा कभी भी नहीं सोचना चाहिए कि संघ के आदमी उसको सही से रखेंगे। उसका उपयोग किया है तो दायित्व बनता है कि उसको समेटकर सही स्थान पर रख दें। हमारा दायित्व बनता है कि नहीं बनता है?

(श्रोतागण- दायित्व बनता है)

फिर ऐसा क्यों नहीं करते हो।

शुरुआती दौर में मैंने दो बातें कही थीं कि नानेश रत्नम् के अंदर कुर्सी आनी नहीं चाहिए और आ गई तो मंगल पाठ के बाद यहाँ दिखनी नहीं चाहिए। नये-नये आदमी आते रहते हैं। उनको अता-पता नहीं है। लाकर बैठ जाते हैं और फिर वहीं छोड़कर चले जाते हैं। बाद में उनको कौन उठाएगा? साधु उठाएंगे क्या? वह साधु की निश्रा में नहीं है। जहाँ साधु के सोने का स्थान है, यदि वहाँ रखेंगे तो साधुओं को कहना पड़ेगा कि ये कुर्सी यहाँ से हटा लो। ऐसा उन्हें क्यों कहना पड़े। ये बात समझ में नहीं आती है कि जब लोग बैठने के लिए कुर्सी ला सकते हैं तो उसको वापस ले जाने में क्या दिक्कत होती है।

एक बार और ध्यान में लें कि कुर्सी पर बैठना आराम नहीं हराम है। अत: आपको सोच लेना चाहिए कि हमारे भीतर हराम नहीं घुसे। हराम यानी कुर्सियों से प्रमाद बढ़ता है। यह बात बहनों के लिए भी लागू होती है।

गंगाशहर-भीनासर में बहनों के लिए लगी कुर्सी हटा दी गई थी। उनके लिए विद्यापीठ के पाट लगा दिए गए थे। उन पर उनकी बैठक होती थी। सभा की अपनी सभ्यता होती है। जो नीचे नहीं बैठ पाते हैं, जिनकी लाचारी है वे बिना सहारे की कुर्सी पर बैठने की कोशिश करें। यदि किसी कारण से कुर्सी मिल गई तो जल्दी से सहारा लेने की कोशिश नहीं करना। सहारा से 'स' को

अलग कर दो तो क्या बचेगा। 'हारा' यानी सहारा लेने वाला मन से हार गया। आपको हारना है क्या?

हम जीतने के लिए यहाँ आये हैं या हारने के लिए?

(श्रोतागण– जीतने के लिए यहाँ आये हैं)

शायद जयपुर की बात है। अटल बिहारी वाजपेयी राजनैतिक सभा को संबोधित करने के लिए आये थे। वहाँ के लोगों ने उनके स्वागत में इतनी माला पहना दी कि उनका मुँह छिप गया, उनकी गरदन छिप गई। उन्होंने सारी माला को अपनी गरदन से उतारकर टेबल पर रखा और कहा कि मैं यहाँ हार के लिए नहीं, जीतने के लिए आया हूँ। माला का दूसरा नाम है हार। इसलिए उन्होंने कहा कि मैं यहाँ हारने के लिए नहीं, जीतने के लिए आया हूँ।

हम यहाँ किसलिए आये? मन को मजबूत बनाने के लिए या कमजोर करने के लिए? मन से हारने के लिए या जीतने के लिए?

यहाँ आने के बाद मनोबल बढ़ना चाहिए। मनोबल मजबूत होना चाहिए। जब तक मनोबल सुदृढ़ नहीं होगा, तब तक घननामी परनामी होना बहुत कठिन है।

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे...

हम पहले से ही कमजोर हैं। क्रोध, मान आदि के सामने घुटने टेकने वाले हैं। उनके साथ मुकाबला करने में समर्थ नहीं हो पाते क्योंकि तथाभूत मनोबल नहीं है। धर्मस्थान, धार्मिक क्रिया मन को बल देने वाली होती है। नैतिकता, ईमानदारी बल देने वाली होती है। ये दोनों सुरक्षित रहेंगे तो आत्मा को, मन को, भावों को कोई भी कमजोर करने में समर्थ नहीं हो सकता। हमें इन दोनों को सुरक्षित रखना है।

नमिराज ऋषि दीक्षा के लिए तत्पर हो गये। उनका लक्ष्य बना कि मुझे साधु बनना है। प्रश्न होता है कि उनके भीतर ये जागरण कैसे हुआ? कंकणों की ध्वनि के संदर्भ में उनकी अनुप्रेक्षा में यह तथ्य उभरा था कि ''बहुजन सम्मेलने प्राय: आपद'' अर्थात् जहाँ समुदाय होता है वहाँ समस्याएँ खड़ी होती हैं। अकेले व्यक्ति को कोई समस्या नहीं होती। बताओ, समस्या हमने पैदा की या किसी दूसरे ने?

(श्रोतागण– समस्या परिवार वालों ने पैदा की)

परिवार वालों ने कैसे की? परिवार वालों ने आपकी शादी कर दी तो एक के दो गये। मान लो कि परिवार वालों ने आपको एक से दो कर दिया, लेकिन दो को चार किसने किया? दो के चार करने वाले आप स्वयं हैं। ये तो आपने अपनी मरजी से किया है। एक के दो बना दिया, किंतु आप दो के चार क्यों बने? नमिराज को एकत्व भावना में लगा कि आत्मा शाश्वत है।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार...

नमिराज घर से निकले। वे उद्यान में पहुँच गये। स्पष्ट है कि दीक्षा लेनी है। यह दृश्य देखकर तहलका मच गया। लोग विलाप कर रहे हैं। गली-गली में, घर-घर में लोग विलाप कर रहे हैं। इससे जान सकते हैं कि नमिराज का सुराज कैसा था। नमिराज का व्यवहार कैसा था। उनका चारित्र कैसा था। जिसने सबको सुख से जीने की राह बताई हो, सबको सुख से जीने का संबल दिया हो, जो सबके सुख और दु:ख में साथ खड़ा रहा हो, वैसे व्यक्ति के जाने पर कौन नहीं दु:खी होगा?

आप लोगों ने टी.वी. पर रामायण देखी होगी। चूकने का काम बहुत कम है। टी.वी. पर रामायण आ जाये तो देखना क्यों नहीं। पहली बार कुछ वर्षों पहले आई थी। दूसरी बार कोरोना काल में भी चालू हो गई। उस समय काम था नहीं तो बहुतों ने देखी होगी। कैकेयी ने राम से कहा कि मैंने तुम्हारे पिता से ऐसा वरदान माँगा है। वे अपने मुँह से आपको कहना नहीं चाहते। राम ने वरदान के बारे में सुना तो तत्काल ठान लिया कि 'रघुकुल रीत सदा चलि आई, प्राण जाये पर वचन न जाई।'

हमारी रीत कैसी है? हमारे वचन का कितना महत्त्व है? कितना महत्त्व है बताओ।

महामंत्री जी ने बोला तो निहाल जी खड़े हो गये और दोनों ने एक साथ मासखमण पच्चक्ख लिया। दोनों ने तपस्या पूरी कर ली। दोनों ने सोच लिया कि प्राण जाये पर वचन नहीं जाये। इस प्रकार उनका पच्चक्खाण पूरा हो गया।

राम ने अयोध्या त्याग का विचार कर लिया। कहते हैं कि वे वनवासी पोशाक पहनकर जाने लगे तो लक्ष्मण और सीता साथ हो गये। राम ने उन दोनों को समझाने का प्रयत्न किया, किंतु दोनों ने कहा कि हम पीछे रहने वाले नहीं

हैं। उस दृश्य को देखकर लोगों में हाहाकार मच गया। जनता राम से कहने लगी कि हम भी चलेंगे आपके साथ। बहुत दूर तक जनता उनका पीछा नहीं छोड़ रही थी। अंततोगत्वा राम ने सबको उपदेश दिया। सबको समझाया। एक प्रकार से आदेश दिया कि अयोध्या से हमारे साथ कोई नहीं चलेगा तो जनता ने राम की बात को माना। उसके बाद जनता देखती रही और भीतर ही भीतर बिलखती रही। जब राम, लक्ष्मण और सीता दिखने बंद हो गये तो जनता हताश-निराश होकर अयोध्या की तरफ चलने लगी। सबके आँसू रोकने से भी नहीं रुक रहे थे।

सोचने की बात है कि राम ने क्या दिया?

राम ने जो दिया वह दिखाया नहीं। वह दिखाने की बात भी नहीं थी। उनके जाने पर वह चीज स्वयं दिख गई कि राम ने सब कुछ दिया।

प्रियजनों का बिछोह सहना बहुत कठिन होता है। मैंने एक दिन 'रामचरितमानस' की बात कही थी कि 'बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं' यानी कि किसी-किसी का बिछोह ऐसा लगता है कि मेरे प्राणों को हर रहा है। मरने के समान लग रहा है। उसके बिना रहना कठिन लगता है। बिछोह से मानो प्राणों का हनन हो रहा है। इससे फलित होता है कि प्रियजनों का बिछोह सहना बहुत कठिन होता है।

यह भारत देश की बात बता रहा हूँ। अमेरिका की बात अलग है क्योंकि वहाँ की संस्कृति ही अलग है। हम लोग विहार कर रहे थे। सड़क पर एकदम बढ़िया एक छोटा बैग पड़ा हुआ था। मेरे खयाल से यूज भी नहीं हुआ था। मेरी नजर उस पर चली गई तो मैंने सोचा कि किसी भाई का गिर गया होगा तो एक भाई ने कहा कि म.सा. विदेशी लोग यहाँ आते हैं। उन लोगों का मन होता है तो खरीद लेते हैं और फिर भार लगता है तो ऐसे ही डाल देते हैं। एक बार मन में आने से ले लेते हैं और फिर मन से उतरा या दिमाग में बैठा नहीं तो छोड़ कर चले जाते हैं।

कुछ समय पहले एक अफवाह फैली थी कि कोई भी बैग आदि पड़ा मिले तो बिना देखे, हाथ नहीं लगाएं।

(श्रोताओं की तरफ से आवाज आती है- हाँ, ये बात सही है)

ऐसा माहौल बन गया था। अभी भी लोग सशंकित रहते हैं कि पता

नहीं बैग में बम पड़ा हुआ हो। डर से उसको हाथ लगाने से घबराते हैं। डरते हैं कि कहीं हाथ लगाया और बम फूट गया तो क्या होगा? यदि बैग में मानव बम छिपा हुआ हो और फूट गया तो कतरे-कतरे हो जाएंगे। इसलिए आदमी उसको हाथ लगाने से डरता है। उसका मन चाहता है कि इसे उठा लूँ, मगर फिर सोचता है कि कुछ हो गया तो... वह दुविधा में चला जाता है। मन में विचार तो आता है कि उठा लूँ पर बम का भय लगता है। उसके विचार उसके इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं कि कांई करां। इसको उठा लूँ या नहीं। मन उसके आस-पास ही घूमेगा कि एकदम न्यू बैग है। देखकर छोड़ना क्यों?

भारत ऐसी भूमि है जहाँ पर निरंतर ऋषि-मुनियों की वाग्धारा प्रवाहित होती रही है, होती रहती है। उनके उपदेशों में यह तत्त्व आता रहा है कि स्नेह को अस्नेह में बदलो, पराई वस्तु पर मन ललचाना नहीं, किंतु मानव मन उन्हें देखकर विचलित हो जाता है। उस विचलन से मन में द्वंद्व पैदा होता है। मन की शांति दूर हो जाती है। मन अशांत बन जाता है।

नमिराज की दृष्टि बदली तो सृष्टि बदल गई। समय बहुत हो गया। हम समय के साथ विचार करेंगे कि कैसे सृष्टि बदली, किंतु ये निश्चित है कि दृष्टि बदल जाने पर परिवार को छोड़ने में देर नहीं लगती। बिछोह सहने में कोई कठिनाई नहीं आती।

सबके साथ रहते हुए भी सबसे अलग रूप में जीते हुए आपने गुरुदेव को देखा होगा। अपने आप में मस्त रहते थे। भीड़ में अकेले होते थे, पर हम अकेले में भीड़ वाले हैं। नाना गुरु भीड़ में भी अकेले रहना सीख गये। एकत्व भावना की बात है। हम कहीं भी रहें। हमारी आत्मा किसी से बंधे नहीं। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। एक दिन अपने आप घननामी, परनामी बन जाएंगे। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

13 अक्टूबर, 2021

13

दृष्टि वह सार्थक, जो द्रष्टा बना दे

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे।
निराकार साकार सचेतन, कर्म कर्म फल कामी रे।।

चेतना की भिन्न अवस्थाओं का वर्णन पिछले कई दिनों से किया जा रहा है। हमारी चेतना साकार भी है और निराकार भी। वह सचेतन है। वह कर्म करने वाली भी है और कर्म की विकर्ता भी है।

दार्शनिकों का मत भिन्न-भिन्न है। कई परमात्मा को निराकार मानते हैं तो कई साकार मानते हैं, किंतु ऐसी बात नहीं है। वे निराकार भी हैं और साकार भी। यह कथन विवक्षा से किया जाता है। एकांत दृष्टि से विचार करेंगे तो बात अटक जाएगी। एकांत दृष्टि से तत्त्व का समाधान नहीं हो सकेगा। समाधान के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विचार करेंगे तो सही निर्णय होगा और सही निष्कर्ष पर पहुँच पाएंगे। विषय उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना महत्त्व रखती है समझ। महत्त्वपूर्ण यह है कि समझ कैसी है, सोचते कैसा हैं। सोच यदि एकांत है, तो शायद कहीं गलत हो जाएंगे। हमारी दृष्टि में अपेक्षा रहनी चाहिए। अपेक्षा दृष्टि से विचार करने पर तथ्य स्पष्ट होगा कि अमुक अपेक्षा से यह बात ऐसी है और अमुक अपेक्षा से यह बात वैसी है। इस प्रकार से हम किसी भी निर्णय को सम्यक् रूप देने में समर्थ बन पाएंगे।

दर्शन ज्ञान दुभेद चेतन, वस्तु ग्रहण व्यापारो रे...

सिद्ध भगवन्तों में दर्शन और ज्ञान दोनों होते हैं। वस्तु के ग्रहण व्यापार में दोनों की जरूरत होती है। दर्शन निराकार होता है और ज्ञान साकार। दर्शन अभेद को ग्रहण करता है जबकि ज्ञान भेद को ग्रहण करता है। यह विषय थोड़ा कठिन अवश्य हो जाएगा, किंतु समझना जरूरी है। यदि छोड़ते चले जाएंगे तो

कभी वहाँ तक पहुँच नहीं पाएंगे। चलने पर आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, एक-न-एक दिन पहुँचेंगे।

जैसे हमारी दो आँखें हैं वैसे ही जानने की आँखें होती हैं। किसी भी पदार्थ का बोध करने के लिए दो शक्तियाँ होती हैं। एक शक्ति को दर्शन कहते हैं और दूसरी को कहते हैं ज्ञान। ये दोनों आत्मा के गुण हैं। ये आत्मा के स्वभाव हैं। इनका कार्य ज्ञाता द्रष्टा रूप है। हमने थोकड़े याद किए होंगे। नव तत्त्व के थोकड़े में यह बताया गया है कि जीव का लक्षण उपयोग है। उपयोग का अर्थ होता है देखने या जानने की क्रिया उपयुक्त। इसके दो भेद होते हैं; साकार और अनाकार। उपयोग की ये दो प्रकार की शक्तियां हैं, जो सभी जीवों में विद्यमान रहती हैं।

दो प्रकार की शक्तियों की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि पदार्थ में भी दो प्रकार का गुण है- एक सामान्य और एक विशेष। जो बिना भेद के ग्रहण करे उसे सामान्य कहा गया है। जैसे आज व्याख्यान में पाँच सौ आदमी थे। चूँकि व्याख्यान में आदमी के साथ-साथ औरतें भी थीं, बच्चे-बच्चियाँ भी थीं। सभी को गिनती में बताया गया, यह सामान्य बोध है। मैंने यह जो उदाहरण देकर बताया यह अपर सामान्य है। पर सामान्य केवल द्रव्य का बोध मात्र से होता है। उसे हम पर्यायों के माध्यम से जान पाते हैं। हम द्रव्यों को देख रहे हैं या पर्यायों को देख रहे हैं?

(लोगों ने कहा- पर्यायों को देख रहे हैं)

हम पर्यायों को नहीं, पर्यायों के माध्यम से द्रव्य को देख पा रहे हैं। हम पुद्गल के रूप में केवल उसका आकार-प्रकार, रंग-रूप देख रहे हैं। वे उसके गुण हैं। हम गुण के अनुसार उनको जानते हैं। काला, पीला, नीला, लाल, सफेद आदि रूप भेद, ज्ञान से होगा। इसे ज्ञान से जाना जाएगा। पदार्थ की दो शक्तियों को जानने के लिए उपयोग भी दो प्रकार का होता है, जिससे उन विषयों को सम्यक्रीत्या जाना जाता है।

दर्शन ज्ञान दुभेद चेतन...

वस्तु को ग्रहण करने का व्यापार, वस्तु को ग्रहण करने का व्यवसाय दर्शन व ज्ञान से होता है। वस्तु चाहे जीव या अजीव कोई भी हो उसको ग्रहण करने के लिए दर्शन व ज्ञान दोनों जरूरी है। साकार-निराकार का निर्णय दर्शन

और ज्ञान के आधार पर हो पाएगा। यदि हम कहें कि जीव मनुष्य ही होता है तो यह बात जमेगी नहीं। हम मनुष्यों और पशुओं में गतिशीलता देखते हैं। उनका हिलना-डुलना देखते हैं तो अनुमान लगा लेते हैं कि ये जीव है। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय। विचार करें तो हम कहाँ जान पाते हैं कि उनमें संवेदना होती है। हम जान नहीं पाते हैं क्योंकि वह अनुभूत है, इसलिए तीर्थंकरों के उपदेश से व अनुमान से हमें यह मानना होता है कि उनमें जीव होता है। अनुमान से उनको सिद्ध किया गया है कि पृथ्वीकायादि में भी जीव होते हैं।

कहीं से खुदाई कर पदार्थ निकाले जाते हैं, खदानों से कोयले भी निकाले जाते हैं। खदानें खाली होने के बाद उनको वापस भर दिया जाता है तो कालांतर में फिर उसी खदान से वापस पत्थर, कोयला निकलते हैं। खदान में कोयला, पत्थर नहीं भरकर दूसरी चीज भर देने पर भी वह चीज कालांतर में कोयला व पत्थर का रूप धारण कर लेता है। इसका मतलब है कि पृथ्वीकाय जीव रूप है। उसमें जीव नहीं होते तो मिट्टी, रेत वैसी की वैसी बनी रहती। जो पदार्थ भरे गये वे वैसे ही बने रहते। उनका परिणमन पत्थर कोयले आदि के रूप में नहीं हो सकता था। इस प्रकार पक्ष, प्रतिज्ञा इत्यादि के आधार से अनुमान किया जाता है। उसी के आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि पानी आदि में भी जीव होते हैं।

भारतीय वैज्ञानिक डॉ. जगदीशचंद्र बसु ने अपने समय में उक्त जीवों की सिद्धि की थी। वनस्पतिकाय की उनकी सिद्धि फेमस हो गई। दूसरी सिद्धियाँ उतना स्थान नहीं ले पाईं। आज भारतीय वैज्ञानिक हों या विदेशी वैज्ञानिक, सभी एक स्वर से वनस्पतिकाय में जीव की सिद्धि स्वीकार करते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि उसमें भी संवेदना है, चेतना है।

भगवान महावीर ने आचारांग सूत्र में पहले ही कह दिया कि जैसे मनुष्य को खाना मिलने पर उसका शरीर पुष्ट होता है, वैसे ही पृथ्वीकायादि के जीवों को खाना मिलने पर वे भी पुष्ट होते हैं। मनुष्य को यदि कुछ दिन भोजन नहीं मिले तो वह कुम्हला जाता है, वैसे ही वनस्पतिकाय आदि जीवों को भी खाना नहीं मिले तो वे भी कुम्हला जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है। आप उनके गुणों की बात करते हैं

तो उनमें हर्ष व्याप्त होता है। यदि आप गुस्से में हैं, आप शस्त्र लेकर उनका हनन करने जाते हैं तो उनमें भी संकुचितता आती है। वे भय से आक्रांत होते हैं। प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला है कि उनमें भी संवेदना है, किंतु हम उन जीवों को नहीं देख पाते। केवल अनुमान लगाते हैं कि उनमें जीव है। इसलिए हम द्रव्यों को नहीं, गुण और पर्यायों को देखते हैं।

मनुष्य की बॉडी, उसका शरीर जीव का पर्याय है। जब उसमें से आत्मा चली जाएगी तो शरीर पड़ा रहेगा, उसमें तथाभूत कोई क्रिया नहीं होगी जो आत्मा की उपस्थिति में होती है। मनुष्य भी जब तक जीवित रहता है, तब तक ही उसकी तथाभूत क्रियाएं परिज्ञात हो पाती हैं। अत: जब तक शरीर में आत्मा है, तब तक मनुष्य है। तब तक कहेंगे कि यह मनुष्य है। जिस दिन जीव, देह को छोड़ देगा उस दिन कहेंगे कि यह मनुष्य नहीं है, यह तो लाश है।

शरीर और जीव एक नहीं है। दोनों में भिन्नता है। एकदम से भिन्न नहीं है। कथंचित भिन्न है। एकदम भिन्न हो जाएंगे तो दोनों की मुक्ति नहीं हो पाएगी। कथंचित, जैन सिद्धांत का परिभाषित शब्द है जो अनेकता का दिग्दर्शन कराता है। यथा यह किसी अपेक्षा से जीव है क्योंकि जीव ने इसको (शरीर में) ग्रहण कर रखा है।

जवाहर भवन बने कितने साल हो गए?

(लोगों ने कहा– 25 साल हो गए)

आप मेरा मतलब नहीं समझे। मैं पूछना चाहता हूँ कि पहले यहाँ पर क्या था?

(लोगों ने कहा– इल्लीखाना था)

वो पर्याय भिन्न थी। फिर इसका नाम बदला। इस प्रकार पर्यायें बदलती रहती हैं। भगवती सूत्र में एक महत्त्वपूर्ण बात पढ़ी। विस्मय पैदा करने वाली एक चर्चा आई है उसमें। भगवान महावीर से गौतम स्वामी ने पूछा कि भगवान, सामने जो पेड़ है वह धूप से तप गया, कुम्हला गया, उसकी भिन्न–भिन्न अवस्थाएं हो रही हैं, उसका जो मूल जीव है, वह मरकर कहाँ जाएगा?

भगवान ने कहा कि इसी राजगिरी नगरी में शामली वृक्ष के रूप में पैदा होगा। वहाँ पर पूजा होगी, प्रतिष्ठा होगी। उसका मान–सम्मान होगा। गारे से, गोबर से उसका चौंतरा लगेगा। लोग पूजा करेंगे, लोगों की मनौतियाँ फलीभूत होंगी।

गौतम स्वामी ने कहा कि यह कैसे?

तो भगवान ने कहा कि देवों के सान्निध्य से लोगों की मनौतियाँ फलीभूत हो जाएंगी।

फिर गौतम स्वामी ने पूछा कि भगवान वही जीव मरकर वापस कहाँ पैदा होगा? वह कहाँ जाएगा?

भगवान ने कहा, यहाँ से मरकर वह मनुष्य बनेगा। साधु जीवन स्वीकार करेगा और साधना करके सारे कर्मों का क्षय करेगा। वह सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन उसी भव में मोक्ष जाएगा।

यह चर्चा स्पष्ट बताती है कि वनस्पतिकाय का जीव भी उतना ही संवेदनशील है जितनी हमारी आत्मा। हमारी आत्मा भी पाप-पुण्य का अर्जन करती है और वनस्पति जीव भी पाप-पुण्य का अर्जन करता है। उसके भी पुण्य-पाप कर्म बँधे हुए हैं। उसके पाप-पुण्य की निर्जरा भी होती है। अत: कभी कोई वनस्पति का जीव मरकर मनुष्य भी बन जाता है। कोई कहते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता।

भगवान महावीर ने उसका भी समाधान किया कि ऐसी बात नहीं है कि मनुष्य मरकर मनुष्य ही होता है। जो यह मानते हैं कि मनुष्य मरकर मनुष्य और पशु मरकर पशु ही होता है, वे कहते हैं कि जैसा बीज होता है, वैसा ही उसका फल होता है। आपने बीज लगाया बबूल का और सोचते हो कि आम होंगे तो कैसे होंगे आम? मनुष्य का बीज मनुष्य को ही पैदा करेगा, दूसरा नहीं करेगा। भगवान कहते हैं कि मनुष्य बीज नहीं है। बीज है राग-द्वेष। मनुष्यता या मनुष्य का शरीर बीज रूप नहीं है, राग-द्वेष बीज रूप है। यथा-

''रागो य दोसो वि य कम्मबीयं''

कर्म बीज भाव रूप से राग-द्वेष है। उसको हटा दो, उसको भून दो तो कोई भी कर्म बीज रूप नहीं होगा। जैसे चने भून दिए जाते हैं वैसे भून दो। भुने हुए चने को जमीन में बोने के बाद वह सड़कर खत्म हो जाएगा, उससे संतति पैदा नहीं होगी। वैसे ही राग-द्वेष को नष्ट कर दिया तो कोई संतति पैदा नहीं होगी, किंतु उसको भूनने के लिए बहुत पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। प्रश्न होगा कि शामली वृक्ष ने क्या पुरुषार्थ किया कि मनुष्य बनकर मोक्ष में चला जाएगा?

मरुदेवी बिना कड़ी परीक्षा दिये मुक्ति को प्राप्त हो गई, जबकि गजसुकुमाल मुनि को कड़ी परीक्षा देनी पड़ी, पर वे उस कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए और अल्प समय में मुक्ति प्राप्त कर लिये। उनके सर पर अंगारे डाले गये। सनत्कुमार चक्रवर्ती ने दीर्घ पर्याय का उपभोग किया। वे साधु बने। साधु जीवन में भी कष्ट वाला जीवन जीया। 16-16 महारोग उनके शरीर में मौजूद थे। आज यदि कैंसर, एड्स या अन्य कोई लाइलाज बीमारी हो जाए तो आदमी सोचता है कि अब मैं ज्यादा नहीं जी सकता। अब मरना है। अब कोई दूसरा उपाय नहीं है, किंतु सनत्कुमार को 16-16 महारोग लगे हुए थे तब भी उन्होंने कोई इलाज नहीं कराया। सारे रोगों को सहते हुए मोक्ष को प्राप्त हो गए। उन्होंने बहुत सारे कष्टों को झेला, किंतु दु:खी नहीं हुए।

कष्ट और दु:ख दोनों अलग-अलग हैं। दोनों को एक मत समझ लेना। हम कष्टों को दु:ख के रूप में मानते हैं, यह हमारी संवेदना है, किंतु दोनों भिन्न हैं। गजसुकमाल मुनि पर कष्ट आए, किंतु वे दु:खी नहीं हुए। सनत्कुमार चक्रवर्ती पर कष्ट आए पर वे दु:खी नहीं हुए। उन्होंने मिट्टी का ढेला बनने के लिए कष्ट नहीं सहे। उन्होंने चेतना के लिए सहा। उन्हें चैतन्य की परिपूर्ण अवस्था को प्रकट करना था। उन्होंने जाना था, अनुभव किया था कि परमात्मावस्था में, सिद्धावस्था में चेतना का समग्र रूप निखर जाता है। वह साकार-अनाकार उपयोग से युक्त ज्ञाता-द्रष्टा भाव में मौजूद रहता है। वह बोध शून्य नहीं हो जाता।

कई दार्शनिक, पदार्थ को क्षण विनाशी मानते हैं। उनके मन में क्षण निरन्तर विनाशी होता है। पर ऐसा प्रत्यक्ष से बाधित है। इस पर लम्बी चर्चा में जाएं कोई जरूरी नहीं है। हम यह जानते हैं, अनुभव करते हैं कि पिछले क्षण में थे, अभी भी हैं। अगले क्षण की कल्पना भी करते हैं। जो जीवन जीया गया है उससे ऐसा ही अनुभव हुआ है।

पिछले क्षण का क्या प्रमाण है? मैंने थोड़ी देर पहले जो बात कही वह याद है क्या? यदि पूर्ववर्ती मन होता ही नहीं तो हमें वह बात याद कैसे रहती। जैसे पूर्व जन्म में हम कौन थे हमें मालूम नहीं, वैसे ही पिछले क्षण, दो मिनट पहले क्या बात कही, वह बात याद नहीं रहनी चाहिए थी, पर रहती है। हमारे में उपयोग है इसलिए हम दस साल पहले की बात याद रखते हैं कि तुमने ऐसा

कहा। क्यों कहा, किसने क्या कहा, ये बातें याद रहती हैं। ऐसा नहीं है कि पिछले भव से अगले भव में शरीर बदल गया, आत्मा बदल गई। 99 लाख भवों के कर्मों को चुकाया गजसुकमाल की आत्मा ने। इससे क्या संदेश मिलता है? यही न कि उनमें समय पूर्व भी वह आत्मा थी। इससे आत्मा के सातव्य का निर्णय स्पष्ट हो जाता है। पर्याय से नष्ट होना तो हम भी जानते ही हैं।

एक मोबाइल है। उसमें सिम है। सिम काम करना बंद कर देने पर उस सिम को निकालकर दूसरी सिम डाल दें तो मोबाइल वही है या नहीं है?

(लोगों ने कहा- मोबाइल तो वही है)

जैसे पहले वाली सिम काम करना बंद करने पर दूसरी सिम डाल दी और मोबाइल वही रह गया, वैसे ही द्रव्य नहीं बदलता। उनकी पर्याय बदलती रहती है। कभी मनुष्य गति में तो कभी देव गति में और कभी नरक में जीव भिन्न-भिन्न रूपों में जाता है। उसका द्रव्य (यानी वह जीव) कभी नहीं बदलता। उसमें द्रव्य-जीव वही का वही मौजूद है।

ये पाटा (बैठे हुए पाटे को दिखाते हुए) अभी पाटे के रूप में दिख रहा है। ये वर्षों पहले किसी वृक्ष के रूप में रहा होगा। उससे पहले ये किसी और रूप में रहा होगा। यह पर्यायों का परिवर्तन है। पर्यायें बदलती रहती हैं, किंतु द्रव्य सदा मौजूद रहता है। वह कभी नहीं बदलता। सदा विद्यमान रहता है। जीव साकार, निराकार और सचेतन है। वह कर्मों का कर्ता भी है एवं विकर्ता भी। कर्मों का कर्ता और विकर्ता से भी यह स्पष्ट होता है कि वह क्षण विनाशी नहीं है। अत: जीव भूत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा।

नमिराज रोग का वेदन कर रहे थे कि उनकी ज्ञान चेतना जगी। ज्ञान चेतना जगने के बाद उनको दु:ख नहीं था। उन्होंने साधु जीवन स्वीकार करने का लक्ष्य बना लिया। उद्देश्य बना लिया। साधु बनने का निर्णय कर लिया। फिर वह सबको छोड़ राजमहल से निकलकर उद्यान में आ गये।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर, जय-जय जय जयकार

कल मैंने इन कड़ियों का उच्चारण किया था, किंतु समय अधिक हो जाने से बात वहीं पर छोड़ दी थी। आज अनन्य मुनि म.सा. आपके सामने बोल रहे थे तो उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण बात बताई कि दृष्टि बदले तो सृष्टि बदलती है। नमिराज की दृष्टि बदली तो सारा वातावरण बदल गया।

दृष्टि का बदलाव दो प्रकार से होता है। एक, गुणात्मक और दूसरा, अवगुणात्मक। गुणात्मक दृष्टि का बदलाव विरक्ति भावों से होता है और अवगुणात्मक का परिणाम रागात्मक भाव से होता है, अनुरक्ति भाव से होता है। इसको थोड़ा समझना पड़ेगा। जो लिखना चाहें वे लिख लें। ए, बी, सी, डी...

पूरे 26 अक्षर नहीं लिखा रहा हूँ। 'ए' का 'बी' से घना रिलेशन है, किंतु 'बी', 'ए' को नहीं चाहती। 'ए', 'बी' को चाह रही है, 'बी', 'ए' से नफरत कर रही है। व्यवहार निभाती है, किंतु मन जुड़ा हुआ नहीं है। भीतर से जुड़ाव नहीं है। 'बी' का लगाव 'सी' से है और 'सी' का लगाव 'ए' से है। 'सी' को 'ए' से लगाव करते देखकर 'बी' का मन पीड़ित होता है। 'सी' का लगाव 'बी' से नहीं है, पर 'बी' का लगाव 'सी' से है, किंतु 'सी' चाहती है कि 'ए' मुझसे लगाव रखे और 'ए' चाहती है कि 'बी' मेरे से लगाव करे। 'ए', 'बी' को बहुत चाहती है। वह मानती है कि मेरा 'बी' से बहुत लगाव है, किंतु 'बी' को 'सी' से बहुत प्रेम है। वह चाहती है कि 'सी' मेरे से मिले, बात करे किंतु तीनों के मन में कभी सुखद अनुभूति नहीं होती।

आपको लग रहा होगा कि यह खाली औपचारिकता है। यह औपचारिकता नहीं, यथार्थ का दिग्दर्शन है। 'ए' का लगाव 'बी' से, 'बी' का लगाव 'सी' से है और 'सी' का लगाव 'ए' से है और 'बी' को यह देखकर पीड़ा होती है। 'बी' चाहती है कि 'सी' मेरे से मिले, मेरे से जुड़ाव रखे दूसरे से नहीं। ऐसा ही 'ए' और 'सी' भी चाहती है। इसी से वहाँ विवाद खड़ा हो जाता है। यह दृष्टि का बदलाव है, क्योंकि 'बी' किसी और को चाहती है और 'ए' का किसी और के साथ लगाव है। 'ए', 'बी' और सी तीनों का बराबर व्यवहार है। 'ए', 'बी', 'सी' तीनों से 'डी' घुलती, मिलती है। वे उनसे जुड़ें या घुलें उसके मन में कोई फर्क नहीं पड़ता है। इन सब में सुखी कौन है?

(लोगों ने कहा– डी)

वह दु:खी क्यों नहीं है बताओ?

(लोगों ने कहा कि वह कोई रिस्पांस नहीं चाहती, वह किसी से लगाव नहीं रखती)

'ए' को 'बी' से उतना रिस्पांस नहीं मिलता जितना मिलना चाहिए।

जितना वह इन्वेस्ट कर रही है, उतना उसको रिटर्न नहीं हो रहा है। हम यही चाहते हैं न कि जितना लगा रहा हूँ उससे ज्यादा वापस आए। यही चाहत दु:ख पैदा करती है। यह कष्ट नहीं है। यह दु:ख है। केवल मन की चाह है। मन की चाह पूरी नहीं होने से व्यक्ति दु:खी हो जाता है। व्यक्ति चाहता है कि मैंने किसी को जितना प्यार दिया उससे उतना ही मिले या उससे ज्यादा मिले। जब वह नहीं मिल पाता है तो व्यक्ति दु:खी हो जाता है।

वीतराग दृष्टि में 'डी' का रूप आ जाता है। उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि कोई मेरे से राग भाव रखे या द्वेष भाव। कोई उसकी माने या नहीं माने, उसको फर्क नहीं पड़ता है। बहुत से लोग भगवान महावीर को नहीं मानते हैं तो भी भगवान दु:खी नहीं हैं। भगवान महावीर को गोशालक नहीं मान रहा था, बल्कि महावीर से ज्ञान प्राप्त करके उसका दुरुपयोग भी किया पर भगवान महावीर को कोई दु:ख नहीं हुआ।

अनन्य मुनि जी कह रहे थे कि आप उनसे जाकर रूबरू पूछ लो। मैं थोड़ी भिन्न बात कह रहा हूँ। किसी से पूछने की जरूरत क्या है। अपने पर भरोसा करो। किसी से जाकर पूछने का कोई मतलब नहीं है। कोई लेना-देना नहीं है। किसी के कहने से गलत नहीं हो जाएंगे और न किसी के कहने से अच्छे हो जाएंगे। किसी से पूछकर उसे प्रोत्साहन देने का काम ही नहीं करना है। उसने तो हजारों बार गलत बातें कहीं होगी। मैं ऐसा नहीं हूँ तो उनसे जाकर पूछने की क्या जरूरत है?

एक बार महात्मा गांधी के पास पाँच पेज का पत्र पहुँचा। उसमें उटपटांग लिखा हुआ था। उस पत्र में एक आलपीन लगी हुई थी। महात्मा गांधी ने पत्र पढ़कर आलपीन अपने पास रख ली और पत्र को कूड़ादान में डाल दिया। उन्होंने आलपीन रख ली कि आगे काम आएगी किंतु उस पत्र को नहीं रखा कि मौका आने पर उसको इस बात का जवाब देना है या उस पर फायरिंग करना है। किसको जवाब देना है और क्यों जवाब देना है। न तो उससे पूछने की आवश्यकता है कि आपने यह पत्र क्यों लिखा। आप पूछोगे कि यह पत्र आपने लिखा है और वह कह देगा कि नहीं लिखा है तो क्या कर लोगे और वह कह देगा कि हाँ लिखा है तो उससे यह मत पूछना कि क्यों लिखा है। जो पत्र आपके काम का नहीं हो वह आपके लिए बेकार है। उसका कोई मतलब नहीं

है। किसी ने कुछ भी लिख दिया है तो उससे आपको क्या फर्क पड़ जाएगा? यदि सच्ची बात लिखी भी हो तो उसको स्वीकार करने की आवश्यकता है।

दो ही रास्ते हैं। फालतू में तीसरा रास्ता क्यों बनायें? तीसरा रास्ता बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। खुद पर भरोसा होना चाहिए कि मैं कैसा हूँ। सच्ची बात हो तो स्वीकार करना चाहिए।

मरुदेवी माता से ऋषभदेव ने कहा कि माँ, मैं साधु बनना चाहता हूँ तो माता ने कह दिया कि जो तुम्हारी इच्छा हो बनो। मरुदेवी का गहरा विश्वास था अपने बेटे पर कि मेरा ऋषभ जो करता है वह अच्छा ही करता है।

आपकी संतानों पर यह छाप लगी हुई है क्या कि मेरा बेटा जो कर रहा है वह अच्छा ही कर रहा है? कोई आकर आपसे कह दे कि तुम्हारे बेटे को मैंने वहाँ देखा था तो आप क्यों विचार में पड़ जाते हैं? यह बात कहने पर आपका विचार कहाँ चला गया कि मैंने आपके बेटे को वहाँ देखा था। बताओ गौतम जी?

(गौतम जी ने कहा कि विश्वास है बावजी कि कहीं नहीं जाएगा)

आपका मन किधर गया? आपकी सोच कहाँ गई? देखने वाले ने यह नहीं बताया कि आपके बेटे को मैंने कहाँ देखा है, तो क्यों मन में आ जाता है कि इसे शराबखाने में देखा होगा। यह बात क्यों आई? क्यों आए ये विचार? आपकी सोच क्या यह नहीं हो सकती कि वह धर्म स्थान में गया होगा। यह व्यर्थ की कल्पना है कि उसने आपके बेटे को वहाँ देखा है।

यदि अपने बेटे को पहचान लिया है, जान लिया है तो चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दुनिया कुछ भी समझे, कुछ भी कहे, किसी के कहने से वह वैसा नहीं होगा।

'ए', 'बी', 'सी' की बात सुनी आपने। उसमें 'ए' की दृष्टि 'बी' पर थी किंतु 'बी' से उसको रिस्पांस नहीं मिला तो 'ए' के मन में उसके प्रति खटास आ गई। अब वह उसको तीक्ष्ण दृष्टि से देखती है कि यह नालायक है। उससे सम्बन्ध बनाने का कोई मतलब नहीं है। उससे दोस्ती करना बेकार की बात है। 'बी' ने 'सी' से दोस्ती कर ली, इससे भी उसको दर्द हो जाता है क्योंकि उसके प्रति उसकी चाह थी। 'ए' सोचती है कि मैंने उसको लायक समझा पर वह तो नालायक निकल गई। इससे उसके प्रति खिन्नता आ गई। इस प्रकार 'ए' का

'बी' के प्रति रोष पैदा होगा और प्रत्यनीकता के भाव जगेंगे। वह उसके प्रति बुरा सोचने लगेगी। अब 'ए' की दृष्टि 'बी' पर वैसी नहीं रही। अब वह उसको बार-बार दु:खी करना चाहती है। उसके हर कार्य पर ध्यान रखती है कि वह क्या कर रही है। उसके नेत्रों से चिनगारियाँ झरने लगेंगी। थोड़ा कुछ होते ही वह उसे छठी का दूध पिलाना चाहेगी।

दृष्टि पहले क्या थी?

पहले गुणात्मक दृष्टि थी। पहले मित्रता की दृष्टि थी। पहले राग भावना की दृष्टि थी। अब उसके प्रति इतना द्वेष है कि हर क्रिया पर उसका ध्यान जा रहा है। अब राग चला गया। उसकी जगह द्वेष लग गया। प्रियता का भाव चला गया। उसकी जगह अप्रियता को स्थान मिल गया।

स्विच बोर्ड में प्लग लगने का स्थान होता है। उसमें हीटर का प्लग लगा हुआ हो और स्विच ऑन करें तो हीटर गर्म हो जाएगा। स्विच ऑफ कर हीटर के प्लग को निकालकर उसी जगह कूलर का प्लग लगा दिया जाये तो क्या होगा?

(लोगों ने कहा कि कूलर चालू हो जाएगा और ठंड देने वाला बन जाएगा)

आप बहुत पहले सोच लेते हो। पर स्विच ऑफ है तो ठंडक कैसे आ पाएगी?

हम बहुत जल्दी में होते हैं। यह हमारी भीतर की जल्दबाजी की पहचान है कि किसी विषय को अच्छी तरह से समझते नहीं हैं। उस पर विचार नहीं करते हैं और झट से प्रतिक्रिया कर देते हैं। जब तक पूरा सुनें नहीं, पूरा समझें नहीं, तब तक मुँह खुलना नहीं चाहिए। भीतर कोई प्रतिक्रिया पैदा होनी नहीं चाहिए। उससे ठंडक कहाँ से पैदा हो जाएगी? स्विच क्या है?

(लोगों ने कहा कि स्विच ऑफ है)

स्विच को ऑन करने के बाद उसमें ठंडक मिलेगी। स्विच बोर्ड वही है और पॉवर भी वही है। माध्यम बदल गया तो जो गर्मी देने वाला था, वह ठंडक देने वाला बन गया। व्यक्ति वही है, किंतु प्लग की तरह दृष्टि बदलते ही राग झट से द्वेष में बदल जाता है और द्वेष, राग में। हमारी दृष्टि से द्वेष, राग में बदल जाता है तो कभी द्वेष, राग में बदल जाता है। यह चक्र चलता रहता है।

राग-द्वेष के पीछे मोह का पॉवर लगा हुआ है। मोह का पॉवर जब तक बना रहेगा, तब तक परिवर्तन होता रहेगा। जैसे हमने जीरो वाट का बल्ब लगाया तो वह वैसी ही रोशनी देगा और हरे कलर का बल्ब लगाया तो वह हरी रोशनी देने वाला बन जाएगा। लाल बल्ब लगा देंगे तो वह लाल प्रकाश देने वाला हो जाएगा। यदि हमने सौ वाट का बल्ब लगा दिया तो वह ज्यादा प्रकाश देने वाला बनेगा। बिजली वही है, बोर्ड वही है खाली लगाने का फर्क पड़ गया। इसी तरह पहले प्रेम भरी दृष्टि थी अब आक्रोश भरी दृष्टि हो गई। पहले उनकी अच्छाइयों को देखते थे अब उनकी बुराइयों को देखने की कोशिश करेंगे। यह दृष्टि बदलना अवगुणात्मक है। दूसरी दृष्टि होती है विरक्ति की। जब विरक्ति की दृष्टि होती है तो 'इदं न ममं' का भाव हो जाता है यानी ये मेरा नहीं है। जो अपना नहीं है उसके प्रति लगाव क्यों, उसके प्रति ममत्व क्यों?

''जे ना चाले संगाथे ते नी ममता सा माटे''

जो साथ चलने वाला नहीं है उसका ममत्व क्यों करना! किंतु हम करते हैं। बेटे से अनबन है, पुत्रवधू से बनती नहीं है, किंतु पोता हो गया तो दादा जी का मन पोते पर आ जाता है। थोड़े वर्षों के बाद पोता भी दादा जी का अपमान, तिरस्कार करने लग जाता है तो दादाजी कहते हैं कि ये तो अपने बाप के समान हो गया। कह देते हैं कि पूरा बाप के ऊपर गया है। पोते के प्रति यह दृष्टि का बदलाव है। दृष्टि बदल गई, किंतु जैसा बदलाव होना चाहिए वह नहीं हुआ।

जो वस्तु जैसी है वैसी दिखने लग जाये तो न राग बढ़ेगा, न द्वेष। किसी वस्तु पर राग करने से क्या वह आपकी बन जाएगी? भले ही आप कितना भी कब्जा करके रखो, वह आपको दु:ख देने वाली ही बनेगी।

कोई सोना, चाँदी, आभूषण और रत्न खरीदता है तो उसके मन में रहता है कि कोई ले न जाए। वह उसको तिजोरी में रखता है। ध्यान रखना, आजकल ऐसी मशीन भी है जिससे जमीन में गाड़ा हुआ धन भी मालूम पड़ जाता है। मशीन, जमीन में गड़े हुए धन की खोज कर लेती है। हमारा सोना, चाँदी, आभूषण कहाँ सुरक्षित है, बताओ? यहाँ ब्यावर में पाकिस्तान से मिसाइल नहीं आ सकती है क्या?

(लोगों ने कहा कि आ सकती है)

तो हम कहाँ सुरक्षित हैं?

एक समय की बात है। हम पाकिस्तान के बॉर्डर पर चल रहे थे। कभी पाँच किलोमीटर तो कभी सात किलोमीटर सीमा के किनारे पर चले रहे थे। फौज के सिपाही हमको नजर आ रहे थे। हम उनके सामने से गुजरते रहते थे। वहाँ बीकानेर संघ के लोगों ने आकर कहा कि हम आपको इधर विचरण नहीं करने देंगे तो मैंने कहा कि कहाँ करें विचरण तो लोगों ने कहा कि आप बीकानेर पधारो। उन लोगों ने यह भी कहा कि इधर कारगिल का युद्ध शुरू हो गया तो किस समय क्या हो जाये कुछ पता नहीं चलेगा।

मैंने कहा कि बीकानेर में कुछ नहीं होगा यह बात फाइनल है क्या? जो मिसाइल यहाँ आ सकती है वह बीकानेर भी आ सकती है। आ सकती है या नहीं?

(लोगों ने कहा कि वह कहीं भी आ सकती है)

उन्हीं दिनों एक मिसाइल बीकानेर हॉस्पिटल पर गिरी तो हॉस्पिटल में अफरा-तफरी मच गई। हॉस्पिटल खाली हो गया। हाहाकार मच गया। आस-पास का इलाका खाली कराया जाने लगा। लोग अपने-अपने सामान लेकर भागे जा रहे थे कि कहीं युद्ध हो गया तो मर जाएंगे। मैंने कहा कि यहाँ क्या परिणाम होता है देखने दो।

कहने का आशय है कि यदि दृष्टि बदलेगी और गुणात्मक होगी तो कोई प्रिय नहीं लगेगा। समझ में आ जाएगा कि मेरा कोई नहीं है। इदं न ममं। यह मेरा नहीं है। यह केवल संयोग है।

पॉवर होने पर बल्ब का उपयोग है, पॉवर न हो तो बल्ब का क्या उपयोग? वैसे ही हमारे मोह का पॉवर खत्म होता है तो फिर कोई माता-पिता नहीं है। कोई परिवार नहीं है। बेटा-बेटी, पत्नी कोई भी अपना नहीं है। एक दिन सब छूट जाएंगे। कौन-कौन साथ रहेगा इस प्रश्न का जवाब अपने पास नहीं है। जानते सब हैं पर ज्ञान चेतना, विरक्ति की दृष्टि जागरण न हो तो जानना, जानना भर रह जाता है।

जमीन खोदने वाली मशीन को क्या कहते हैं?

(लोगों ने कहा कि जे.सी.बी)

उसको भी जोर लगाना पड़ता है। आपको कुदाल और फावड़ा देकर

कह दिया जाये कि खुदाई करनी है तो पसीना छूट जाएगा। खोदना बहुत मुश्किल हो जाएगा। सभी जब तक अपना कर्मबंध क्षीण नहीं करेंगे, तब तक कितना भी सुन लें वैराग्य का भाव, संवेग का भाव जगना आसान नहीं है। वह जगने में एक झटका लगता है। नहीं जगे तो फिर कितने ही झटके लगते जायें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। उसके लिए कड़ी मेहनत करनी होगी।

एक शराबी का शराब छुड़ाने के लिए एक प्रयोग किया गया। उसको शराब का प्याला दिया गया और जैसे ही वह पीने लगा उसको बिजली का झटका लगाना शुरू कर दिया। ऐसे करते-करते उसकी शराब छूट गई। दूसरे व्यक्ति के साथ भी यही प्रयोग हुआ किंतु उसको कुछ फर्क ही नहीं पड़ा। वह झटके के साथ शराब पीता जा रहा था। उसको कितने ही झटके लगाए किंतु कोई फर्क नहीं पड़ा, बल्कि झटके लगाने के साथ उसको शराब पीने में मजा आने लगा। उसको बार-बार झटके झेलने की आदत हो गई। इसके बाद उसको झटके लगाओ तो वह शराब ज्यादा पीता। उसे शराब की प्याली दिए जाने पर वह इशारा करता है कि झटका लगाओ। क्योंकि उसको झटके प्रिय लगने लगे। उसको झटके बड़े मनोज्ञ लगने लगे। बड़े सुहावने लगने लगे। झटका लगाने पर वह कहता कि और लगाओ। अब तो झटके के बिना उसको शराब पीने में मजा ही नहीं आ रहा था। हमको भी झटका लगने पर मजो आवतो रेवे। थोड़े-थोड़े झटके लगते रहने से मजा आता है। एक झटका जोर का लगे तो एकदम चेंज आ जाता है।

नमिराज में वही बदलाव आया। आगे की क्या स्थिति बनती है समय के साथ जानेंगे, किंतु इतना अवश्य है कि दृष्टि बदलने पर सृष्टि बदल जाती है। आज का प्रिय कल अप्रिय लगने लग जाएगा। अच्छा भी बुरा लगने लग जाता है क्योंकि ज्ञान चेतना को सम्यक् प्रकार से जगाया नहीं। यदि वह सम्यक् प्रकार से जग जाये तो भली भाँति समझ में आ जाएगी कि सारी परिस्थितियाँ मोह की देन हैं।

सभी प्राणी कर्मों से बँधे हुए हैं। द्वेष से बँधे हुए हैं। मोह से बँधे हुए हैं। ये स्थितियाँ स्वाभाविक हैं। जब तक भीतर ज्ञान चेतना नहीं जगेगी तब तक ये हरकतें होती रहेंगी। अत: विरक्ति की दृष्टि का जब तक जागरण न हो जाय तब तक गुणात्मक दृष्टि का विकास होता रहे।

एतदर्थ प्राणीमात्र के प्रति मैत्री भाव रहे। गुणीजनों के प्रति प्रेम का भाव रहे। करुणा का पात्र सामने आने पर करुणा व क्लिष्ट वृत्ति वाला आए तो माध्यस्थ भाव को साधे। माध्यस्थ भाव बहुत महत्त्व रखता है। उससे कर्मों का बचाव कर सकते हैं। अत: गुणात्मक दृष्टि का अनवरत विकास उपयुक्त है। ऐसा करेंगे तो धन्य हो जाएंगे। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

14 अक्टूबर, 2021

14

परमात्म भाव की झलक

विमलजिन दीठां लोयण आज...

मनोकामना पूर्ण हो जाने पर व्यक्ति बड़ा खुश होता है। व्यक्ति जैसा चाहता है, वैसा परिणाम प्राप्त हो जाए तो बड़ा प्रसन्न होता है। सबके वांछित कार्य एकसमान नहीं होते। भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। जिनकी ज्ञान चेतना जागृत है, उनकी चाह कुछ और होती है। उनकी राह कुछ और होती है, जबकि जिनकी ज्ञान चेतना जागृत नहीं होती उनकी चाह पुद्गलों से सम्बन्धित होती है। ज्ञान चेतना जागृत होने से मुख्यत: दो तथ्य फलित होते हैं; संवेग और निर्वेद। हम स्वयं से जान सकते हैं कि हमारी आत्मा ज्ञान चेतना में रमण कर रही है या उसका रमण इंद्रिय चेतना में हो रहा है।

चेतना में संवेग और निर्वेद का झरना बहना ज्ञान चेतना का प्रतीक है। ज्ञान चेतना, सांसारिक पदार्थों की अभिलाषा नहीं करती। वह चाहती है कि मेरा दु:ख दूर हो जाए। मानसिक ऊहापोह खत्म हो जाए। मन स्वस्थ हो जाए। मन शांत बन जाए। मन में समाधि आ जाए। हालांकि इसके लिए प्रयत्न उसको ही करना होगा। वह जानती है कि दूसरे, समाधि या शांति दे दें ये संभव नहीं है। यह समझ सही नहीं होगी। प्रयत्न स्वयं को ही करना पड़ेगा। स्वयं से ही सिद्धि मिलती है। दूसरे के प्रयत्न से सिद्धि नहीं मिलेगी। स्तुति में कहा गया है-

विमलजिन दीठां लोयण आज...

अर्थात् मैंने आज विमलनाथ भगवान के दर्शन किए। लोयण का अर्थ होता है आँख और दीठा का अर्थ होता है देखा। देखना सामान्यतया आँखों से होता है इसलिए उसको लोचन कह दिया। लोचन का एक अर्थ विचार भी होता है। हम अपने विचारों से भी स्थितियों को जान पाते हैं। अपने विचारों से

अन्वेषण करते हैं। अनुप्रेक्षा भी लोचन है। आनंदघन जी ने अजितनाथ की स्तुति करते हुए दिव्य विचारों को लोचन कहा है।

''नयणा ते दिव्य विचार''

चेतना की दो प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। एक निराकार और दूसरी साकार। निराकार अवस्था का चिंतन करते हुए परमात्म भाव से तादात्म्य का अनुभव करना चाहिए। परमात्म भाव से अपनी आत्मा को मिलाना चाहिए।

सिद्धा जैसो जीव है जीव सो ही सिद्ध होय...

हमारे स्वरूप और अजितनाथ भगवान के स्वरूप में कोई फर्क नहीं है। फर्क बाहर से आया हुआ है। उसके कारण भिन्नता बनी हुई है। यदि मेरा पुरुषार्थ जगे तो मैं भी उसको प्राप्त कर सकता हूँ। सिद्धत्व की प्राप्ति होना असंभव नहीं है। यह अनुभूति अनिर्वचनीय होती है। अनिर्वचनीय का अर्थ है- जिसे वचन से नहीं कहा जा सकता। ऐसा आनंद प्रकट होने पर जो अनुभूति होती है वह अलग होती है। उस समय हमारी आत्मा जितनी पवित्रता का अनुभव करती है, उसका कथन करना बहुत कठिन है।

क्यों कठिन है? इसलिए कठिन है क्योंकि शब्दों में वह ताकत नहीं है कि कथन किया जा सके। फिर भी शब्दों से हम उसके कुछ इर्द-गिर्द पहुँच सकते हैं। लोग्गस्स के पाठ में ''चन्देसु निम्मलयरा'' पद आया है। उसका क्या अर्थ होता है, आप विचार करो।

सारे चंद्रमाओं का प्रकाश मिलाने के बाद भी आत्म शीतलता अधिक है। ''आइच्चेसु अहियं पयासयरा।'' इसमें भी बहुवचनाम् विभक्ति है अर्थात् सारे सूर्यों के प्रकाश से भी आपके केवलज्ञान का प्रकाश अधिक है। सूर्य के प्रकाश से बढ़कर कोई प्रकाश हमारे सम्मुख नहीं है। हजारों बल्ब भी सूर्य की बराबरी नहीं कर सकते। दुनिया में यही माना गया है कि सूर्य से बढ़कर प्रकाश नहीं है, किंतु यहाँ कहा गया है कि सारे सूर्य का प्रकाश एक तरफ कर दिया जाए तो उससे भी अधिक है आपके केवलज्ञान का प्रकाश।

क्या समझ आया बताओ?

सारे सूर्यों का प्रकाश एक तरफ हो और केवलज्ञान का प्रकाश एक तरफ हो तो केवलज्ञान का प्रकाश ज्यादा होगा। हम क्या दिमाग लगाएंगे? दिमाग की गणित यहाँ काम आने वाली नहीं है। एक बात का ध्यान रखना कि

समझने में कहीं गड़बड़ी न हो जाए। ऐसा न सोच लें कि जैसा प्रकाश सूर्य का होता है, वैसा ही प्रकाश केवलज्ञान का होता है।

लोक का बना नक्शा देखा है क्या?

नाचते हुए भोपे के आकार का है लोक। उसका ऊपरी भाग सिद्ध क्षेत्र है। उस लोक में 1800 योजन का मध्य लोक है। पूरा लोक 14 रज्जु प्रमाण है। यानी असंख्यात योजन का लोक है। असंख्यात योजन लोक का माप चार हजार के योजन से है। गणित लगाने से कोई मतलब नहीं है। क्योंकि ऐसे में गणित लगने वाली नहीं है। उसमें 1800 योजन का मध्य लोक बहुत छोटा भाग है, जैसे विश्व के नक्शे में भारत का स्थान छोटा-सा दृष्टिगत होगा। शायद एक अँगूठे जितना। उस नक्शे में ब्यावर को ढूँढेंगे तो कहाँ मिलेगा? एक सूई की नोक जितना स्थान भी ब्यावर को मिलना कठिन है। वैसे ही मध्य लोक को समझा जा सकता है। उस छोटे-से भाग को असंख्यात सूर्य मिलकर प्रकाशित करते हैं। हमारे भरत क्षेत्र को प्रकाशित करने के लिए दो सूर्य चाहिए। हमें मालूम नहीं है कि कौन-सा सूर्य कब आता है, पर वह सूर्य एक दिन छोड़-छोड़कर आता है। वही सूर्य लगातार नहीं आता। 1800 योजन वाले मध्य लोक क्षेत्र में रहे हुए पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए असंख्यात सूर्यों की जरूरत पड़ेगी, जबकि केवलज्ञान से संपूर्ण लोक को देखा जाता है, पूरे क्षेत्र को देखा जाता है। पूरे क्षेत्र का मतलब है संपूर्ण लोक व अलोक का पूरा क्षेत्र। सूर्यों की जितनी संख्या है, उतनी और हो जाए तो भी पूरे लोक में रहे हुए पदार्थों को प्रकाशित करने में वे समर्थ नहीं होंगे, किंतु उन सारे पदार्थों को देखने की शक्ति एक केवलज्ञान में है। सूर्य से कहाँ तक प्रकाश होगा, उसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। अनुमान भले ही लगा लें, किंतु सही जानकारी तक पहुँचना मुश्किल होगा क्योंकि गणित का विषय नहीं है। यह अनुभूति का विषय है। अनुभूति का शब्दांकन कठिन होता है, किंतु उसके अलावा कोई मार्ग नहीं है। हम जान तो रहे हैं, किंतु समझ नहीं पाएंगे। उसके लिए शब्दों की आवश्यकता होगी। दूसरों को समझाने के लिए शब्दों की आवश्यकता होती है, लेकिन बहुत-सी जगहों पर शब्द भी मूक हो जाते हैं।

ध्यानस्थ व्यक्ति को देखने पर उसके मुँह से अनुभव कर लेंगे कि वह कितने आनंद में बह रहा है किंतु उसका प्रतिशत नहीं लगाया जा सकता। इससे

यह सिद्ध हो जाता है कि शब्दों में वह ताकत नहीं है, पर वह शक्ति अनुभव में है। इसी प्रकार विमलनाथ भगवान के दर्शनों से जो आनंद उत्पन्न हुआ उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता है। आनंदघन जी कहते है- ''दु:ख दोहग्ग दूरे टल्या रे'' अर्थात् मैं आनंदित इसलिए हूँ कि मेरा दु:ख-दुर्भाग्य दूर हो गया। दु:ख शारीरिक भी होता है और मानसिक भी। एक दैविक दु:ख भी होता है। जैसे अर्जुन माली मुद्गरपाणि यक्ष से वेष्टित होने से दु:खी था। वह दैविक दु:ख था। इष्ट का वियोग और अनिष्ट का योग दु:ख का मुख्य कारण है। मैं जिसको चाहता हूँ उसकी प्राप्ति नहीं होती है तो मन का दु:ख बनता है, मन में द्वंद्व रहता है, मन ही मन अवसाद पैदा होता है कि वह मुझे क्यों नहीं मिल रहा है। वही वस्तु किसी दूसरे को मिल जाए तो मन पीड़ित हो जाएगा कि वह उसको क्यों मिल गई।

कल मैंने बताया कि 'ए', 'बी' व 'सी' में दु:ख क्या है। उनमें दु:ख है कि मुझे प्रेम मिलना चाहिए। दु:ख है कि प्रेम मुझे नहीं मिलकर दूसरे को मिल रहा है। यह इष्ट का संयोग नहीं हुआ और अनिष्ट का योग हो गया। जो मैं नहीं चाहता वैसा मेरे को मिल गया।

हम विचार करें कि चुनाव में कोई अध्यक्ष चुना गया। वैसे ही मंत्री का चुनाव हुआ। दोनों के विचार भिन्न-भिन्न हैं। एक दक्षिणी ध्रुव और दूसरा उत्तरी ध्रुव। दोनों का सम्बन्ध कैसे जुड़े। अध्यक्ष मन में दु:खी होता है कि ऐसे मंत्री का योग मिल गया, अब मैं कैसे काम करूँ। जिसको मंत्री नहीं बनाना चाहिए उसको मंत्री बना दिया, कैसे काम करूँ। वह इसलिए काम नहीं कर पाएगा, क्योंकि मन से पहले ही हार गया। उसके मन में यह बात जम गई कि मैं इसके साथ काम नहीं कर पाऊँगा। इसके साथ काम नहीं होगा। कई बातें सोचने की होती हैं और कई कार्य करने के होते हैं। कोई बात कहने में जितनी आसान होती है करने में उतनी आसान नहीं होती। कहने को तो कहते हैं कि सबके साथ हिल-मिलकर रहना चाहिए।

यही होना चाहिए क्या?

(श्रोता- हाँ भगवन्)

आप लोग क्या मानते हो, सबके साथ हिल-मिलकर रहना चाहिए क्या?

(श्रोता- हाँ, सबके साथ हिल-मिलकर चलना चाहिए, साथ-साथ रहना चाहिए)

सबके साथ हिल-मिलकर रहना या अलग खिचड़ी पकानी चाहिए?

(श्रोता- सबके साथ रहना है)

सबके साथ रहना अच्छी बात है, पर रह पाते हैं क्या?

एक ग्वाला 100-200 पशुओं को चला सकता है, किंतु एक व्यक्ति को सैकड़ों लोगों के साथ चलना कठिन हो जाता है। ग्वाला, पशु को इसलिए चला लेता है कि पशु उसके डंडे और इशारे से चलते हैं। हम दूसरों के इशारे पर चलने के लिए बहुत माथा लगाते हैं तो वहाँ पर दुविधा खड़ी हो जाती है। यदि वहाँ माथा नहीं लगाएं तो दुविधा खड़ी नहीं होगी। इसलिए जिसके हाथ में नेतृत्व हो, उसके निर्देशानुसार काम करना चाहिए। यदि मुनि को गुरुजन कह दें कि तुमको गोचरी लेने के लिए जाना है तो जाना है। कोई दूसरी-तीसरी बात नहीं होनी चाहिए। यदि कोई यह दिमाग लगाएगा कि मेरे को गोचरी लेने के लिए भेज रहे हैं, मुझे तो पढ़ना है, मेरी परीक्षा नजदीक है, मेरे को ही क्यों भेज रहे हैं तो उसके मन में प्रसन्नता नहीं है। उसके मन में खुशी नहीं है, दु:ख है, पीड़ा है तो वह कहीं-न-कहीं झलकेगी। हो सकता है कि कहीं घरों में यह बात निकल जाए कि तुम लोगों को सही तरीके से गोचरी बहरानी नहीं आती। सही रूप से बोलना नहीं आता। ऐसा नहीं आता, वैसा नहीं आता। ध्यान नहीं रखते।

इसका मतलब है कि पहले से उसके मन में पीड़ा भरी हुई है। खीझ भरी हुई है इसलिए निकाल रहा है। जैसे पानी नीचे की ओर बहता है, वैसे ही खीझ नीचे की ओर बहती है। मतलब अपने से नीचे लोगों पर बहती है। अपने से छोटे लोगों पर खीझ निकलती है। अपने से ऊपर वालों पर नहीं निकल पाती। जो अपने से छोटा होता है वहाँ पर निकलती है। वहाँ पर भले उसकी गलती नहीं होती है, किंतु वहाँ पर खीझ निकलती है। पति-पत्नी लड़ते हैं तो उसका हर्जाना संतान को भोगना पड़ता है। आप जानते ही होंगे कि उसको क्या परिणाम भोगना पड़ता है!

एक कहावत है कि 'कुम्हार ने कुम्हारन नहीं नावड़े तो गधे रो कान खींचै।' कुम्हार से अनबन हो जाने पर कुम्हारन की खीझ गधे पर निकलती है।

कहीं-न-कहीं दु:ख का मूल कारण यह है कि मेरे मन के अनुकूल नहीं हुआ। यह दु:ख है कि जो मैं चाहता हूँ, वह प्राप्त नहीं हो रहा। कभी-कभी पढ़ने वाले का मन तो कहता है कि कोई भी उसे किसी कार्य के लिए नहीं बोले, किंतु उसे खाने के लिए, पानी पीने के लिए कहेंगे या नहीं कहेंगे!

(श्रोता- कहेंगे भगवन्)

वह स्वयं जानता है कि खाने के लिए परिजनों को कहना पड़ता है। पानी पीने के लिए कहना पड़ता है और अन्य कार्य के लिए भी जरूरत पड़ने पर कहना पड़ता है, किंतु ध्यान रहे, केवल पढ़ने मात्र से भी ज्ञान नहीं होता। ज्ञान चेतना जागृत नहीं होती। बहुत सारे वाक्यों को रट लेते हैं, शास्त्रों को रट लेते हैं, 32 आगम पढ़ लेते हैं, किंतु जब तक उनको जीवन में उतारा नहीं, तब तक कुछ फायदा नहीं है। पढ़ा हुआ भी अनपढ़ा-सा ही रह जाता है। कम्प्यूटर में डाटा सेव करने के बाद, डाटा रेकार्ड करने के बाद उसको चालू करें तो एक-एक गाथा सुनाई देगी, किंतु वह जीवन में उतरना नहीं हुआ। ग्लूकोज या कोई दवाई दुकान से लेकर अलमारी में रख दी या थैले या पॉकेट में साथ लेकर चलेंगे तो वह दवाई किस काम की! सारी सुविधा होने पर भी जो मौके पर चूक जाए वह सुविधा किसी काम की नहीं है। हमने स्वाध्याय खूब किया, किंतु मौके पर झगड़ा मचा दिया, तो स्वाध्याय कितना सार्थक होगा।

हम लोग पूर्वांचल की ओर जा रहे थे। होली चातुर्मास रांची में हुआ। एक युवक को संत ने सामायिक के लिए प्रेरित किया, तो वह युवक बोला, म.सा. सामायिक की बात नहीं करें। संत ने कहा कि सामायिक ने आपका क्या बिगाड़ा तो उसने कहा, बाकी जो आप कहें वह मैं कर दूंगा, पर सामायिक के लिए मुझे मत बोलो। उस युवक ने कहा कि सामायिक का अर्थ मैं समझता हूँ 48 मिनट तक शक्ति का संग्रह करना और उसके बाद उसका विस्फोट करना।

विस्फोट करने का अर्थ क्या हुआ?

सामायिक में सारा मैनेजमेंट किया जा रहा है उसके बाद किस प्रकार से विस्फोट करना। सामायिक में बैठने के साथ ही बैठने वाले का बोलना बंद हो जाता है। उस समय घर-परिवार के सदस्य क्या कर रहे हैं, घर में क्या हो रहा है, पर उसकी दृष्टि केंद्रित हो जाती है। सामायिक पूरी होते ही वह कहना शुरू कर देता है कि यह हो गया, वह हो गया, ऐसा हो गया। फालतू में घर

वालों को परेशान कर देता है। ऐसी सामायिक करने से अच्छा सामायिक नहीं करना ही है। इसलिए वह सामायिक के लिए तैयार नहीं हो रहा था।

आज के युवा हाथों-हाथ परिणाम चाहते हैं। वे कहते हैं कि हमारे बुजुर्ग इतने वर्षों से सामायिक कर रहे हैं, उसका परिणाम क्या हुआ? न लड़ाई कम हुई, न झगड़ा कम हुआ। सामायिक के 10 मिनट बाद कोई शांति नहीं। सामायिक से उठे नहीं कि फिर पहले जैसा हाल। मानो सामायिक की प्रतिज्ञा हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी जैसी थी। जब तक हथकड़ी-बेड़ी थी, तब तक बोले नहीं, किंतु भीतर ही भीतर आ रहे हबोड़े (ऊफान) को बाहर नहीं निकाल पा रहा था। सामायिक के बाद बम विस्फोट चालू हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि जीवन में सामायिक उतरी नहीं, आई नहीं। जब तक जीवन में सामायिक नहीं आएगी, तब तक ऐसी स्थितियाँ बनती रहेंगी।

जब उसने ऐसी बात कही तो संतों ने कहा, भाई सबकी सोच और सबकी समझ एकसमान नहीं होती। तुमको यदि लगता है कि सामायिक में संसार की बातें करना, सामायिक के पश्चात् विस्फोट करना, ये सब ठीक नहीं है तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम शुद्ध सामायिक करके अनुभव करो कि ऐसी होती है सामायिक। तुम आदर्श रूप सामायिक का उदाहरण प्रस्तुत करो ताकि उनको व दूसरों को सही सामायिक का ज्ञान हो सके।

बंधुओ! एक बात ध्यान में लेना, प्रतिक्रिया करना बहुत आसान है, किंतु सुधार करना बहुत कठिन है। तुमने ये काम नहीं किया, ऐसा काम नहीं किया, ऐसे काम नहीं होता है तो भाई साहब कैसे होता है आप बता दो। वह काम कैसे करना यह नहीं बताया, अपितु कहता है तूं थारी सोच। यह सही तरीका नहीं है। यदि कोई सही काम करना नहीं जानता तो आप उसे करके बताओ।

संतों ने कहा कि तुम शुद्ध सामायिक करो और घर वालों को ऐसा अनुभव कराओ कि सामायिक वैसी नहीं, ऐसी होती है, जिससे उनको भी सही अनुभूति हो। नहीं तो वे जैसी कर रहे हैं, वैसी कर रहे हैं। सामायिक एक ही करो, किंतु वह क्वालिटी वाली हो। ज्यादा सामायिक नहीं चाहिए। एक ही बहुत है। एक ही अर्थ वाली हो। प्रयोजन सिद्ध करने वाली हो। अनेक सामायिक से कोई लेना-देना नहीं है। एक सामायिक सही नहीं हो रही हो तो

सैकड़ों सामायिक से भी वांछित परिणाम नहीं मिलेगा।

हम क्या करते हैं?

(श्रोता – प्रतिक्रिया करते हैं)

प्रतिक्रिया कौन करता है? जिसमें परिणाम देने की क्षमता नहीं होती, वही प्रतिक्रिया करता है। तुम यदि प्रतिक्रिया कर रहे हो तो मैं चाहता हूँ कि तुम परिणाम दो। तुम करके बताओ कि कैसे होती है सामायिक। एक बार तुम करोगे तो मालूम पड़ेगा कि क्या होती है सामायिक। प्रतिक्रिया करना बहुत आसान काम है, किंतु उसका समाधान देना बहुत कठिन है। समाधान देना आ गया तो फिर कोई परेशानी नहीं रहेगी। नमिराज दीक्षित होने के लिए तैयार हुए और कहाँ पहुँचे?

(श्रोतागण– वे उद्यान में पहुँच गये)

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

प्रव्रज्या को उत्तम स्थान माना जाता है। सबसे ऊँचा स्थान माना गया है। प्रव्रज्या वेश परिवर्तन नहीं है। वस्तुत: आत्मा की तरफ वर्जन प्रव्रज्या है। वर्जन का अर्थ गति है। आत्मा की दिशा में जिसकी गति हो गई उसे निंदा, विकथा, ईर्ष्या, दाह परेशान नहीं कर पाएंगे। चाहे दूसरा कितना ही विकास कर रहा हो उसके प्रति ईर्ष्या के भाव नहीं जगेंगे। कोई उसकी निंदा कर रहा हो या चुगली कर रहा हो, उसे पीड़ा होने वाली नहीं है। ये प्रव्रज्या है। थोड़ा भी दर्द होने का मतलब है कि अभी प्रव्रज्या का पूरा रूप घटित नहीं हुआ है। अभी प्रव्रज्या का पूरा रूप पैदा नहीं हुआ है। उसमें थोड़ी कमी है। सुधार की आवश्यकता है। सुधार संभव है बशर्ते ज्ञान चेतना को जगाए रखे। वह सुधार करने की कोशिश करेगा अन्यथा पकड़ी हुई बातों को छोड़ नहीं पाएगा। उसी के इर्द–गिर्द घूमता रहेगा और उसी से जुड़ता रहेगा। उससे आगे नहीं खिसक सकता।

प्रव्रज्या को उत्तम स्थान कहा गया है। निम्न स्थान पर सभी होते हैं। उत्तम स्थान पर विरक्त होते हैं।

हिमालय की चोटी पर कितने प्रतिशत लोग गए होंगे?

आज तक की संख्या मिला लो, आपको कितने लोग मिलेंगे जिन्होंने हिमालय पर अपना चरण स्पर्श कर दिया हो। पूरे विश्व की आबादी के कितने

प्रतिशत लोग गये होंगे? हमको इसका गणित लगाकर कुछ नहीं लेना है। प्रव्रज्या स्थान में, आत्मा की दिशा में, परमात्मा की दिशा में जाने वाले बहुत कम लोग हैं।

प्रथम देव बने इंद्र जिस समय अवधिज्ञान से भरत क्षेत्र को निहार रहे थे, देख रहे थे कि कहाँ क्या हो रहा है, कहाँ पर क्या गतिविधि चल रही है, उस समय उनकी दृष्टि नमिराज पर पड़ गई। उन्होंने देखा कि यह राजा साधु बनने को तैयार हो रहे हैं। दीक्षा लेने की तैयारी में हैं। उन्होंने सोचा कि मैं देखूं कि यह दीक्षा भावावेग में ले रहे हैं या सच्चा वैराग्य है। उन्होंने सोचा कि मुझे इसकी परीक्षा करनी चाहिए क्योंकि कई लोग भावना के वेग में दीक्षित हो जाते हैं और फिर पश्चाताप करते हैं कि मैं क्यों साधु बन गया! घर में कितनी सुख-सुविधा थी, यहाँ तो बहुत कठिनाइयाँ आती हैं।

उसके चेहरे पर पीड़ा झलकने लगती है। उसका मन व्यथित होता रहता है। उसका मन साधु जीवन में रमता नहीं। वह लगातार बेचैन रहता है कि मैं क्यों साधु बन गया। उसको जब तक साधु जीवन का स्वाद नहीं आएगा, तब तक साधु जीवन का आनंद आ नहीं पाएगा।

एक पेय पदार्थ डिब्बाबंद आता है। शायद उसका नाम फ्रूटी होगा। छोटा-सा पैकेट सौ मिलीलीटर का होता है। मैं पहले तो नहीं जानता था, पर 1997 के रतलाम चातुर्मास में मुझे समझ में आया। वहाँ दीक्षा हुई। दीक्षार्थी वरघोड़ा निकला। उसमें लोगों ने मेहमानों को फ्रूटी पिलाई। लोगों ने फ्रूटी पी-पीकर उसके पैकेट को सड़क पर फेंक दिया। मैं व्याख्यान स्थल पर उधर से ही निकला तो मुझे जगह-जगह फेंके हुए पैकेटों के दर्शन हुए। मैंने उसी दिन व्याख्यान में कह भी दिया कि आप लोगों को दीक्षा का जितना हर्षोल्लास है, उतना विवेक नहीं है। आपने पैकेट सड़क पर फेंक दिया। आपको मालूम है कितनी चींटियाँ उसके भीतर जाकर आराम करेंगी? उनको मिठास का स्वाद भी आएगा। मिठास के कारण चींटियाँ पैकेट के अंदर घुसी रहेंगी और ऊपर से ट्रक गुजर जाएगा तो उनकी जान चली जाएगी।

लोग जब जुलूस निकालते हैं तो कुछ खिलाते हैं और ठंडा वगैरह पिलाते हैं। ऐसे में छोटे-छोटे जीवों के लिए दुविधा खड़ी हो जाती है। हमारा अविवेक उनकी मृत्यु का पैगाम लेकर आता है। जहाँ पर पीने की रुकावट नहीं

है वहाँ पर आपकी यतना क्या बोलती है? वहाँ पर आपका विवेक क्या बोलता है? क्यों मन चल जाता है कि लोग फ्री में पिला रहे हैं तो पी लेते हैं। ऐसी मानसिकता होती है कि फ्री में चीज मिले तो आने दो। जहाँ एक ही जरूरत है वहाँ दो भी ले लेते हैं। जब अपने पैसों से खरीदनी होती है तो दो की जगह एक ही खरीदना चाहते हैं। वहाँ एक चीज से काम चला लेंगे या बिना खरीदे ही काम चला लेंगे। जरूरी चीज है तो बात अलग है। कहीं जुलूस में ठंडा पिलाया जा रहा हो तो चार ठंडा पी लेंगे और खरीदने की बात आ जाये तो एक ही से काम चला लेंगे। लोग कहते हैं कि फ्रूटी बहुत मीठी होती है, बहुत स्वादिष्ट होती है। मुझे नहीं पता कि उसका स्वाद कैसा होता है। मैंने कभी चखी नहीं। वैसे ही जिसे पता नहीं हो कि उसे कैसे पीया जाता है, वह बाहर से डिब्बी को चाटता है। वह कहता है इसमें कोई स्वाद नहीं। स्वाद जानने वाला कहता है, भाई तुम्हारी बुद्धि काम नहीं कर रही है। तुमने बाहर से डिब्बी का स्वाद चखा है, इसलिए ऐसा कह रहे हो।

वैसे ही साधु जीवन की बात है। उसमें जो न रम सका उसको उसका स्वाद नहीं आता। उसके लिए वह जीवन बहुत कठिन है। जैसे कि कहा गया है-

साधु जीवन कठिन है जैसे पेड़ खजूर
चढ़े तो चाखे प्रेम रस गिरे तो चकनाचूर

साधु जीवन बहुत ऊँचा जीवन है। जो चढ़ जाता है वह परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ लेता है। नहीं तो रीता रह जाता है। खाली रह जाता है। इसलिए परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ना बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि मैं ये कार्य नहीं कर सकता हूँ। सामायिक में यदि कोई गुस्सा कर रहा है और कोई बोल दे कि तुम्हारी सामयिक सही नहीं हो रही है तो सामायिक बंद नहीं करनी चाहिए। दूसरों की प्रतिक्रिया सुनकर सामायिक बंद नहीं करनी चाहिए। बल्कि सुधार करना चाहिए। दोष का निराकरण करना चाहिए।

साधु जीवन पीड़ादायक नहीं है। सामायिक पीड़ादायक नहीं है, किंतु सामायिक में जो अतिरिक्त बात करते हैं वह पीड़ादायक है। सामायिक के समय इधर-उधर की बातें नहीं करनी हैं। हमें क्या छोड़ना चाहिए? सामायिक या प्रतिक्रिया?

(श्रोतागण- प्रतिक्रिया छोड़नी चाहिए)

और हम क्या छोड़ने के लिए तैयार होते हैं?

सामायिक नहीं करेंगे तो क्या गुस्सा कम हो जाएगा? हमारी मनोवृत्ति गुस्सा छोड़ने के बजाय सामायिक छोड़ देने की है।

ये सोचने की बात है कि हमें क्या करना चाहिए। गुस्से में कुछ कर बैठना नादानी है। नासमझी है। समझ से काम लेना चाहिए। सोचना चाहिए कि हमारे दु:ख का कारण क्या है। सही मार्ग की खोज नहीं कर पाना पीड़ा का कारण है। परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न होना चाहिए। वह हमने नहीं किया। हमें उस मार्ग की अब भी खोज करनी चाहिए।

बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहु

बीती बात को छोड़कर आगे की सुध लेनी चाहिए।

नमिराज जब दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए तो शक्रेन्द्र ने विचार किया कि मैं उनकी परीक्षा कर लूं कि उनमें भावुकता तो नहीं है। उन्होंने नमिराज से प्रश्न किया। शक्रेन्द्र पूछ रहे हैं कि हे राजन्! आप दीक्षा लेने जा रहे हैं ये बहुत अच्छी बात हैं किंतु आज मिथिला नगरी में घर-घर, गली-गली में दारुण शब्द सुनाई पड़ रहे हैं। चारों तरफ हाहाकर सुनाई पड़ रहा है, इसलिए 'इदम निष्क्रमणं अनुचितम' अर्थात् आपका यह निष्क्रमण अनुचित है। आपका यह निष्क्रमण, आपका दीक्षा लेना उचित नहीं है। यह अनुचित है। क्यों अनुचित है? आपका यह निष्क्रमण दारुण शब्दों का जनक बना हुआ है। जन-जन के मुँह से दारुण शब्द निकल रहे हैं इसलिए आपको साधु जीवन स्वीकार करना उचित नहीं है। ये आपके लिए अनुचित है। इदम निष्क्रमणं अनुचितम। यह अनुमान है कि इसके पाँच अवयव होते हैं- पक्ष, प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टांत और व्याप्ति। इसमें पक्ष निष्क्रमण है। पक्ष निष्क्रमण को अनुचित सिद्ध करना प्रतिज्ञा है। यह निष्क्रमण, दीक्षा स्वीकार करना, प्रव्रज्या स्वीकार करना अनुचित है। क्यों अनुचित है? क्योंकि बहुत-से लोगों में दारुण शब्दों का हाहाकार, आक्रंदन मचा है और दारुण शब्दों का जनक है। धर्मार्थी को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिससे आक्रंदन पैदा हो, दारुण शब्द पैदा हो। आपके इस निष्क्रमण से ऐसा हो रहा है, जो उचित नहीं है। अत: आपका यह निष्क्रमण ठीक नहीं है।

ये बात किसने कही?

(श्रोतागण- यह बात शक्रेन्द्र ने कही)

किससे कही?

(श्रोतागण- नमिराज से)

आपका मन क्या है? नमिराज से इंद्र पूछ रहा है। मान लो यदि आपसे आकर पूछ ले तो आपका क्या जवाब होगा?

(एक श्रोता ने कहा- 'इदं न मम।' मेरा कुछ भी नहीं है। मैं किसी का नहीं हूँ)

इतना कहने से काम नहीं चलता है। न्याय की बात चलती है तो न्यायोचित जवाब होना बहुत जरूरी है। कहने को कह दिया, किंतु आपका निष्क्रमण, आपकी दीक्षा उचित नहीं है। क्यों नहीं है? क्योंकि घर-घर में, सड़क-सड़क पर और गली-गली में, चारों तरफ दारुण शब्दों की चोट कानों में पड़ रही है। ऐसा कार्य धर्मार्थियों को नहीं करना चाहिए। ये शक्रेन्द्र द्वारा कही गई बात है। नमिराज ऋषि इसका जवाब देने वाले हैं।

उनका जवाब क्या आता है, ये हम समय के साथ विचार करेंगे किंतु क्या वस्तुत: शक्रेन्द्र की बात सही है। आपका मन मान रहा है कि उसकी बात सही नहीं है, किंतु जवाब किस प्रकार से आता है, उसे समझना है। एक बात स्पष्ट है कि दुनिया कुछ भी कहती रहे, जो निर्णय आपने कर लिया वह सही है। क्योंकि आप जानते हैं कि दीक्षा लेना उचित है, किंतु जब न्याय की भाषा में बात होती है तो उत्तर भी उसी प्रकार से दिया जाना जरूरी है। हेतु कारण को प्रस्तुत करते हुए बताएं कि दीक्षा लेना किस प्रकार से उचित है। दारुण शब्दों का जनक होने से क्या निष्क्रमण हिंसा का कारण नहीं बन जाता? यदि वह हिंसा का कारण बनता है तो धर्मार्थियों को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए।

दीक्षा लेने से पहले सोचने की आवश्यकता है। उस पर विचार होना चाहिए कि हमारी सामायिक के लिए हमें कोई बाधा नहीं पहुँचावे और हम भी दीक्षा लें तो उसमें कोई रुकावट पैदा नहीं करे। दीक्षा लेने पर आपका जवाब क्या है, दीक्षा क्यों लें? सबको दु:खी बनाकर दीक्षा लेना है क्या?

(श्रोतागण- नहीं भगवन्)

कई बार परिवार वाले कहते हैं कि दीक्षार्थी हमारी बात नहीं मान रहा

है। वहाँ पर जाकर साधुओं को दु:खी करेगा। ऐसी कई बातें सामने आती हैं। वैरागियों के सामने भी जब कोई दीक्षा लेने को तत्पर होता है, तब ये बातें खुलकर होती हैं।

मेरे खयाल से कोई ऐसी बात कहता है तो वह एकदम गलत भी नहीं कहता। उसका आशय ऐसा भी हो सकता है कि हमारा धर्म संघ निखालिस रहे। उसमें दूसरी कोई बात नहीं होनी चाहिए। इसलिए वह ऐसा कहते हैं कि तुम यदि मन को नहीं साधोगे और दीक्षा के समय वह स्वभाव रहा तो फिर दूसरे लोगों को परेशान करने वाले बनोगे। दूसरे लोगों के साथ परेशानी खड़ी करने वाले बनोगे। संघ और शासन के लिए ये उचित नहीं है। पहले अपने मन को ही साध लेना चाहिए।

शक्रेन्द्र के मन में प्रेरणा रही है कि नमिराज भावुकता से तो साधु नहीं बन रहे हैं। उनके रोग ठीक हो जाने से वे दीक्षा ले रहे तो वह भावुकता होगी। दीक्षा के तत्त्व को समझे बिना साधु जीवन को स्वीकार कर लेना गले में फाँस के समान हो जाता है। गले में फँसी फाँस को निकालना बहुत मुश्किल होता है। इसलिए पहले साधु जीवन की चर्या को अच्छी तरह से समझना चाहिए। साधु जीवन में आने वाली कठिनाइयों, परीषहों को समझना चाहिए। ये नहीं समझना चाहिए कि

'माथा मुंडाया तीन गुण, मिटे माथे की खाज
रोटा मिले चिकणा, लोग कहे धन महाराज'

यह नहीं समझना चाहिए कि साधु जीवन में लोग प्रशंसा करते है, मनुहार करते हैं और दर्शन के लिए तरसते हैं, इसलिए साधु बन जाऊँ। ऐसे साधु बनकर क्या कर लेगा? साधु जीवन के परीषह को समझना चाहिए। समझना चाहिए कि कितनी भी गरमी होगी, कितनी भी सरदी होगी, उसमें भिक्षार्थ जाना होगा। ग्रामानुग्राम विहार करना होगा। भूखा भी रहना पड़ सकता है। और भी कठिनाइयाँ आ सकती हैं। इन सारे परीषहों में मन कमजोर नहीं पड़ना चाहिए। वध परीषह भी आ सकता है। बोली के परीषह आ सकते हैं। कोई कठोर शब्द बोलेगा उस वक्त शांति बनाये रखना होगा और मन में समाधि रखनी होगी। कोई प्रशंसा करे तो फूलना नहीं है और कोई निंदा करे तो कुम्हलाना नहीं है। अपने मन को सुदृढ़ बना लेना है।

साधु कभी भी विचलित नहीं हो। छोटी-छोटी बातें यदि उसको उद्वेलित करने वाली बन जाती हैं तो वह वस्तुत: साधु जीवन के आनंद को प्राप्त नहीं कर सकता। वह साधना का मकरंद प्राप्त नहीं कर पाएगा। अपितु साधु जीवन की पोशाक ले ली तो उसको छोड़ भी नहीं सकता है और पाल भी नहीं सकता। ऐसी दुविधा न आए इसलिए अपने मन को मजबूत बनाए रखे। फालतू के विचार लाने से मनोबल कमजोर होता है।

अनेक प्रकार से अनेक जगह चित्त को लगाने से उसका चित्त भिन्न-भिन्न रूपों में खंडित हो जाता है। उसके चित्त में खिन्नता आ जाती है। उसे इष्ट और अनिष्ट की चिंताएँ सताती रहती हैं। उन स्थितियों में अपने मन को मजबूत नहीं बना पाएंगे तो मन कमजोर होता जाएगा। यदि मन को मजबूत बना लिया तो स्फुट हो जाएगा। सुदृढ़ हो जाएगा। उसके बाद उसे कोई कितना भी कहे उसके मन को विचलित करने में समर्थ नहीं हो पाएगा।

परमात्म भक्ति से ज्ञान चेतना को जगाने में समर्थ बनेंगे तो सारे दु:खों से मुक्त होते हुए समग्र लोकालोक को प्रकाशित करने वाले अनंत ज्ञान को प्रकट करने में कामयाब हो सकते हैं। नमिराज ऋषि दीक्षा के लिए तैयार हैं। उसी बीच शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके आता है। उसने अपनी बात नमिराज के समक्ष रखी है। नमिराज द्वारा उसको क्या उत्तर मिलता है यह हम यथासमय जान सकेंगे। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

15 अक्टूबर, 2021

15

यहाँ पर तुम्हारा अपना कौन?

विमलजिन दीठां लोयण आज...

कर्म किसने किए? हम जो भी कार्य कर रहे हैं, करने वाला कौन है?

यह शरीर काम करने वाला नहीं है। हाथ-पाँव कार्य करने वाले नहीं हैं। काम करने वाली है आत्मा। आत्मा, शरीर के माध्यम से कर्म कर रही है। आत्मा, हाथ-पाँव के माध्यम से कार्य संपादित कर रही है।

एक बहुत बड़ी कंपनी में कई मुनीम हैं, मैनेजर हैं। कई सेक्शन है। बहुत सारे वर्कर हैं, बहुत सारे कर्मचारी हैं। घाटा या मुनाफा कर्मचारियों को होता है या मालिक को होता है?

(श्रोतागण- मालिक को होता है)

हम जो कर्म कर रहे हैं इसका दु:ख शरीर को मिलेगा, हाथ-पाँव को मिलेगा या आत्मा को मिलेगा?

(श्रोतागण- आत्मा को मिलेगा)

जैसे घाटा या मुनाफा कंपनी का होता है, वैसे ही अपना जो घाटा-मुनाफा होगा वह आत्मा को होगा। शरीर यही रहे कोई जरूरी नहीं है।

गजसुकुमाल का बहुत बार नाम लेता हूँ मैं। आप सबका परिचित है यह नाम। उस जन्म में गजसुकुमाल ने ऐसा कोई पाप किया या ऐसा कोई कर्म किया था जिससे उसके सिर पर अंगारे डाले जाते।

ऐसा कोई पाप किया क्या?

नहीं किया।

गजसुकुमाल ने उस जन्म में ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया, फिर भी उसके सिर पर अंगारे डाले गए। आखिर क्यों?

यदि शरीर को ही भोगना पड़ता तो जिस शरीर में गजसुकुमाल मौजूद थे। उस शरीर ने ऐसा कोई पाप नहीं किया, ऐसा कोई कर्म नहीं किया फिर भी क्यों भोगना पड़ा? इससे स्पष्ट होता है कि शरीर माध्यम है। कर्म भोग आत्मा को करना पड़ता है। दो प्रकार के कर्म बताए गए हैं।

भगवती सूत्र में एक चर्चा आई। गणधर श्री गौतम स्वामी ने पूछा कि भगवन् क्या जीव जरा से पीड़ित है, शोक से पीड़ित है तो भगवान ने कहा, हाँ पीड़ित है।

जरा का अर्थ होता है बुढ़ापा। बुढ़ापा कष्टदायक होता है। इसलिए शरीर में जितनी भी पीड़ा होती है, उनका सम्बन्ध जरा से जोड़ा गया और मानसिक कष्टों का सम्बन्ध शोक से जोड़ा गया। खिन्नता, द्वंद्व मानसिक ताप हैं। इन्हें शोक के अन्तर्गत लिया गया है।

किसी दीवार या खंभे पर घड़ी लगाने के लिए कील ठोंकी गई। उस कील से खंभे को कितनी पीड़ा होगी? क्या उसे वेदना होगी? यहाँ हम कहेंगे कि नहीं होगी वेदना, क्योंकि दीवार को कोई वेदना नहीं होती। वेदना सिर्फ जीव को ही होती है। इसलिए कर्म जिसके द्वारा किए गए हैं, जिसने कर्म किए हैं, उसको ही भोगना पड़ता है उस कर्म को किसी दूसरे को भोगने की स्थिति नहीं रहती।

आनंदघन जी कहते हैं कि मेरा दुःख और दुर्भाग्य दोनों ही दूर हो गया। दुःख मोह कर्म से होता है और दुर्भाग्य नामकर्म से। इसको दूसरी भाषा में कहें तो अभागा कह सकते हैं। मोह कर्म के वेदन से होने वाले संवेदन को दुःख कहा गया है। विमलनाथ भगवान के दर्शन से दृष्टि परिष्कृत हो गई। अब तक शरीर को अपना मान रहा था, परिवार को अपना मान रहा था, जमीन-जायदाद को अपना मान रहा था। ऑफिस को अपना मान रहा था। बंगला-गाड़ी को अपना मान रहा था। कार को अपना मान रहा था। यह मेरा है, वह मेरा है। सब मेरे हैं। हम किसको अपना नहीं मान रहे हैं? हम अपने घर को किसका मान रहे हैं?

(श्रोतागण- अपना ही मान रहे हैं)

घर के थोड़े से हिस्से पर किसी ने कब्जा कर लिया तो कोर्ट-कचहरी करने के लिए तैयार होते हैं। पंचायत कराने के लिए तैयार होते हैं। मानकर

चलते हैं कि जमीन मेरी है, बंगला मेरा है। उस पर दूसरा कोई अधिकार क्यों जमा ले। दूसरा कोई अधिकार नहीं जमा सकता। इसलिए ये सारे विवाद खड़े हो जाते हैं, किंतु ज्ञानीजन कहते हैं कि क्या है तुम्हारा? जिसको तुम अपना कहते हो वह तुम्हारा है क्या?

(श्रोतागण- नहीं है)

मेरे सामने कह दिया कि कुछ भी नहीं है, किंतु वैसा ही ज्ञान, वैसी ही समझ भीतर पैदा हुई या नहीं! यदि अपना है तो क्या उसका कभी वियोग नहीं होगा? वह सदा साथ रहेगा? ज्ञान अपना है तो वह सदा साथ रहता है। अपनी आत्मा में रहता है। वह बाहर नहीं जाता। ज्ञान अपना है। समझ अपनी है किंतु अन्य सब बाह्य पदार्थ है, बाह्य सम्बन्ध है, बाह्य संयोग है। वे अपने नहीं हैं। जब किसी को अपना मानकर चलते हैं तो उसके वियोग होने पर दु:खी होते हैं। यदि किसी को अपना नहीं मानेंगे तो दु:ख नहीं होगा। जैसे ही किसी के साथ अटैचमेंट होता है, उसे अपने साथ जोड़ते हैं, वैसे ही दु:ख को भी जोड़ लेते हैं। जब तक अपना समझते रहेंगे, तब तक उससे मुक्त नहीं हो पाएंगे। जहाँ पर मेरेपन का सम्बन्ध होगा, वहाँ कुछ खटपट होती रहेगी। मेरापन दु:ख का कारण है। यह बोध हो पाता है तीर्थंकर भगवन् की पर्युपासना से दृष्टि के परिकर्मित होने से।

आनंदघन जी, भगवान की स्तुति करते हुए कह रहे हैं कि मेरा दु:ख और दुर्भाग्य दोनों ही दूर हो गया। समझने की बात यह है कि दु:ख और दुर्भाग्य दोनों ही दूर कैसे हो गए। इसका समाधान यह है कि जैसे आँखों में मोतियाबिंद या अन्य कोई जाला होता है तो साफ नहीं देख पाते, दृष्टि में फर्क पड़ता है, वैसे ही मेरेपन की बुद्धि होने से, मोह का चश्मा चढ़ा रहने से जो अपना नहीं है उसको अपना मानने लगते हैं, किंतु जिनेश्वर देवों की स्तुति से सम्यक् बोध पैदा होता है तो दृष्टि निर्मल हो जाती है। परिणामस्वरूप सच्चाई सामने आ जाती है। अत: दु:ख दुर्भाग्य छँटने लगता है। यही बात आनंदघन जी कहते हैं-

विमलजिन दीठां लोयण आज...

विमलनाथ भगवान को मैंने आज देखा। मैंने दर्शन किए। विमल का अर्थ होता है मल रहित। जिससे मल हट गया। राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि आत्मा से हट गए। जिससे आत्मा निर्मल हो गई, विमल हो गई,

आत्मा पवित्र हो गई। पवित्र आत्मा का दर्शन करने से क्या लाभ होता है?

''साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थ भूताही साधवः''

साधुओं के दर्शन, पवित्र आत्माओं के दर्शन पुण्यकारक होते हैं। क्यों होते हैं यह बताओ आप, नहीं पता है क्या आपको?

साधु भी शरीर से वैसा ही होता है जैसे आप हो। हो सकता है रंग का फर्क पड़ जाए, आकृति का कुछ फर्क पड़ जाए, किंतु शरीर का जैसा ढाँचा आम जनता का है, वैसा ही साधुओं का होता है। फिर क्या खासियत है कि साधु के दर्शन पुण्यकारक माने गये? मूल बात यह है कि साधुओं ने मोह पर विजय पाने का प्रयत्न किया है। साधु बनने के पहले वे भी परिवार पर फिदा थे। परिवार को अपना मान रहे थे। अपने पास रहे धन-वैभव को अपना मान रहे थे, किंतु साधु बनने से पहले ही उनको ज्ञान हो गया कि यह मेरा नहीं है इसलिए उन्होंने उन सब चीजों का त्याग कर दिया। इस कारण से उनके भीतर जो पवित्रता आई उससे उनके दर्शन पुण्यकारक हुए।

'तिक्खुत्तो, आयाहिणं पयाहिणं...' पाठ में एक पद है देवयं।

देवयं का अर्थ होता है- जिनका जीवन ज्ञान, दर्शन, चारित्र से दिव्य हो गया। साधु के दर्शन का मतलब शरीर का दर्शन नहीं है। शरीर के माध्यम से ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना के फलस्वरूप झलक रहे सौन्दर्य का दर्शन है।

धन्ना अणगार बेले-बेले की तपस्या कर रहे थे। उनका शरीर कृश हो गया था। हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था। शरीर चमड़ी से ढका हुआ मात्र रह गया, किंतु शास्त्रकार कहते हैं कि उनके शरीर की तेजस्विता शोभायमान हो गई। उनके शरीर से, उनके चेहरे से तेज झलक रहा था। वह तेज जन-जन को प्रभावित कर रहा था। वह तप का प्रभाव था, संयम का प्रभाव था। संयम के प्रभाव का दर्शन हमारे पाप-मल को हटाने वाला हो जाता है इसलिए उनके दर्शन दिव्य माने गए, अलौकिक माने गए। उनको उस रूप में देखने पर दृष्टि परिकर्मित होती है। दृष्टि में एक खासियत पैदा होती है जिससे तथ्य को तथ्य रूप समझने में सक्षम होते हैं।

'दर्शन घातक-पातक साधु सूं रे अकुशल अपचय चेत...'

सुसाधु के दर्शन पाप का घात करने वाले होते हैं। कौन-सा पाप? अज्ञान अवस्था में अकुशल मन से किन्हीं जन्मों में बँधा पाप। शास्त्र में बताया

गया है कि अप्रमत्त साधु जिसने संयम जीवन स्वीकार किया, जो आत्मभाव में रमण करने वाला बना, जो आत्मा का विस्मरण नहीं कर रहा है, आत्मा की स्मृति में जी रहा है, आत्मा की अनुभूति निरंतर कर रहा है, वह अनंतानंत कर्मों को एक श्वासोच्छ्वास में नष्ट कर देता है। सामान्य व्यक्ति को उन कर्मों का क्षय करने में असंख्यात वर्ष लग जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि आत्मा में लीन साधु एक श्वासोच्छ्वास में जितने कर्मों की निर्जरा कर देता है, उतने कर्मों की निर्जरा सामान्य जीव असंख्यात करोड़ों वर्षों तक नहीं कर पाता है। लोग कहते हैं कि किसलिए लेना मुनि जीवन। उनको जब तक समझ नहीं आता है, तब तक लगता है कि क्या है मुनि जीवन। वस्तुत: कर्मों की निर्जरा उत्कृष्ट परिणामों से हो सकती है, सामान्य परिणामों से नहीं। उत्कृष्ट परिणामों का लेबल मुनित्व में होता है क्योंकि मुनि आत्मभावों में रमण करता है। राग-द्वेष को जीतने का प्रयास करना है। क्रोध, मान-माया, लोभ छोड़ने के लिए तत्पर होता है, वह इनको बढ़ावा नहीं देता।

मुनि जीवन की महत्ता अलौकिक है, अपरंपार है। उसकी महत्ता का कोई अंत आने वाला नहीं है। ऐसे भव्य-दिव्य जीवन के दर्शन करने से बहुत सारे कर्मों की निर्जरा होती है। जैसे शत्रु सेना को सामने देखकर योद्धाओं का शौर्य जागृत होता है, वैसे ही कषायों को देखकर साधु का शौर्य जागृत होता है। संत दर्शन से शौर्य जागृत हो जाता है, जिससे कषायों को धोने के लिए क्षमावान बन पाते हैं। हम यह बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि खून से भरा कपड़ा खून से नहीं धोया जाता। कोई ऐसा सोचकर खून से कपड़े धोने लगे कि जैसे जहर से जहर कटता है वैसे ही खून से खून कटता है, तो कपड़ा साफ हो जाएगा क्या?

(श्रोतागण- नहीं होगा)

खून से सने हुए कपड़े को यदि ठीक उसके विपरीत पदार्थ से धोया जाए तो वह साफ हो जाएगा। वैसे ही कषायों से कभी भी जीवन रूपी कपड़ा साफ नहीं होगा। क्रोध, मान-माया, लोभ, आत्मा रूपी जीवन को मैला करने वाले हैं। गुस्सा करने से, कषाय करने से कोई अपनी आत्मा को कभी भी स्वस्थ नहीं बना सकेगा। कभी भी उज्ज्वल नहीं बना सकेगा, क्योंकि कषायों में पवित्रता का गुण नहीं है। हमारी आत्मा पवित्र होनी चाहिए, किंतु कषायों के

कारण वह पवित्र नहीं हो पाती। कषायों में विमलता का गुण नहीं होता। कषाय हमारी आत्मा को मलिन ही करेंगे। कषाय जितने बढ़ेंगे उतनी हमारी मलिनता बढ़ेगी। कषाय क्यों बढ़ता है? स्वार्थ व ममत्ववशात् कषाय बढ़ते हैं। यदि ममत्व का भाव नहीं होगा, मेरेपन का भाव नहीं होगा तो कषाय नहीं बढ़ेंगे। इसलिए यह मान लेना चाहिए कि शरीर मेरा नहीं है, संपत्ति मेरी नहीं है। कोई ले गया तो ले गया। ऐसा मानना मुश्किल है। एकदम से नहीं हो पाएगा पर ऐसी दृष्टि बन जाए तो एक दिन क्रियान्वयन हो सकता है। समझ बनने पर एक दिन क्रिया में भी आएगा, किंतु समझ ही नहीं बनेगी तो क्रिया में कैसे आएगा। वैसा लक्ष्य कैसे बनेगा। इसलिए सबसे पहले यह समझना चाहिए कि जितनी भी बाह्य चीजें दिखाई दे रही हैं, वे मेरी नहीं हैं। वे बाह्य से संगृहीत की हुई हैं। संग्रह की हुई चीज अपनी नहीं हो सकती। संग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। और जो अपना है, उसका क्या संग्रह करना! वह तो अपना है ही। जिनका संग्रह करना चाहते हैं, वे सब नाजायज हैं। भले ही व्यावहारिक नय की दृष्टि में नाजायज नहीं हो। यह बात नमिराज को अच्छी तरह से समझ में आ गई। नमिराज में एकत्व भाव था। उससे उन्होंने अपनी आत्मा को भावित कर लिया।

मैं तो ढूंढयो रे सऊ जग मांय सुखी न मिल्यो एक भी...

मैंने सारे जग में ढूँढ लिया, किंतु मुझे कोई भी सुखी नहीं मिला। क्योंकि सुख कोई ऊपर से बरसता नहीं है। किसी जगह कोई सुखी नहीं मिले, यह संभव है, पर पूरे जग में कोई सुखी नहीं मिले, ऐसा कैसे कह सकते हैं। इस पर कोई पूछे कि तुम्हारे घर में सब सुखी हैं क्या? तुम्हारे घर में भी सब सुखी नहीं मिलें, ऐसा संभव है। सूर्य की किरण किसलिए है?

(श्रोतागण- प्रकाश लेने के लिए)

यदि उल्लू कहे कि सूर्य मेरे साथ भेदभाव कर रहा है तो सही नहीं होगा, क्योंकि सूर्य किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं करता। उल्लू की आँखों में ही गड़बड़ी है। उसकी संरचना ऐसी है कि उसको प्रकाश नहीं दिखता। उसको अँधेरा ही अच्छा लगता है। अँधेरे में उसकी आँखें बहुत देखती हैं। ऊँट को नीम का पत्ता कड़वा नहीं लगता, मीठा लगता है, किंतु हम यदि नीम के पत्ते का उपयोग करेंगे तो हमें कड़वा लगेंगे। उसकी टहनियाँ कड़वी लगेंगी, क्योंकि उसमें कड़वाहट है। ऊँट के जीभ की संरचना कुछ ऐसी है कि नीम

उसको मीठा लगता है। यदि वह भी सामान्य जीव की तरह होता तो उसको भी नीम कड़वा लगता। उल्लू सूर्य को साक्षात् नहीं कर पाता। इसमें सूर्य का कोई दोष नहीं है। वैसे ही आज हम यह अनुभूति नहीं कर पा रहे हैं कि बाहरी पदार्थ मेरे नहीं हैं, तो यह ज्ञान का दोष नहीं है। यह हमारी समझ का दोष है। ज्ञान सच्चा है। ज्ञान एकदम परफेक्ट है, पर हमारे समझ में नहीं आया कि बाहरी चीजें न कभी मेरी थीं न कभी होंगी। यदि वे मेरी होती तो शरीर मुझसे अलग क्यों हो जाता? मेरी आत्मा शरीर से क्यों अलग चली जाती है। शरीर साथ क्यों नहीं निभाता?

एक व्यक्ति पर 100 करोड़ का कर्ज है। उसके पास 50 करोड़ का माल होगा। अब वह 100 करोड़ चुकाए कैसे? बाजार में यह बात फैल गई। वह पिताजी के पास गया और कहा कि मुझे कुछ पैसे चाहिए, पिताजी ने मना कर दिया। उसने कहा कि मुझे ब्याज पर दे दो तो भी उसके पिताजी ने नहीं दिया। वह अपने भाई के पास जाता है तो वह भी उसको पैसे देने के लिए तैयार नहीं हुआ। भले ही अलमारी में नगद पड़े हैं। अलमारी भरी हुई है, फिर भी उसको पैसे देने की नीयत नहीं है। देकर क्या करे, चिंता है कि वापस नहीं आए तो? डूब गए तो?

जिस व्यक्ति की पैठ जमी हुई थी उसको करोड़ों रुपये देने के लिए लोग तैयार रहते थे। उसको बिना ब्याज के दे देते थे, कम ब्याज में दे देते थे। चलाकर कहते, आपके पास हमारे पैसे सुरक्षित रहेंगे। जिस समय कंपनी या व्यक्ति का पुण्य होता है उस समय आदमी सामने आकर उसको पैसा देता है, लेकिन जब दुर्भाग्य जागृत होता है, सौभाग्य छिन्न-भिन्न होने लगता है तब नौका डाँवाडोल होती रहती है, धक्का खाती रहती है। उस समय उसको कोई संभालने वाला नहीं रहता। उसको कोई सहयोगी नहीं मिलता।

यह बात समझने के लिए बहुत पर्याप्त है, किंतु मन समझ नहीं पाता। हमने बहुत सारी ऐसी ऊँची-नीची स्थितियाँ देखी होंगी। उसके बावजूद किधर जा रहे हैं? हमारा मन अभी तक संसार से भरा नहीं है। अभी तक दुनिया से मन नहीं भरा। जिस दिन दृष्टि जग जाएगी उस दिन मन भर जाएगा।

मैंने तीसरी कक्षा में रहते हुए एक आख्यान पढ़ा था कि भेड़ों के साथ सिंह का एक बच्चा शामिल हो गया। उसको मालूम हो गया कि मैं भेड़ का

बच्चा नहीं हूँ। मैं तो उस सिंह के जैसा हूँ, जैसा ऊपर पानी पी रहा था। उसने अपनी मूल छवि को देखा तो जाना कि मेरा रूप उससे मिल रहा है। उसने सोचा फिर भी फाइनल कर लूँ, पक्का कर लूँ। ऐसा सोचकर उसने एक दहाड़ लगाई। जैसे ही उसने दहाड़ लगाई, भेड़ें वहाँ से भाग गईं। क्या बात समझ में आई? मैं कौन हूँ यह किसको ज्ञात हो गया?

(श्रोतागण- सिंह के बच्चे को ज्ञात हो गया कि मैं भेड़ का बच्चा नहीं, सिंह का बच्चा हूँ)

वकील साहब घर में चूहे कितने हैं?

(वकील साहब ने कहा- पता नहीं)

किसी अनाज की दुकान वाले से यही सवाल पूछा जाये तो वह कहेगा कि हमारी दुकान में बहुत सारे चूहे हैं। बहुत सारे चूहे एक बिल में घुसेंगे और एक ही बिल में आगे से आगे कहाँ तक निकल जाएंगे पता नहीं लगेगा। उनके बिल का कोई ओर-छोर नहीं है। उनके बिलों की अवस्था ऐसी है कि उनको वहाँ न गरमी लगती है न सरदी। वे वहाँ सुरक्षित रहते हैं। जैसे उनके बिल का कोई छोर नहीं है, वैसे ही हमारे भीतर ममत्व का कोई छोर नहीं है। हम उसके भीतर उलझे रहते हैं और जान नहीं पाते कि वस्तुत: मैं कौन हूँ?

''जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ''

खोजने वाला प्राप्त कर लेता है। नमिराज ने खोजा और निश्चय कर लिया कि जो मेरा नहीं है, उसके साथ नहीं रहना। वे साधु बनने के लिए तैयार होते हैं। इसी दौरान शक्रेन्द्र अवधिज्ञान से जंबूद्वीप का, भरत क्षेत्र का अन्वेषण कर रहा था, निरीक्षण कर रहा था कि कहाँ क्या हो रहा है। उसकी दृष्टि नमिराज पर गई तो सोचा, ये साधु बनने की तैयारी क्यों कर रहे हैं? इनके भीतर कल तक वैराग्य नाम की कोई चीज नहीं थी और आज ये दीक्षा ले रहे हैं। क्या भावुकता साधु जीवन का अंग बन सकती है? उनका वैराग कितना पक्का है, इसकी मुझे परीक्षा लेनी चाहिए।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार...

उत्तम जी बताओ, कल शक्रेन्द्र ने नमिराज से क्या बात प्रस्तुत की थी? उनसे क्या कहा था?

(उत्तम जी ने कहा- जनता दारुण शब्दों से रुदन कर रही है। उन्होंने

कहा था कि आपका यह निष्क्रमण अनुचित है)

इंद्र ने कहा था कि लोग रुदन कर रहे हैं। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है, इसलिए आपका साधु जीवन स्वीकार करना सही नहीं है। आपका यह निष्क्रमण समयोचित नहीं है। बड़ी बात सामने आई कि अभी दीक्षा लेने का उचित समय नहीं है। दीक्षा कब लेनी चाहिए? दीक्षा का उचित समय कौन-सा है?

जब अहंकार मर जाए। जब तक अहंकार नहीं मरेगा, तब तक दीक्षा सार्थक नहीं हो पाएगी। भगवान ने कहा-

''सव्वं से जाइयं होइ, नत्थि किंचि अजाइयं''

तुमको याचना करनी पड़ेगी। माँगने को मरण तुल्य माना है। यथा-

''मांगन वाला मर गया जो कोई मांगन जाय''

माँगने वाला मर गया। साधु को सारी वस्तुएँ माँगनी पड़ती हैं। इस दृष्टि से साधु मर गया या नहीं मरा? शरीर से तो हम बहुत बार मर गये, किंतु साधुता नहीं आई। अहंकार के मरने के बाद साधुता आएगी। जब तक भीतर के कषाय नहीं मरेंगे, तब तक उत्कृष्ट साधुता नहीं आने वाली।

आपने पूज्य आचार्य नाना गुरु का नाम सुना है। उनके दर्शन करने वाले बहुत पुण्यवान होंगे, बहुत भाग्यवान होंगे। पर वह पुण्यवानी हमारे किस काम आई? ऐसे गुरु का सान्निध्य पाकर अपने जीवन में कुछ नहीं किया, भीतर वैराग नहीं जगा तो फिर क्या काम किया। ऐसे गुरु का सान्निध्य मिला और भीतर साधु बनने की भावना नहीं जगी तो कर्म कितने काँठे रहे होंगे। कर्मों का आरा लेकर आगे बढ़ेंगे तो कल्याण कैसे होगा?

उदयपुर पौषधशाला में आचार्य नाना गुरु विराज रहे थे। वहाँ हिम्मत सिंह जी मेहता, सरजुग बाबू नाम के एक तांत्रिक को दर्शन कराने लाए। वे दर्शन करके गुरुदेव के सामने बैठ गए। वे ध्यान लगाकर कहते हैं कि 'रे हिम्मत! आ साधु तो राख थई गयो छे।' यह सुनकर हमको अटपटा लगा कि ये क्या बोल रहा है। बाद में रहस्य स्पष्ट हुआ कि जैसे अंगारों की ज्वाला शांत होने पर राख हो जाती है, वैसे ही इनके विषय कषायों की ज्वाला नहीं है इसलिए ये राख बन गए। यह बात किसने कही? कहने वाले का नाम ही आप भूल गये? उनका नाम था सरजुग बाबू।

वापस आते हैं हम नमिराज की बात पर। शक्रेन्द्र ने नमिराज ऋषि से कहा कि मिथिला नगरी के गाँव-गाँव और घर-घर में आक्रंदन हो रहा है। चारों तरफ दारुण शब्द सुनाई पड़ रहे हैं। धर्मीजनों को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे लोगों को रोना पड़े।

नमिराज ने बड़े सुंदर व मार्मिक भावों से उसका उत्तर दिया। उन्होंने जो उत्तर दिया उनमें अनुभव के मोती झर रहे थे। बाहर के मोतियों की कीमत हो सकती है, किंतु अनुभव के मोतियों की कीमत आँकी नहीं जा सकती। बाहर के मोती खरीदे जा सकते हैं, परंतु अनुभव के मोती खरीदे नहीं जा सकते। ऐसे दिव्य मोती उनके मुँह से झरे। उन्होंने कहा कि हे ब्राह्मण! तुम कह रहे हो कि यत्र-तत्र आक्रंदन सुनाई पड़ रहा है, दारुण शब्द सुनाई दे रहे हैं इसलिए निष्क्रमण उचित नहीं है, अनुचित है, किंतु बात ऐसी नहीं है। निष्क्रमण कभी भी अनुचित नहीं होता।

शक्रेन्द्र ने कहा कि अनुचित क्यों नहीं होता?

निष्क्रमण अर्थात् दीक्षा लेना किसी के लिए भी पीड़ाजनक नहीं होता। निष्क्रमण होने से छहकाय जीवों की रक्षा होती है। जैसे हिंसा से निवृत्त होने से, हिंसा से अलग होने से किसी को पीड़ा नहीं होती, वैसे ही साधु जीवन स्वीकार करना किसी को पीड़ा देने वाला नहीं होता है। आपको पहले सोचना चाहिए कि वस्तुतः रोने के पीछे कारण क्या है? मिथिला नगरी में एक सुंदर उद्यान था। उस उद्यान में एक वृक्ष था। वह हरे-भरे पत्ते, पुष्प और फल रूपी गुणों से भरा-पूरा था। वृक्ष उसी को कहा जाता है जिस पर पत्ते हों, फल भी हो, टहनियाँ हों, शाखाएँ हों और पुष्प खिलते हों। जिसकी छाया घनी हो वह होता है वृक्ष। नमिराज ने कहा कि हे ब्राह्मण देव! एक वृक्ष पर बहुत सारे पक्षी-पखेरु रैन बसेरा करते थे। रात वहाँ पर रुकते और सुबह उड़ जाते थे।

प्रचंड वायु के वेग से वह पेड़ गिर गया। अब वह उन जीवों का शरण नहीं रहा। उन जीवों को वहाँ आश्रय नहीं मिला। अशरण के कारण वे पक्षी पीड़ित हो रहे हैं, अधीर हो रहे हैं, आक्रंदन कर रहे हैं। वे पक्षी किसी को रो रहे हैं।

एक करोड़पति सेठ की मृत्यु हो गई। एक बार मरना तो सबको है।

राजा राणा छत्रपति हथियन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार।।

एक दिन सबकी मौत आएगी, पर ये पता नहीं कि कब आएगी? सब अपने-अपने नंबर से मरेंगे। जब जिसका नंबर आएगा, जिसका नाम पुकारा जायेगा, वह कहेगा यस सर।

सेठ मर गया। एक मेहतरानी उसके घर के बाहर मुँह फाड़ कर बहुत जोर से रो रही थी। घरवालों का रोना तो समझ में आता है, पर मेहतरानी तेज आवाज में रो रही थी। वह घरवालों से भी ज्यादा रो रही थी। एक आदमी उधर से निकल रहा था। उसने मेहतरानी को रोते हुए देखा तो उससे पूछा कि तू क्यों रो रही है, तुम्हारा सेठ से लेना-देना था या क्या था? इतना तो घरवाले भी नहीं रो रहे हैं जितना तू रो रही है।

उसने कहा कि मैं इसलिए रो रही हूँ कि सेठ मरा भी तो ज्येष्ठ में मरा। माघ में मरता तो मुझे एक रजाई और एक पथरना (गादी) मिलता।

(श्रोतागण हँसने लगे)

हँस क्यों रहे हैं? वह मेहतरानी सेठ की आयुष्य छह महीने और चाह रही थी। ज्येष्ठ और माघ के महीनों के बीच में छह महीने से ज्यादा होते हैं। लगभग सात-आठ महीने होते हैं। वह सेठ के लिए सात-आठ महीने ज्यादा जीने की आकांक्षा कर रही थी।

कल अनन्य मुनि जी ने बताया कि बाप के मर जाने से बेटी रो रही थी। उसके रोने का कारण था कि पिताजी मेरी शादी बिना किये ही चले गए। छह महीने तक नहीं मरते तो मेरी शादी देख लेते। खैर, सबकी सोच अलग-अलग होती है। लड़के और परिवार वाले चाहते हैं कि माता होती तो कितनी अच्छी शादी होती और पिता होते तो शादी कितनी अच्छी होती। सोचते हैं कि शादी उनके सामने होती तो कितना बढ़िया रहता। सबके अलग-अलग विचार होते हैं। सबकी सोच होती है।

मेहतरानी कह रह रही है कि सेठ ज्येष्ठ में मरा, अब कुछ नहीं मिलने वाला है। सरदी में मरा होता तो एक रजाई और पथरना मिलता। ऐसी परंपरा रही है कि जिन कपड़ों को पहने या ओढ़े हुए मृत्यु होती है, उसे निर्धन लोगों को बाँटने की। सेठ घर में मरा या हॉस्पिटल में?

(श्रोतागण- घर में मरा)

तो आप घर क्यों नहीं छोड़ते। जिस खाट और रजाई या पथरना पर

मरे उसको छोड़ देते हो तो घर को क्यों नहीं छोड़ते हो। जब रजाई आदि को घर से निकाल देते हैं तो घर में मरने पर घर को क्यों नहीं छोड़ देते? उसको भी छोड़ देना चाहिए कि आज से ये घर मेरा नहीं।

(श्रोतागण हँसते हैं)

आप हँस रहे हो!

यदि राजा सच्चा क्षत्रिय है, पितृ पक्ष, मातृ पक्ष शुद्ध है, तो वह किसी पर तुष्ट होने पर सौ-दो सौ नहीं पकड़ाएगा। वह दो-तीन गाँव बक्शीश देगा। बाणिया यदि खुश हो जाए कि वाह भाई तुमने बहुत अच्छा काम किया तो वह धन्यवाद दे देगा। कभी-कभी उलटा भी हो जाता है। कैसे हो जाता है उलटा, वह भी सुन लीजिए।

एक सेठ की थैली गुम हो गई। उसमें रकम भरी हुई थी। वह जिस रिक्शे में बैठा था उसी रिक्शे में अपनी थैली भूल गया। थोड़ी देर के बाद रिक्शेवाले ने देखा तो सोचा कि ये थैली तो उस सेठ की है। रिक्शेवाला उसका पता पूछते हुए अपने रिक्शे से उसके घर गया और थैली सेठ को पकड़ा दिया। सेठ ने थैली खोलकर देखते हुए कहा कि मेरे रुपये ज्यादा थे, बाकी रुपये कहाँ गए। उसने उसके खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज करा दी कि मेरी थैली में इतने रुपये थे। केस कहाँ चला गया?

(श्रोतागण- कोर्ट में चला गया)

जज सुलझा हुआ रहा होगा। उसने सारी बातों को सुनकर जजमेंट दिया कि सेठ की रकम 50 लाख थी। इसमें तो सिर्फ 20 लाख रुपये मिले। अत: यह बैग सेठ का नहीं है। जज ने फैसला सुनाया कि बैग को जो लेकर आया उसी को वापस सौंप दिया जाये क्योंकि सेठ जी के बैग में 50 लाख रुपये थे। जज के निर्णय सुनाने के बाद वह बैग रिक्शा चालक को सौंप दिया गया। सेठ बनने गए थे छब्बे जी और बन गए दुबे जी।

जज के निर्णय देने के बाद सेठ जी पछताने लगे कि उलटा काम हो गया। उलटा काम करेंगे तो उसका परिणाम भी उलटा ही मिलेगा।

जो उलटा काम करता है, उसका फल भी उलटा ही पाता है। उलटे काम करके उसका परिणाम अच्छा चाहने की इच्छा रखना व्यर्थ है।

नमिराज कहते हैं कि साधु जीवन स्वीकार करना अनुचित नहीं है।

'निष्क्रमण मननुचित्तम्।' उन्होंने कहा कि निष्क्रमण कभी भी अनुचित नहीं होता, क्योंकि निष्क्रमण किसी को पीड़ा देने वाला नहीं है। वह छहकाय जीवों की रक्षा करने वाला होता है। जो रो रहे हैं, वे अपने स्वार्थ को रो रहे हैं। इसलिए हे ब्राह्मण! आपको सुधार और संशोधन कर लेना चाहिए। उन्होंने कहा कि धर्मार्थियों को अवश्यमेव दीक्षा स्वीकार करनी चाहिए, साधु जीवन स्वीकार करना चाहिए।

नमिराज ने उसको समझा दिया। उन्होंने मिथिला नगरी के उद्यान, वृक्ष पर आश्रित रहने वाले पक्षियों के आधार से उसका उत्तर दिया कि वहाँ उनको खाने के लिए फल मिलते थे। उनको शीतल छाया के साथ बैठने के लिए डालियाँ मिलती थीं। उसके गिर जाने से उनका स्थान छूट गया। अब उनको शरण नहीं है इसलिए वे रो रहे हैं। मेहतरानी सेठ के वियोग पर उसकी आस पूरी नहीं होने से रो रही थी। हमें जीवन की सच्चाई को जानना चाहिए कि कौन मेरा है और कौन पराया। इसकी पहचान कर लेनी चाहिए। जिस दिन पहचान हो जाएगी उस दिन पराए का पोषण करने के लिए तैयार नहीं होंगे। जो अपना है ही नहीं, उसके लिए इतनी सारी रामायण करने की क्या जरूरत है।

हम विचार करें, चिंतन करें, मनन करें कि हमें वस्तुत: जीव-अजीव की समझ पैदा हुई या नहीं! हमें मनुष्य जन्म मिलने के साथ ही पाँच इंद्रियाँ और बुद्धि प्राप्त हुई है। हम बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। हमें जैन धर्म मिला है जो बहुत दुर्लभ है। विश्व के बहुत-से लोगों को यह प्राप्त नहीं है। ऐसा दुर्लभ जीवन हमें प्राप्त हुआ है। इसकी प्राप्ति के बाद भी हम इसका सही उपयोग नहीं कर सके तो यह हमारी नासमझी हो सकती है। नासमझी में न रहें। अपनी समझ को सही बनाएं। ऐसा होने पर सुख के सागर में गोते लगा पाएंगे। इतना कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

16 अक्टूबर, 2021